भागलपुर का मोर्चा

लेखक :
श्री० रामचन्द्र शर्मा
एम्० ए०, एल्०-एल्० बी०

●

सम्पादक :
श्री० ऋषभचरण जैन

●

प्रकाशक :
दि जर्नल्स लिमिटेड,
२३, दरियागंज,
दिल्ली

●

मूल्य :
अजिल्द—२॥) रु०
सजिल्द—३) रु०

प्रकाशक :
दि जर्नल्स लिमिटेड,
२३, दरियागञ्ज,
दिल्ली

प्रथम बार १०००

अगस्त, १६४२

मुद्रक :
रूप-वाणी प्रिंटिंग हाउस,
२३, दरियागञ्ज,
दिल्ली

'महासभा' के पिता

पूज्य पण्डित मदनमोहन मालवीय

के चरण कमलों में

'यह पुस्तक श्रद्धापूर्वक समर्पित

की जाती है।

वक्तव्य

'हिन्दू-महासभा' से मेरा सम्बन्ध अल्प-कालीन है, लेकिन उसके प्रति मेरा प्रेम इतना गहरा है, जितना किसी का हो सकता है। मैं सदा इस सम्बन्ध और इस प्रेम को ईश्वरीय देन मानता रहा हूँ और जब तक ईश्वर की इच्छा होगी, मानता रहूँगा।

मेरी अपनी सीमितताएँ हैं। इन्हीं सीमितताओं के बीच किसी वस्तु के सम्पर्क में आकर उसकी गहराई में उतरने की मेरी आदत है। मुझे यह कहने की अनुमति दी जाय कि मैंने 'महासभा' की गहराई में उतरने का उद्योग किया और मुझे अनुभव हुआ कि 'महासभा' का आधार कुछ ऐसे सिद्धान्त हैं, जो जितने ठोस हैं, उतने ही सत्य हैं। 'महासभा' में मेरे स्नेह का यही रहस्य है।

'महासभा' एक राष्ट्रीय संस्था है। महात्मा गाँधी का व्यक्तित्व और जवाहरलालजी का बलिदान इतना अनोखा है कि हम उनसे चमत्कृत होकर उनके सिद्धान्तों की अवहेलना करने का साहस नहीं पाते, लेकिन मन को बिल्कुल साफ़ करके देखने पर भी मुझे 'राष्ट्रीयता' की 'कॉङ्ग्रेस' की उस परिभाषा में खतरनाक घुन दिखाई दिया, जो वह पिछले पच्चीस-तीस वर्ष से हमारे देशवासियों की नसों में भरती रही है और जिसके परिणाम-स्वरूप आज 'पाकिस्तान' के रूप में इस मुल्क का सर काट लेने की तैयारी की जा रही है, जबकि दुनियाँ के दूसरे व्यक्ति सारे संसार को एक ही देश बनाने के शुभ संकल्प कर रहे हैं।

मैं कॉङ्ग्रेस के साथ अन्याय करूँगा, यदि इस सम्बन्ध में स्थिति का कुछ स्पष्टीकरण न कर दूँ। कॉङ्ग्रेस ही इस देश की सब से अधिक शक्तिशाली राजनैतिक संस्था है और इस शक्ति का कारण केवल उसके नेताओं का आत्म-बलिदान ही है। किसी भी भले आदमी का— चाहे वह कॉङ्ग्रेस के साथ कितना भी विरोध रखता हो—कॉङ्ग्रेस-नेताओं के बलिदानों के प्रति गहरा आदर है और इतिहास इस बात का

साक्षी है कि ऐसे बलिदान किसी भी देश के लिए गौरव का कारण हैं। मै कॉङ्ग्रेस को भी एक प्रकार से 'हिन्दू महासभा' का ही अङ्ग मानता हूँ और इस दृष्टि से कॉङ्ग्रेस के गौरव को 'महासभा' का गौरव ही स्वीकार करता हूँ। मेरा विश्वास यह है कि परिस्थितियों के षड्यन्त्र ने कॉङ्ग्रेस को कुछ ऐसे सिद्धान्त स्वीकार करने पर विवश कर दिया है, जो वास्तव में विशुद्ध सैद्धान्तिक दृष्टि से खरे नहीं हैं। इन सिद्धान्तों के खरेपन से 'हिन्दू महासभा' का विरोध सात्विक और शुद्ध है और हमारे देशवासियों की अप्रगतिशीलता से यद्यपि 'हिन्दू-महासभा' को ऐसे अवसर नहीं मिले कि वह अपना बल कङ्ग्रेस से अधिक बढ़ा सकती, लेकिन इसके बावजूद भी सिद्धान्तों की उत्कृष्टता के लिहाज से 'महासभा' का दृष्टिकोण अधिक उचित और मूल्यवान् है।

'मूल्यवान्' मैंने इस दृष्टिकोण को इसलिए कहा कि राजनैतिक अधिकारों के मामले में कॉङ्ग्रेस ने जहाँ साम्प्रदायिक निर्वाचन के सिद्धान्त को स्वीकार कर लिया है, वहाँ 'महासभा' अभी तक विशुद्ध राष्ट्रीयता के आधार पर अपनी माँगों पर डटी हुई है। 'महासभा' का

कथन है कि हिन्दुत्व कोई सम्प्रदाय नहीं, राष्ट्र-धर्म है। यदि मुसलमान अपने देशवासियों के अधिक विश्वासपात्र हों तो निर्वाचन में वे विजय-लाभ करें और यदि हिन्दू अधिक विश्वासपात्र हों तो हिन्दू। निस्सन्देह हिन्दुओं पर यह दोष लगाया जा सकता है कि इस देश में उनका प्रबल बहुमत है, इसीलिए वे इतनी स्पष्टवादिता दिखाते हैं, लेकिन इसका उत्तर यह है कि यदि मुसलमान टर्की, ईरान, अफगानिस्तान और मिश्र-जैसे स्वतन्त्र देशों के रहते हुए भी संसार में अपनी स्थिति पर सन्तुष्ट नहीं, तो हिन्दू स्वयं अपने अकेले देश में स्वतन्त्र होकर रहना क्यों न चाहेंगे ?

'महासभा' में मेरी वर्तमान स्थिति न-कुछ के बराबर है। फिर भी मैंने 'महासभा' के नेताओं से 'महासभा' की नीति को कुछ अधिक व्यापक बना देने की माँग की है। इसे मेरा दुस्साहस भले ही कहा जाए, लेकिन प्रजातन्त्र का पहला सिद्धान्त है कि प्रत्येक व्यक्ति को अपनी बात कहने का अधिकार है। इसी नाते से मैंने समय-समय पर 'महासभा' के नेताओं से यह प्रार्थना की है कि वे इस सिद्धान्त को स्वीकार कर लें कि हिन्दुत्व ही मानव-धर्म है और हिन्दुत्व की एक-मात्र प्रति-

निधि-संस्था होने के नाते उसे इसी सिद्धान्त के आधार पर 'महासभा' के द्वारा समस्त संसार की समस्याओं के निराकरण का लक्ष्य अपने समक्ष रखना चाहिए। जब तक हम इस सिद्धान्त के आधार पर स्वयं अपने देश की समस्याओं को नहीं सुलझा लेते, तब तक हमें अपना कार्यक्रम इसी देश तक सीमित रखना चाहिए और जब यहाँ की समस्यायें सुलझ जायेंगी तो अन्य देशों की समस्याओं को हम अपने हाथ में ले सकते हैं।

सावरकरजी की एक पुस्तक मे मैंने पढ़ा है:—

Low Aim is Crime.

इस वाक्य ने मेरे हृदय पर बड़ा मार्मिक प्रभाव अङ्कित किया है। मेरा विचार है कि जिस उद्देश्य की ओर मेरा संकेत है, सावरकरजी का ठीक वही उद्देश्य है और मैं चाहता हूँ कि 'महासभा' के द्वारा वे इसी उद्देश्य की सिद्धि करना चाहते हैं। सम्भव है कि कॉङग्रेस के नेता भी इसी उद्देश्य को सामने रक्खे हुए हों, लेकिन यदि मेरा अनुमान सही है तो मुझे यह कहना पड़ता है कि षड्यन्त्रों ने उन्हें एक ऐसे मार्ग पर डाल दिया है, जिस पर बढ़कर वे अपने उद्देश्य से परे हटते जा रहे हैं।

मेरा कथन यह है कि यद्यपि लोग धर्म के वास्तविक स्वरूप को भूल गये हैं, तो भी संसार के सारे झगड़े-झञ्झट धर्म के आधार पर ही खड़े किये जाते हैं। इस समय संसार में चार मुख्य धर्म हैं—हिन्दुत्व, इस्लाम, ईसाइयत और बौद्ध-धर्म। पिछले पचास वर्षों में 'कॉम्युनिज्म' और 'फैसिज्म'-नामक दो नये धर्म अस्तित्व में आये, लेकिन वास्तव में यह दोनों ही नये धर्म हिन्दुत्व के नये संस्करण हैं। यह संस्करण नये जरूर हैं, लेकिन उनकी आधार-शिला में कुछ मौलिक त्रुटियाँ हैं। इसलिए मैं चाहता हूँ कि 'महासभा' हिन्दुत्व के एक नये संस्करण का संसार मे प्रचार करे और उसे जो चाहे, वह नाम प्रदान कर दे। इस नये वाद की आधार-शिला के लिए मैंने अपनी अल्प बुद्धि के अनुसार कुछ परिश्रम किया है। उस पर नजर डालना मानवता के सभी प्रेमियों का कर्तव्य है।

—ऋषभचरण जैन

'मानव-धर्म-ग्रन्थावली'

की

पहली पच्चीस पुस्तकें

* नम्बर ११ तक की पुस्तकें श्री ऋषभचरण जैन-लिखित हैं और शेष पुस्तकें अन्य लेखकों-द्वारा। यह समस्त पुस्तकें अप्रैल १९४२ तक छपकर तैयार हो जायेंगी।

जो सज्जन 'मानव-धर्म' के आन्दोलन में किसी प्रकार की भी दिलचस्पी रखते हैं, वे हम से पत्र-व्यवहार करें।

इस पते पर लिखिये:—

दि जर्नल्स लिमिटेड, २३, दरियागंज, देहली

राजनीति में

'मानव-धर्म-आन्दोलन'

का परम समर्थक

'सचित्र दरबार'

सम्पादक :

श्री० प्रभात विद्यार्थी

श्री० नीलाम्बर गोपाल

'सचित्र दरबार' भारत-भर में 'मानव-धर्म' के सिद्धान्तों का प्रचार कर रहा है तथा देश का प्रत्येक वह व्यक्ति इस पत्र के महान उद्देश्यों के प्रति आकृष्ट होता है, जो एक बार इसके सम्पर्क में आता है। 'सचित्र दरबार' का यह विश्वास है कि जब तक संसार का कोई मुख्य धर्म 'मानव-धर्म'-सम्बन्धी योजना को हाथ में लेकर दुनिया के समस्त धर्मों को अपने भीतर खपा लेने का उद्योग नहीं करेगा, संसार की समस्याएँ ज्यों-की-त्यों बनी रहेंगी। 'सचित्र दरबार हिन्दुत्व में ऐसी सम्भावनाएँ सब से अधिक स्वीकार करता है।

वार्षिक मूल्य ५) रु०; एक प्रति का ≈)

'सचित्र दरबार' कार्यालय, २२, दरियागञ्ज, दिल्ली
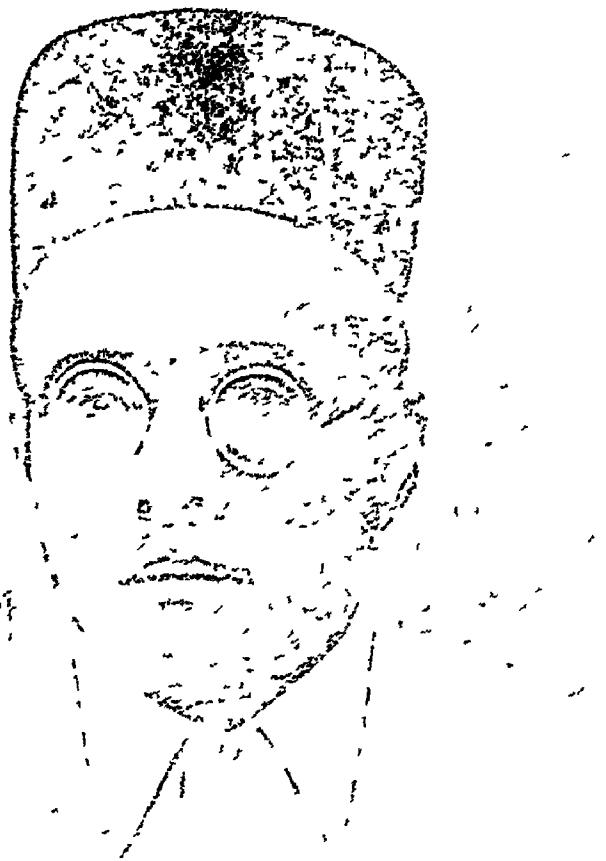
वीर विनायक दामोदर सावरकर

('हिन्दू-महासभा' के सभापति और 'भागलपुर-मोर्चे' के सेना-नायक)

भागलपुर का मोर्चा

स्वतन्त्रता के पथ पर

सन् '५७ की क्रान्ति को आज 'ग़दर' के नाम से पुकारा जाता है, इसका कारण इतना ही है कि वह हम भारतीयों की स्वतन्त्रता-प्राप्ति का एक असफल प्रयत्न रहा—यद्यपि था वह एक सामूहिक प्रयत्न। भारत के हिन्दू और मुसल्मान, नवाब और राजे प्रायः सभी उस में शामिल थे। वह असफलता अभिशाप के रूप में आज हमारे सामने है, अन्यथा रूस के मई और अमेरिका के स्वाधीनता-दिवस की भाँति इन दिनों हम भी ख़ुशियाँ मनाते हुए होते। इतिहास में पुनरावृत्ति होती है—किसी एक की बदनसीबी पर किसी एक का भाग्य बनता है। यही है—हर उत्थान और पतन की कहानी की रूप-रेखा और उसका रहस्य। अँग्रेज़ों के भाग्य जागे। उन्होंने अपने अध्य-

वसाय और नीति के बल पर अपना संगठन और मजबूत बनाया। हिन्दू और मुसलमानों के मेल का महत्व समझा। अस्तु

१८५८ में महारानी विक्टोरिया की प्रसिद्ध घोषणा हुई। कम्पनी के राज्य का अन्त हुआ। ब्रिटिश सरकार के आधीन वायसरॉय-द्वारा भारत की शासन-व्यवस्था बनी।

महारानी ने अपनी समस्त प्रजा को एक दृष्टि से देखने, नौकरियों-आदि में एक-सा व्यवहार करने तथा किसी के धर्म में हस्तक्षेप न करने का वचन दिया। देशी राज्यों को हड़प न करने तथा उन्हें गोद लेने का अधिकार दिया गया। भारतवासियों ने इस घोषणा को अपनी समता व स्वतन्त्रता के अधिकारों का 'चार्टर' समझा। इसके पश्चात् ही मैकॉले की प्रसिद्ध शिक्षा-योजना चली। रेलों तथा अदालतों का दौर आया। भारतीय निःशस्त्र बनाये गये। तार, डाकघर-आदि आरम्भ हो गये। इस भाँति देश में शान्ति की स्थापना हुई। लोग स्वर्ग का अनुमान करने लगे। अँग्रेज़ी राज्य की इन प्रवृत्तियों का प्रभाव हर भारतीय के हृदय पर पड़ा और बहुत-से अपने-आपको ब्रिटिश साम्राज्य का अङ्ग समझने लगे।

अँग्रेज़ी सभ्यता ने भारतवासियों को चकाचौंध कर दिया और बहुत-से भारतीय अंग्रेज़ी शिक्षा के प्रभाव से अँग्रेज़ों तथा भारतीयों के बीच ज़ञ्जीर का काम करने लगे।

अपनी शिक्षा-योजना को चालू करते समय मैकॉले ने कहा था कि 'इस शिक्षा से हिन्दुस्थान में एक ऐसी श्रेणी बन जायेगी, जो प्रत्यक्ष रूप में तो हिन्दुस्थानी होंगे, परन्तु इनके हृदय तथा विचार अंग्रेजों के। यह लोग भारत में अँग्रेजी राज्य चलाने में क्लर्की-आदि का कार्य कर, हमारी सहायता करेंगे।' हुआ भी कुछ ऐसा ही। किन्तु साथ-साथ ही अँग्रेजी शिक्षा ने भारतीयों के अन्दर देश व जाति-प्रेम भी भर दिया। और विवशता तथा दासता का जीवन इनको बुरा लगने लगा। धीरे-धीरे वह स्वतन्त्रता के लिये हाथ-पाँव मारने लगे। कुछ लोग इङ्गलैण्ड हो आये—ऑग्रेजी वातावरण देखा और पर-कटे पक्षी की भाँति फड़फड़ाने लगे। अँग्रेजी शिक्षा ने लोगों के दिलों में देश-प्रेम तो फिर उत्पन्न कर दिया, किन्तु इससे बहुत-से हिन्दुओं के दिल से धर्म-भावना घटने लगी।

भारत में सन् '५७ के ग़दर की पुनरावृत्ति न हो—जनता की विचार-धारा से अवगत रहने के विचार से, ताकि समय रहते वह चेत जाय, ब्रिटिश सरकार ने एक युक्ति सोची। उसने अपने एक अवसर-प्राप्त सिविलियन अधिकारी—मिस्टर ह्यूम—को इसके लिये प्रेरित किया। वह स्वयं भी इस विचार में लीन थे। अपने एक लेख में वह लिखते हैं कि इस समय मुझे हिन्दुस्तान की सब से बड़ी आवश्यकता यह अनुभव होने लगी कि किस भाँति अँग्रेजी

शिक्षा व विचारों से उत्पन्न उबाल को निकालने का कोई सीधा तथा हानि न पहुँचानेवाला मार्ग निकाला जाये। इस कार्य के लिये उन्होंने नये विचार के कुछ सज्जनों को इकट्ठा करके कॉंग्रेस की स्थापना की और 'इण्डियन नेशनल कॉंग्रेस' के जन्मदाता की पदवी प्राप्त की। इस भाँति १८८७ दिसम्बर मास के अन्त में बम्बई नगर में श्री दादाभाई नॉरोजी-आदि के सहयोग से प्रथम काँग्रेस हुई। भारतवर्ष की 'नेशनल काँग्रेस' के इस अधिवेशन में कुल ६२ प्रतिनिधि थे, जिनमें अधिकांश वकील, बैरिस्टर, सम्पादक, स्कूल-मास्टर-आदि अँग्रेजी शिक्षा प्राप्त किये हुए मनुष्य थे। कलकत्ता के प्रसिद्ध वैरिस्टर श्री० डब्लू० सी० बॉमी काँग्रेस के पहले प्रधान बने। इसमें कुल दो मुसल्मानों ने भाग लिया। कॉंग्रेस का उद्देश्य परस्पर एकता और भारतवर्ष के भिन्न-भिन्न प्रान्तों तथा सम्प्रदायों के भेदों को दूर करना बताया गया। राजभक्ति का प्रदर्शन व वैधानिक उपायों-द्वारा शासन-व्यवस्था व सरकारी नौकरियों में भारतीयों को स्थान दिये जाने की माँग करना ही उस समय का उद्देश्य और कार्यक्रम था।

शुरू से ही काँग्रेस का एक बड़ा उद्देश्य हिन्दू-मुस्लिम-एकता रहा है। बिना इस एकता के काँग्रेस सरकार से अपनी कोई बात मनवा ही नहीं सकती और न-ही स्वराज्य की लड़ाई लड़ सकती है। इसलिये कॉंग्रेस के नेता आर-

म्भ से ही हिन्दू-मुस्लिम एकता पर ज़ोर देते रहे हैं। बात तो बड़ी उत्तम है—इसमें कोई सन्देह नहीं। यदि हिन्दू-मुसल्मान दोनों ही एक हो जायें तो देश के कल्याण में क्या सन्देह हो सकता है? पर यह समस्या उतनी सरल नहीं, जितनी ऊपर से दीखती है। तीसरी पार्टी अँग्रेज़ भी तो इस देश में हैं और उन्हें इस देश पर शासन करना है। यह एकता उनको कब अच्छी लगने लगी? उधर हिन्दू तथा मुसल्मानों में केवल एक पार्टी हिन्दू ही एकता के लाभ का अनुभव करते हैं और दूसरी पार्टी (मुसल्मान) यह समझते हैं कि इनका लाभ अरब, टर्की, मिश्र, अफग़ानिस्तान-आदि के साथ है, इसलिये इस समस्या को जितना सुलझाने की चेष्टा की गई है, उतनी ही यह जटिल होती गई। हिन्दुओं ने धीरे-धीरे एक के पश्चात् दूसरा अधिकार मुसल्मानों को देना स्वीकार किया और वह जितना पचाते गये, उतनी ही उनकी भूख बढ़ती गई। फिर अगर काँग्रेसी नेता कुछ आनाकानी करते तो यह शीघ्र ही सरकार के द्वार खटखटाते। मुसल्मानों ने यह एक दुकानदारी कर रखी है। पहले वह अपने-आपको पिछड़ी हुई जाति कहकर छोटे-मोटे अधिकार माँगते थे। जब वह मिले तो अपने बचाव का डर दिखाकर कौंसिलों में अधिक सीटें ले लीं। कुछ अधिकार लखनऊ-पैक्ट-द्वारा सन १९१६ में प्राप्त किये। फिर मिस्टर जिन्नाह के चौदह सवाल आये। गाँधीजी ने

खिलाफत को अपनाया और कोरे चैक पेश किये तो यह पञ्जे झाड़ कर उनके पीछे पड़ गये। इस भाँति 'मरज़ बढ़ता गया, ज्यों-ज्यों दवा की'! शैतान की आँत की भाँति कहीं खुशामद से, कहीं धमकी व झगड़ों से, कहीं सच बोलकर मुसल्मानों की माँगों में वृद्धि बढ़ती गई और आज पाकिस्तान का हौआ हमारे सन्मुख खड़ा है।

हिन्दुत्व के बीज

कॉंग्रेसी विचार के अतिरिक्त दूसरे विचार के हिन्दू भी हैं, जो इस जटिल समस्या का दूसरा हल बतलाते हैं। यह लोग अपनी शक्ति, अपने बल और स्वयं अपने पर विश्वास रखकर कार्य करना अधिक अच्छा समझते हैं। मुसल्मानों के साथ यह मेल करना बुरा नहीं समझते। किन्तु 'अगर मुसलमान मेल न करें तो स्वराज्य मिल ही नहीं सकता' इस विचार को वह नहीं मानते। इनका आदर्श एकता अवश्य है, पर एकता के लिये हिन्दुत्व का ही बलिदान कर देना कहाँ की बुद्धिमानी है? जब तक मुसल्मान अरब, तुर्की आदि के स्वप्न देखते हैं और भारतवर्ष का अन्न-जल ग्रहण करते हुए भी इसको अपनी सौतेली माँ ही समझते हैं, तब तक वह एकता क्या करेंगे? ऐसी विचार-धारा के प्रायः सभी मुसलमान हिन्दुओं को घृणा की दृष्टि से देखते हैं। कुछ थोड़े-से मुसल्मानों को छोड़कर अधिकांश में हिन्दुओं का रक्त संचालित करता है। इसी के

जल-वायु में पले हैं—इस पर भी भारतवर्ष को नहीं अपनाते, यह दुर्भाग्य ही की तो बात है। हो सकता है, उनमें कुछ ईमानदारी से कॉंग्रेस में हों, किन्तु इनकी संख्या बहुत कम है और इनका प्रभाव भी मुसल्मानों में इतना ही कम है।

यदि भविष्य में मुसल्मान भाई बनकर तथा शुद्ध हृदय से हिन्दुओं से एकता करना चाहेंगे तो हिन्दू सदा उनको गले से लगाने को तैयार हैं, किन्तु जब तक यह शुभ दिन नहीं आता, हमें केवल दूसरों के मुँह की ओर देखते ही न रहना चाहिये। हमें हिन्दू-जाति में सङ्गठन-द्वारा शक्ति उत्पन्न करनी चाहिये। इसी में हिन्दुओं का कल्याण है। फिर एकता भी दो समान दलों व व्यक्तियों में ही हो सकती है, और साथ ही दोनों एकता की आवश्यकता समान दृष्टि से अनुभव करें तब।

हम ऊपर कह आये हैं कि अँग्रेज़ी सभ्यता का प्रभाव यह पड़ा कि वह अपने को 'साहब' समझकर बिल्कुल कोरे हो गये तथा अपने धर्म को भूल गये। मुसल्मानों के काल में जिस यज्ञोपवीत व चोटी के कारण सहस्रों-लाखों ने अपने सिर हँस-हँसकर दिये थे, इस यज्ञोपवीत व चोटी को स्वयं अलग कर, हिन्दू फेंकने लगे। हिन्दू नारियाँ भी सती-धर्म को भूलकर मेमों का स्वाँग रच-रच, गली-गली फिरने लगीं। बहुत-से हिन्दू प्रसन्नता से हिन्दू-धर्म

को त्यागकर ईसाई या इस्लाम धर्म में प्रविष्ट गये। इस समय हिन्दू महाराणा प्रताप, गुरु गोविन्दसिंह, छत्रपति शिवाजी, छत्रसाल, बन्दा बैरागी-आदि के आदर्शों को भूल गये। वह विक्रमादित्य, चन्द्रगुप्त, अशोक, शङ्कर-आदि का नाम जानते थे। अँग्रेज़ी शिक्षा के सूर्य के प्रकाश से चका चौंध होकर हिन्दू भटक रहे थे और बहुत-से अपनी जाति को आप नष्ट कर रहे थे। ऐसे समय में गुजरात-प्रान्त में एक व्यक्ति

स्वामी दयानन्द सरस्वती

उत्पन्न हुए और उन्होने न केवल जाति के रोग को ही पहिचाना, बल्कि उसकी औषधि भी बता दी। स्वामी दयानन्द हिन्दू-जाति को सङ्गठन का पाठ पढ़ानेवाले इस युग में पहले नेता हुए हैं। उनके धार्मिक विचारों से किसी को मतभेद हो सकता है, परन्तु राष्ट्रीय दृष्टि से वह हिन्दुओं के पहले गुरु थे, जिन्होंने उनको सच्चा मार्ग दिखलाया। १८७३ के देहली दरबार से अपना कार्य आरम्भ कर, उन्होंने हिन्दुओं के अन्दर हिन्दुत्व से प्रेम व संगठन उत्पन्न करने का उद्योग किया। स्वामीजी केवल संस्कृत व अन्य देशी भाषाओं के ही पण्डित थे। वह अँग्रेजी बिल्कुल न जानते थे, किन्तु देश-प्रेम तथा देश-भक्ति उनके भीतर कूट-कूटकर भरे हुए थे। विदेशियों की अन्धाधुन्ध नक़ल करने को यह बुरा सम-

झते थे। विदेशी सभ्यता पर इनका ज़रा भी प्रभाव न हुआ और वह हिन्दू-जाति में अपनी जाति का गौरव भरने का यत्न करते रहे। उनकी पुस्तकों व व्याख्यानों से पता चलता है कि वह राजनीति को भली प्रकार जानते थे। उन्होंने एक स्थान पर लिखा कि 'अपना राज्य ही सब राज्यों से उत्तम राज्य है।' स्वामीजी शरीर के बड़े हृष्ट-पुष्ट व मन से बड़े निर्भय थे। इनका कहना था कि राज्य-बल की सहायता से बड़े-बड़े काम अति सरलता से हो जाते हैं। यदि बुद्ध धर्म को अशोक न अपनाता, तो इसकी इतनी उन्नति कभी न होती। स्वामी शङ्कराचार्य ने भी राज-बल की सहायता से ही अपने धर्म का प्रचार किया। स्वामीजी ने कुछ राज्यों में अपना प्रचार किया था। स्वामीजी का विश्वास था कि सदा से ही हिन्दू राजे अपने धर्म की रक्षा करते आ रहे हैं और इनके सम्भलने से हिन्दू धर्म सम्भल जायेगा। हिन्दू-जाति को जगाने में स्वामीजी ने बड़ा कार्य किया। कभी-कभी बड़े कठोर शब्द भी कह जाते, किन्तु इनके हिन्दू-प्रेम पर किसी को सन्देह नहीं हो सकता।

शायद उनके इन्हीं विचारों के कारण सरकार स्वामीजी की स्थापित आर्य-समाज को एक राजनीतिक संस्था समझने लगी। वास्तव में हिन्दू-धर्म में राजनीति भी धर्म का एक अङ्ग है और उसको राज-धर्म कहते हैं। हिन्दुओं

की कोई भी संस्था उसे छोड़ नहीं सकती। रामायण तथा महाभारत-जैसे हमारे धार्मिक ग्रन्थ राजनीति से भरे पड़े हैं। वेदों में भी राजनीति है। हिन्दुओं का धर्म राजनीति के बिना पूर्ण हो ही नहीं सकता। परन्तु स्वामीजी ने अपने विचारों को इस प्रकार रखा कि लोगों के अन्दर एक नया जीवन उत्पन्न हो गया। पञ्जाब में तो इस आन्दोलन ने बड़ा ज़ोर पकड़ा और सरकार आर्य-समाजियों को राज-द्रोही कहने लगी।

मुस्लिम-लीग की स्थापना

काँग्रेस की मुस्लिम-नवाज़ नीति पर थोड़ा-सा पहले ही लिख आये हैं। लॉर्ड कर्ज़न-द्वारा बंगाल के दो भाग करने पर वहाँ स्वदेशी-आन्दोलन बड़े ज़ोर से चल पड़ा, १९०२ में क्रान्तिकारी आन्दोलन का भी पता लगा। कुछ अँग्रेज़ मार भी दिये गये। फल-स्वरूप कुछ नव-युवकों को फाँसी पर लटका दिया गया। पंजाब में आर्य-समाज की शिक्षा नया जीवन उत्पन्न कर रही थी। इन सब आन्दोलनों को चलानेवाले हिन्दू नव-युवक ही थे। ऐसे सङ्कट-काल में सरकार को भी सहायता की आवश्यकता थी। हिन्दुओं से तो वह निराश हो चुकी थी, इसलिये अब उसकी दृष्टि मुसलमानों पर पड़ी। १९०६में सर (अब हिज़ हाइनेस)आग़ाख़ाँ मुसल्मानों का एक डेपुटेशन लेकर वॉयसरॉय की सेवा में उपस्थित हुए और नई कौंसिलों में मुसल्मानों को विशेष अधिकार

दिये जाने की माँग की। गवर्नमेण्ट की नीति तो मुसल्मानों को हिन्दुओं के भाग से घूँस देकर इनको अपने साथ मिलाने की थी ही। इस पर वायसरॉय ने तुरन्त उत्तर दिया, "मैं तुम्हारी माँग को बिल्कुल ठीक समझता हूँ। तुम्हारे अधिकार केवल तुम्हारी संख्या के अनुसार ही न समझे जाने चाहियें, बल्कि तुम्हारी राजनैतिक विशेषता और इस बात पर ध्यान रखकर कि तुम सरकार की किस प्रकार सेवा करनेवाले हो।" वायसरॉय महोदय के इन शब्दों में साम्प्रदायिक प्रतिनिध्वि का वह बीज पाया जाता है, जिसने आज पाकिस्तान का रूप धारण कर, सब को भयभीत कर रखा है। सरकार की चाल चल गई। मुसल्मान उसके हाथ बिक गये और काँग्रेस व हिन्दुओं का सामना करने के लिये उसी साल १९०६ में मुस्लिम-लीग की ढाका में स्थापना हो गई।

मुस्लिम-लीग ने जन्म लेते ही मुसल्मानों के लिये पृथक् प्रतिनिधित्व तथा विशेष अधिकारों की माँग आरम्भ कर दी। १९०७ में मुस्लिम-लीग का एक अधिवेशन कराँची में हुआ, जिसमें मुख्य प्रस्ताव यही पास किया गया कि नई कौंसिलों में मुसल्मानों को विशेष सुविधायें देकर प्रतिनिधि लिये जायें। मुसल्मानों के इस आन्दोलन की सीमा भारत तक ही सीमित न रही। इन्होंने १९०७ ही में मुस्लिम-लीग की एक शाखा लण्डन में खोल दी और मिस्टर अमीरअली-

आदि झट एक डेपुटेशन बनाकर भारत-मन्त्री के पास ले गये और मुसल्मानों के लिये विशेष अधिकारों - वाली रट लगानी आरम्भ की। मन्त्री महोदय ने कहा, "मैं भली प्रकार जानता हूँ कि यदि मुसल्मानों के साथ अन्याय किया गया या अगर किसी को यह सन्देह भी हो जाये कि हम इनके साथ अन्याय का विचार भी कर सकते हैं तो इसका बड़ा हानिकारक प्रभाव अवश्य ही कुस्तुनतुनिया पर पड़ेगा।" इसके थोड़े ही दिनों के पश्चात् उक्त मन्त्री महोदय ने लॉर्ड-सभा में खुल्लमखुल्ला घोषणा कर दी कि मुसल्मानों की सब माँगें स्वीकार कर ली जायेंगी। बस, फिर क्या था ? अन्धे को क्या चाहिये—दो नेत्र ! १६०८ में 'मॉर्ले माटेगू सुधार-योजना' लागू की गई, जिसके द्वारा वायसरॉय तथा प्रान्तीय कौंसिलों में भारतीयों की संख्या अधिक कर दी गई और मुसल्मानों को उनकी संख्या के अनुपात से कहीं अधिक सीटें मिलीं। उधर कॉंग्रेस भी मुसल्मानों को प्रसन्न रखना चाहती थी—वह चुप रही। जब कभी कोई हिन्दू मेम्बर सरकार का ध्यान इस ओर आकर्षित करता और माँग करता कि मुसल्मानों का पृथक् प्रतिनिधित्व हटाया जाये तो सरकारी मेम्बर उत्तर देते कि सरकार ने मुसल्मानों के साथ प्रतिज्ञा की है कि वह उनके लिये संरक्षण देगी—उनकी इच्छाओं का आदर करेगी।

सरकार हिन्दुओं को बंगाल, महाराष्ट्र, पञ्जाब-आदि में

स्वदेशी तथा बॉयकॉट के आन्दोलन चलाने पर दण्ड देने की इच्छुक थी और मुसल्मान व हिन्दुओं में भेद-भाव उत्पन्न कर, अपना शासन दृढ़ करना चाहती थी। मुसल्मान उनको अपने काम के पुर्ज़े मिल गये। जो मुसल्मान थोड़े ही समय पहले भारतवर्ष में राज्य करते थे, वही अब विदेशी सरकार के मातहत बन गये। कितनी दीनता का विषय है—कितनी अवनति की बात है! पर स्वार्थ मनुष्य से क्या कुछ नहीं करा सकता! सरकार का हाथ अपनी पीठ पर पाकर मुसल्मान और भी उत्साहित हो गए और लगे हिन्दुओं को तंग करने। हिन्दुओं के अपने नेता काँङ्ग्रेस में जाकर 'नेशनल' बन जाते और हिन्दुत्व का विचार करना भी पाप समझते। 'यह सब साम्प्रदायिक विषय है' कहकर हिन्दू-नाम से ही घृणा करने लगे। मुसल्मानों ने तबलीग़-आदि संस्थाएँ बनाकर हिन्दुओं को मुसल्मान बनाना आरम्भ कर दिया। जहाँ अवसर पाते, हिन्दू-बालकों तथा अबलाओं को उड़ा ले जाते और उन्हें मुसल्मान बना लेते। साम-दाम से काम न चले तो दण्ड भी चला लेते और स्थान-स्थान पर दंगे कर, हिन्दुओं को भयभीत करते। भेद-नीति चलाकर अछूत कहलानेवाले हिन्दू भाइयों को हिन्दुओं से पृथक् करने की चेष्टा करते। इन कारणों से हिन्दुओं की संख्या दिन-प्रति-दिन घटने लगी। दस वर्ष के पश्चात् जब-जब मनुष्य-गणना होती,

तत्र-तत्र हिन्दुओं की संख्या सर्वदा कम और मुसलमानों की अधिक होती जाती। तिस पर भी हमारे कॉङ्ग्रेसी नेताओं के नेत्र न खुले। भला वे साम्प्रदायिक झगड़ों में क्यों पड़ते? हिन्दू-जाति में ही उत्पन्न होकर और इसी में पलकर यह हिन्दू-नेता भ्रम-वश अपनी जाति की ही जड़े काटने लगे और समझने लगे कि इस भाँति वह देश तथा जाति का कल्याण कर लेंगे; परन्तु सूखी हुई जड़ों का वृक्ष कैसे फलीभूत हो सकता है या जीवित रह सकता है? हिन्दुओं को तेजी से मुसलमान, ईसाई-आदि बनाकर क्षीण किया जा रहा था, पर अपने ही नेताओं की इनके सम्बन्ध में इस उदासीनता से बढ़कर हिन्दुओं का दुर्भाग्य और क्या हो सकता है?

अन्धार में उजाला

परन्तु हिन्दुओं का यह अन्धकारमय समय बिल्कुल निराशाजनक न था। हम पहले ही लिख आये हैं कि स्वामी दयानन्द ने किस भाँति पञ्जाब में हिन्दुत्व का बीज बोया है, काँग्रेस के बड़े वृक्ष की छाँह में वह बीज धीरे-धीरे बढ़ने लगा। कुछ ऐसे महानुभाव हिन्दू उत्पन्न हुए, जिन्होने हिन्दुओं की दुर्बलताओं का अनुभव किया और उनकी रक्षा करने की चेष्टा की। इन महानुभावों में से एक सज्जन रायबहादुर लालचन्द ने एक लेख-माला पत्र 'पञ्जाबी' में लिखना आरम्भ किया, जिसका शीर्षक था

'पॉलिटिक्स में आत्मघात (Self Abnegation in politics)' 'हिन्दू-महासभा' के प्रसिद्ध नेता भाई परमानन्दजी के यत्न से यह लेख पुस्तक-रूप में अँग्रेज़ी में प्रकाशित हो चुके हैं। मुझे पता नहीं कि हिन्दी में भी यह पुस्तक छपी है, या नहीं, यदि न छपी हो, तो प्रकाशक को चाहिये कि इसका हिन्दी अनुवाद भी प्रकाशित करायें।

जब लाला लालचन्द ने उपरोक्त लेख 'पञ्जाबी' में लिखे, तब काँग्रेस के जन्म को लगभग पच्चीस वर्ष हुए थे, मगर लालाजी ने काँग्रेसी हिन्दू-नेताओं की हिन्दुत्व के प्रति उदासीनता को उसी समय भाँप लिया था। उस समय गोखले तथा फिरोज़शाह का बोलबाला था। लालाजी की टिप्पणियाँ भविष्यवाणियों की नाईं बहुत ही सच हुईं और ऐसा अनुभव होता था, मानों वह उसी समय बैठे, अपने सम्मुख सब कुछ देख रहे थे। अपने एक लेख में लालाजी लिखते हैं—'अंग्रेज़ी सरकार केवल मुसल्मानों को ही प्रसन्न करना नहीं चाहती; वह इस बात से भी डरती है कि मुसल्मान उसको तङ्ग करेंगे। मुसल्मान भी सरकार की इस दशा को भली प्रकार जानते हैं और वह अपनी माँगें अधिक-अधिक दबाव से पेश करते हैं और धमकियों-आदि के द्वारा अपनी बातें स्वीकार करवाते हैं।' इस लेख में लालाजी आगे लिखते हैं-'पिछले तीन सालों के समाचारों से यह भली प्रकार ज्ञात हो गया

है कि मुसल्मानों की आशाये इनकी माँगों से भी अधिक पूरी कर दी जा रही हैं और हिन्दू हर स्थान पर पीछे हटते जा रहे हैं। हिन्दुओं के पास केवल एक शस्त्र रह गया है और वह है, बातें बनाना। केवल प्रस्तावों का कोई प्रभाव नहीं होता।' काँग्रेस की आलोचना करते हुए लालाजी लिखते हैं—'हिन्दुओं को नष्ट करने के लिये यह बाहिर की आपत्तियाँ क्या कम थीं, कि उन्होंने अपने घर के भीतर ही 'काँग्रेस' नाम की एक नई आपत्ति उत्पन्न करली? काँग्रेसी-चक्र के भीतर अगर किसी वस्तु का बहिष्कार है, तो वह 'हिन्दू' नाम है। मुसल्मानों को तो विशेष अधिकार देने के प्रस्ताव वहाँ पास हो सकते हैं, किन्तु 'हिन्दू' नाम वहाँ लेना पाप है।' लालाजी आगे लिखते हैं—'विदेशों में हिन्दुओं का कोई मित्र नहीं और भारतवर्ष में वह बेबस हैं। हिन्दुस्तान की सब से बड़ी राजनीतिक संस्था इनका पक्ष नहीं लेती; क्योंकि इसने आरम्भ से ही राष्ट्रीयता का दृष्टिकोण अपने सन्मुख रखा हुआ है और वह उस सिद्धान्त को त्यागकर पीछे नहीं आ सकती।'

हिन्दू-प्रेस भी कॉङ्ग्रेस के राग अलापता है और हिन्दुओं की रक्षा करना अपना कर्तव्य नहीं समझता। एक स्थान पर लालाजी लिखते हैं—'कॉङ्ग्रेस का सब से बड़ा अपराध यह है कि वह भारतवर्ष में हिन्दू-मुसल्मानों को मिलाकर एक नई जाति बनाना चाहती है। अपनी इस

आशा की पूर्ति के लिए कॉङ्ग्रेसी-हिन्दुओं ने हिन्दुत्व को बिल्कुल भुला दिया है। कॉङ्ग्रेस के इन विचारों से मुसल्मानों ने बहुत लाभ उठाया और हिन्दुओं को हर स्थान पर हानि उठानी पड़ी। एक ओर तो उन्होंने सरकार को क्रुद्ध कर दिया और जब कुछ अधिकार लेने-देने की बारी आई तो इसका लाभ मुसल्मानों ने उठाया। इस प्रकार काँग्रेस के नेता हिन्दुओं के हितों का नाश अपनी आँखों से देखते रहे और चुपचाप मौन साधे बैठे रहे। उनका किसी अन्य हिन्दू को उत्साह देना तो दरकिनार, बल्कि इनकी बड़ी चेष्टा यही थी कि अगर कोई ऐसा हिन्दू नेता या पत्र हो तो उसे उसी क्षण दबा दिया जाये।

'किन्तु काँग्रेस के विरुद्ध मेरी बड़ी यह आपत्ति है कि वह हिन्दुओं को सिखाती है कि वह अपना हिन्दुत्व ही भूल जायें। हिन्दुओं को हिन्दुस्तानी बनाकर वह इनको अपने भूत काल के इतिहास, गौरव तथा सभ्यता-आदि भुलाने की इच्छुक है। जो कार्य बड़े-बड़े आक्रमणकारी न कर सके, वह कार्य स्वयं काँग्रेस करना चाहती है। लाखों-करोड़ों आपत्तियाँ उठाकर भी हिन्दुओं ने अपने धर्म, अपनी सभ्यता व संस्कृति की रक्षा की है, अब वह इसे कैसे भूल जायें, यह बात मेरी समझ में नहीं आती और लिस पर मुसलमानों ने एक जाति की नाईं कभी भी काँग्रेस में फँसनेकी इच्छा ही नहीं की, तो फिर क्या यह हमारी काय-

रता नहीं कि हम यूँ ही उनकी ध्वज अपनी ध्वज के साथ मिलाते फिरें और घोषणा करें कि हिन्दू-मुसलमान एक जाति हैं, ऐसी दशा में कॉंग्रेस के लिये केवल एक ही मार्ग रह जाता है, वह यह कि वह इस नवजाति को अर्थात् 'हिन्दोस्तान' के ढकोसले को छोड़ दें और हिन्दुत्व को अपनायें।'

इसी समय बङ्गाल में एक और पुरुष पैदा हुए, जिनका नाम लेफ्टिनेन्ट कर्नल मुकर्जी था। उन्होंने एक पुस्तक लिखी, जिसका नाम 'मृत्यु-शैया पर एक जाति' (A Dying Race) रखा। कर्नल साहब ने हिन्दुओं की उदासीनता पर बड़ा खेद प्रकट किया और यह बताया कि मुसल्मान इनसे कहीं अधिक होशियार, चालाक तथा चालबाज़ हैं। वह लिखते हैं कि आज मुसल्मानों का भविष्य उज्ज्वल दीखता है और हिन्दुओं का भविष्य काला प्रतीत होता है।

लोकमान्य तिलक

परन्तु यह कहना सर्वदा अनुचित होगा कि कॉंग्रेस के सभी हिन्दू नेता हिन्दुत्व से उदासीन थे। महाराष्ट्र में लोकमान्य तिलक पक्के कॉंग्रेसी होते हुए भी पक्के हिन्दू थे। स्वयं वह संस्कृत के उच्च कोटि के पण्डित थे। उन्होंने वेदों तथा शास्त्रों का भली प्रकार अध्ययन किया था। वह चितपावन ब्राह्मण थे और उनकी नसों में पेशवाओं व नाना-आदि का रक्त भरा हुआ था। देश-सेवा के साथ-साथ उन्होंने हिन्दू-जाति की सेवा को कभी नहीं भुलाया।

जब जेल से बाहर होते तो शिवाजी-जयंती तथा गणपति-उत्सव बड़ी धूम-धाम से मनाते और जेल के अन्दर रहकर उन्होंने हिन्दुओं को 'गीता-रहस्य' एक अनमोल रत्न दिया। उनके पत्र 'मरहट्टा' व 'केसरी' जहाँ देश-सेवा में लगे हुए हैं, वहाँ उन्होंने हिन्दू-ध्वज को कभी नीचे न होने दिया। अब भी यह दोनों पत्र हिन्दू-जाति की अमूल्य सेवा कर रहे हैं।

'हिन्दू-महासभा' के पिता श्री मालवीयजी

पण्डित मदनमोहन मालवीयजी का नाम कौन हिन्दू नहीं जानता ? आप प्रयाग व काशी के पण्डित और संस्कृत के बड़े विद्वान् हैं। जहाँ वह काँग्रेस-आन्दोलन में सर्वदा अग्र-सर रहे हैं, वहाँ उन्होंने हिन्दुत्व को भी कभी नहीं भुलाया। उन्होंने कई हिन्दू संस्थायें स्थापित कीं और हिन्दी भाषा इनके उद्योग से फलीभूत होने लगी। काशी का हिन्दू-विश्व-विद्यालय पण्डितजी का नाम सर्वदा जीवित रखेगा। वह हिन्दू हितों की रक्षा के लिये कई बार जेल भी हो आये हैं। स्वयं कट्टर सनातनधर्मी होते हुए भी मालवीयजी शुद्धि तथा अछूतोद्धार के बड़े पक्षपाती हैं और कट्टर ब्राह्मणों के विरोध करने पर भी वह अछूत भाइयों को मन्त्र-दीक्षा देकर पवित्र करते हैं। सब से पहले मालवीयजी के उद्योग से प्रयागराज में हिन्दू-समाज की स्थापना हुई। १९१० में हिन्दू-नेताओं की एक बैठक प्रयाग में बुलाई गई और

इसी समय से "अखिल भारतीय हिन्दू महासभा" की स्थापना की गई। इस अवसर पर "हिन्दू-महासभा" के उद्देश्य व मन्तव्य भी बनाये गये और सभा के कार्य-कर्ता भी चुन लिए गए। इसलिए हम कह सकते हैं कि पूज्य मालवीयजी ही 'हिन्दू-सभा' के जन्मदाता हैं, इसके पश्चात् मालवीयजी कई बार हिन्दू-सभा के प्रधान चुने गए और इनके उद्योग से सभा चलती रही।

लाला लाजपतराय व स्वामी श्रद्धानन्दजी

"हिन्दू-सभा" के विस्तार का वर्णन् करने से पहले दो और कॉंग्रेसी नेताओं का वर्णन कर देना आवश्यक समझते हैं, जिन्होंने हिन्दू-जाति की सेवा से कभी मुँह न मोड़ा। यह दोनों सज्जन पंचनद-भूमि ने उत्पन्न किए और वह थे पंजाबकेशरी लाला लाजपतराय तथा स्वामी श्रद्धानन्दजी। दोनों कट्टर कॉंग्रेसी थे, पर स्वामी दयानन्द की शिक्षा ने हिन्दुत्व का बीज दोनों के हृदयों में डाला था, स्वामी श्रद्धानन्द तो पहले 'गुरुकुल कॉंगड़ी'-आदि के द्वारा हिन्दू-समाज की सेवा करते रहे और अन्त में एक प्रकार से मजबूर होकर कॉंग्रेस में आये, किन्तु इनका हृदय इससे शीघ्र ही उदास हो गया और वह फिर शुद्धि-आदि के कामों में लग गए। यह हिन्दू-जाति का प्रेम ही था कि स्वामीजी को अपने सीने पर गोलियाँ खानी पड़ीं। और वह इस पवित्र जाति के लिए "अमर शहीद" हो गए।

लाला लाजपतराय बड़े देशभक्त थे। देश के हित उन्होंने क्या-क्या आपत्तियाँ नहीं उठाईं ? जेल गये, देश निकाला हुआ, और अन्त में देश की सेवा करते हुए चल बसे। मगर लालाजी कट्टर हिन्दू थे। उनको हिन्दू-संस्कृति तथा हिन्दू-सभ्यता पर गौरव था। १६२६ में उन्होंने हिन्दुस्तानियों की आपत्ति के साथ मिलकर हिन्दू-ध्वज उठा लिया और पण्डित मोतीलाल का साथ त्यागकर हिन्दू-सभा के टिकट पर एसेम्बली के उम्मीदवार खड़े हो गये और दोनों कॉंग्रेसी उम्मीदवारों को पराजित किया। इसके अतिरिक्त उन्होंने समस्त देश का भ्रमण कर, 'हिन्दू-सभा' का प्रचार किया और 'हिन्दू-सभा' के टिकट पर खड़े होनेवाले उम्मीदवारों की सहायता की। १६२६ में मालवीयजी, लालाजी, स्वामी श्रद्धानन्द, भाई परमानन्द, डॉक्टर मुंजे-आदि के उद्योग से 'हिन्दू-सभा' ने हर एक स्थान पर कॉँग्रेस को पराजित किया।

बङ्गाल के प्रसिद्ध नेता मिस्टर सी० आर० दास जब गया में कॉँग्रेस के सभापतित्व का आसन ग्रहण करने जा रहे थे तो इनकी मुस्लिम-परस्त मनोवृति देखकर लालाजी ने एक पत्र लिखा था। इससे लालाजी के मुसल्मानों के सम्बन्ध में विचार भली प्रकार ज्ञात हो सकते हैं। लालाजी लिखते हैं—'मेरे मन में एक विचार थोड़े दिनों से बड़ी उथल-पुथल मचा रहा है, और मेरी इच्छा है कि आप भी

इस पर भली प्रकार ध्यान दें। यह बात हिन्दू-मुस्लिम एकता की है। पिछले छः मास से मैं निरन्तर मुसल्मानों का इतिहास व इनकी धर्म-पुस्तकें पढ़ रहा हूँ, और मैं इस परिणाम पर पहुँचा हूँ कि हिन्दू-मुस्लिम-एकता न तो सम्भव है और न कार्य-रूप में ही आनेवाली है। मैं मुस्लिम-नेताओं की सत्यता पर विश्वास कर सकता हूँ और मुझे ज्ञात है कि इनमें बहुत भले तथा सच्चे मनुष्य हैं। किन्तु मुश्किल यह है कि वह बेचारे 'क़ुरान शरीफ' के विरुद्ध कैसे जा सकते हैं। यह मेरी इच्छा है कि मुसल्मानों की धर्म-पुस्तके पढ़कर मैं जिस परिणाम पर पहुँचा हूँ, वह झूठ प्रमाणित हो और मुझे बड़ी प्रसन्नता होगी तथा मेरे ऊपर से बड़ा बोझ उतर जायेगा, यदि कोई मुझे मेरे इन विचारों की असत्यता का विश्वास करा दे। किन्तु यदि मेरे विचार सत्य हैं कि हिन्दू तथा मुसल्मान अँग्रेजों के विरुद्ध एका तो कर सकते हैं, पर हिन्दुस्तान में मिलकर स्वराज्य स्थापित नहीं कर सकते. इसका इलाज कैसे हो सकता है? मैं भारतवर्ष के ६ करोड़ मुसल्मानों से डरता नहीं हूँ, परन्तु जब इन ६ करोड़ के साथ अफगानिस्तान, मध्य-एशिया, अरब, तुर्की-आदि-के शस्त्र-धारी लड़ाकू-मुसल्मान मिल जायेंगे तो सामना करना कठिन हो जायेगा। मैं हिन्दू मुस्लिम एकता में सच्चे हृदय से विश्वास रखता हूँ, और इसकी आवश्यकता भी अनुभव करता हूँ। मैं मुस्लिम-नेताओं पर पूरा विश्वास

करने को प्रस्तुत हूँ, पर 'क़ुरान शरीफ' तथा हदीयत की आज्ञाओं का क्या इलाज हो सकता है? मुस्लिम-नेता इनका उल्लंघन नहीं कर सकते तो क्या हमारा भाग्य फूट गया और हम सर्वदा के लिये अवनति के गढ़े में ही रहेंगे? मुझे पूर्ण विश्वास है कि ऐसा कदापि न होगा। मैं आशा करता हूँ कि काँग्रेस के अत्यन्त बुद्धिमान् और विचारवान् नेता इसका कोई इलाज खोज निकालेंगे।'

देशभक्त लाला हरदयाल

प्रथम अध्याय को समाप्त करने के पूर्व हम पाठकों के सम्मुख एक महान् देशभक्त नेता व त्यागी के विचार रखना अपना आवश्यक कर्त्तव्य समझते हैं, जिससे वह भली प्रकार समझ सकते हैं कि "हिन्दू-महासभा" तथा हिन्दू-संगठन की आवश्यकता क्यों है? भला देशभक्त लाला हरदयाल का नाम कौन भारतीय नहीं जानता? काँग्रेसी कहा करते हैं कि "हिन्दू-सभा" साम्प्रदायिक संस्था है और वह देश के हितों के प्रतिकूल चल रही है, पर लाला हरदयाल से बड़ा देश-भक्त कौन हुआ है? उस महापुरुष ने अपना सर्वस्व ही देश पर निछावर कर दिया, सारी आयु विदेशों में व्यतीत की और अन्त में अमरीका में प्राण-त्याग किए, पर अपनी प्यारी मातृभूमि पर पग न रख सके। परन्तु इतना देश-प्रेम रखते हुए भी लालाजी हिन्दुत्व पर अभिमान करते थे और इसकी रक्षा का हर

एक उपाय भी सोचते थे। हम पाठकों का सम य अन्य व्यर्थ बातों मे न खोकर लालाजी के विचार उपस्थित करते हैं। पाठक स्वयं निर्णय करलें—"मेरे विचार" नाम की पुस्तक में हिन्दू-संगठन के आन्दोलन की प्राचीनता पर लालाजी लिखते हैं—"यह आन्दोलन तो अत्यन्त प्राचीन है। इस पवित्र आन्दोलन के पिता तो वेदों के ऋषि व्यास, वाल्मिकि, भारद्वाज, कालिदास, अशोक, बुद्ध भगवान्, श्रीराम, श्रीकृष्ण, गुरु तेगबहादुर, गुरु गोविन्दसिंह, बन्दा वैरागी, रणजीतसिंह, शिवाजी, महाराणा प्रताप, स्वामी दयानन्द, स्वामी विवेकानन्द-आदि महानुभाव हैं, यह आन्दोलन सहस्रों, लाखों वर्षों से चला आरहा है।' भाषा के सम्बन्ध में लालाजी लिखते हैं—'राष्ट्रीय संगठन और एकता हम केवल एक राष्ट्रीय भाषा-द्वारा कर सकते हैं। अतः हिन्दू-संगठन के कार्यकर्ताओं को अपनी राष्ट्रीय भाषा हिन्दी का कभी निरादर न करना चाहिये। उर्दू भाषा तो हिन्दुओं की दासता का द्योतक है।' एक अन्य स्थान पर लालाजी लिखते हैं—'हिन्दुओं को वीर बनाओ। मुसल्मानों की चापलूसी मत करो। स्वराज्य के लिए मुसल्मानों की सहायता की आवश्यकता नहीं और न ऐसे स्वराज्य की हमारी अभिलाषा ही है। अहिन्दुओं के मुँह की ओर मत ताको। यदि मुसल्मानों की सहायता से स्वराज्य लोगे, तो फिर सदैव इनके मुखापेक्षी बने रहोगे।'

जब लालाजी दूर देशों में हिन्दू-सङ्गठन के समाचार पढ़ते तो प्रसन्नता के मारे फूले नहीं समाते थे। एक स्थान पर वे लिखते हैं—'हिन्दू-सङ्गठन के आन्दोलन की दिन दुगुनी, रात चौगुनी उन्नति हो रही है। प्रत्येक गाँव में व प्रत्येक नगर में हिन्दू-सभाएँ बनाने के प्रयत्न किये जारहे हैं। बस, मैं इसे ही स्वतन्त्रता का मार्ग समझा हूँ। इसी से भारतके इतिहास में एक नूतन युग आरम्भ हो जायेगा। प्रश्न यह है कि क्या हिन्दू अकेले स्वराज्य ले सकते हैं? मेरा उत्तर यही है कि निस्सन्देह हम स्वराज्य ले सकते हैं और ले लेंगे।' मुसल्मानों ने जब लालाजी के विचार पढ़े, तो अपने स्वभाव के अनुकूल उन्हें गालियाँ देने लगे और लालाजी को 'पागल' कहकर पुकारने लगे। लालाजी को जब यह ज्ञात हुआ तो उन्होंने उत्तर में लिखा कि "मैं तो वास्तव में पागल हूँ, और अधिक-से-अधिक हिन्दुओं को भी अपने समान 'पागल' व सिड़ी बनाना चाहता हूँ। यदि एक करोड़, केवल एक करोड़ हिन्दुओं के मस्तक व मन में मेरी अपेक्षा आधा भी पागलपन आ जाये तो हिन्दू-जाति न केवल भारत से काबुल तक का राज्य ले लेगी, बल्कि इसका राज्य तो अफ्रीका-आदि देशों पर भी हो सकता है। यही हिन्दू-सङ्गठन के पागल भक्तों और सेवकों का आदर्श होना चाहिये। मैं तो ऐसे ही पक्के, पूर्ण व पवित्र 'पागल-पन' का प्रचार करता हूँ, अतः इस 'पागल' की उपाधि का

सम्मान करता हुआ इसे सहर्ष स्वीकार करता हूँ।' हिन्दू-नवयुवकों के लिये लालाजी का सन्देश है—'यदि हिन्दू-जाति की राख के ढेर के नीचे कहीं ज़रा-सी भी चिनगारी सुलगती शेष है तो इसे फूँक-फूँककर ऐसी प्रचण्ड ज्वाला उत्पन्न कर दो, जिसमें हमारी दासता, दरिद्रता व दीनता सदा के लिये जल-भुनकर राख हो जाये। जब हमारी देशी भाषा, हमारा इतिहास, हमारे पर्व व त्योहार, हमारा नाम व हमारी संस्थायें यहाँ न रहेंगी तो हमारी बला से; इस देश में कोई बसे। यदि हिन्दुस्तान हिन्दुओं का स्थान न रहेगा तो हमारी जातीयता नष्ट हो जायेगी।

'काँग्रेस जैसी विदेशी नाम की एक हास्यजनक संस्था में भाग लेने की आवश्यकता नहीं है। हमारे लिये 'हिन्दू-महासभा' ही सब-कुछ होनी चाहिये। इसके द्वारा ही हम सब राष्ट्रीय कार्य करेंगे। बस, अब मिस काँग्रेस को दूर से नमस्ते।'

लाला हरदयाल की भाँति अन्य क्रान्तिकारी नेता श्री रासबिहारी बोस-आदि भी हिन्दुत्व के कुछ कम प्रेमी नहीं हैं। आप जापान से श्री भाई परमानन्द को एक पत्र में लिखते हैं—'पहले हिन्दुओं को आपस में सङ्गठन करना चाहिये, फिर हिन्दू-मुस्लिम-एकता हो सकती है। और तब ही ठीक रूप में भारत के भाग्य का निर्णय होगा। एकता केवल दो बराबरवालों में हो सकती है। जब छोटे-बड़े और

दुर्बल-शक्तिशाली हिन्दुओं में सङ्गठन होगा और वह शक्ति-शाली बनेंगे, तब मुसलमान हमारी मित्रता प्राप्त करने का स्वयं यत्न करेंगे। उसी समय एकता स्थापित होगी।'

इसी प्रकार हिन्दुत्व के आधुनिक काल के बड़े प्रचारकों में स्वामी विवेकानन्द का नाम भी अमर रहेगा। स्वामीजी कट्टर वेदान्ती थे, पर भारतीयत्व व हिन्दुत्व इनमें कूट-कूट कर भरा हुआ था। अमरीका-आदि दूर के देशों में स्वामी-जी ने हिन्दू-धर्म का डङ्का बजाया और भारतवर्ष का मस्तक ऊँचा किया। उनके व्याख्यान देश व जाति प्रेम से भरे पड़े हैं। हिन्दू-जाति को स्वामीजी-जैसे विद्वान्, पुरुषार्थी, निर्भय हिन्दुत्व-प्रेमी महानुभावों की आवश्यकता है।

*

दूसरा अध्याय

महासभा के पहले पचीस वर्ष

हम ऊपर लिख आये हैं कि १६१० में प्रयागराज में श्री मालवीयजी के कर-कमलों-द्वारा 'अखिल भारतीय हिन्दू महासभा' की स्थापना हुई। परन्तु 'सभा' का कार्य कुछ जोर से न चल सका। उधर पञ्जाब में भी 'हिन्दू-सभा' की आवश्यकता दीखने लगी और अमृतसर में १६१२ में लाला लालचन्दजी के उद्योग से पञ्जाब में पहली हिन्दू-कॉन्फ्रेंस हुई। इस कॉन्फ्रेंस में पञ्जाब के सभी हिन्दू-नेताओं ने भाग लिया। कुछ दिनों तक यह दोनों सभायें 'प्रयाग हिन्दू सभा' तथा 'पञ्जाब हिन्दू सभा' अपना-अपना कार्य करती रहीं, परन्तु कॉंग्रेस के हिन्दू-नेताओं ने इसके साथ कोई सहानुभूति प्रकट न की और वह इनको घृणा की दृष्टि से देखते रहे। पर समय के साथ-साथ निम्न विचारों के साथ 'हिन्दू-सभा' की आवश्यकता अधिक-से-अधिकतर ज्ञात

होने लगी। 'यदि काँग्रेस हिन्दुओं की रक्षा करना नहीं चाहती तो हिन्दू स्वयं अपनी रक्षा क्यों न करें? हिन्दू-मुस्लिम-ऐक्य की दीवानी काँग्रेस को हिन्दुत्व की क्या फ़िक्र?'

लखनऊ का १६१६ का पैक्ट

इन्हीं दिनों १६१६ में काँग्रेस का वार्षिक अधिवेशन लखनऊ में बड़ी धूम-धाम से हुआ। काँग्रेस की बागडोर इस समय मारवाड़ियों के हाथ में थी। बड़े-बड़े वक्ताओं के बड़े-बड़े धुआँधार व्याख्यान हुए। यू० पी० के गवर्नर साहिब भी खुली सभा में पधारे। यह पहले जर्मन युद्ध का समय था। लोकमान्य तिलक ने छः वर्ष का कारावास भुगतकर पहलीबार कॉंग्रेस में भाग लिया था। नवयुवकों में बड़ा जोश था। इससे पहले तो काँग्रेस फुटकर माँगें करती रही थी, किन्तु अब स्वराज्य से कम कोई वस्तु लेने को तैयार न थी। ख़ैर, स्वराज्य का प्रस्ताव बड़ी धूम-धाम से पास हो गया, पर बिना हिन्दू मुस्लिम-एकता के स्वराज्य कहाँ? सर्वदा की नाईं कॉंग्रेसी-नेता मुसल्मानों को मनाने लगे। मुस्लिम-लीग का अधिवेशन इन्हीं दिनों लखनऊ में हो रहा था। मिस्टर जिन्ना, राजा महमूदाबाद-आदि मुस्लिम लीग के नायक वहाँ उपस्थित थे। वे काँग्रेसी-हिन्दुओं की दुर्बलताओं को भली प्रकार जानते थे। फिर क्या था? सौदे-बाज़ी आरम्भ हुई। मुसल्मानों को किसी प्रान्त में रिआयतें मिलीं और किसी में इनकी विशेषतायें स्वीकार की गईं।

हिन्दू हर बात पर घाटे में रहे। हिन्दू-हितों का बलिदान कर, इन हिन्दू-नेताओं ने इस आशा पर मुसल्मान नेताओ से सन्धि करली कि हिन्दू-मुस्लिम एकता का प्रश्न सदा के लिये हल हो जायेगा। काँग्रेस ने स्वयं मुसल्मानों की पृथक् स्थिति स्वीकार करली और चुनाव-आदि में इनको पृथक् सीटे देना स्वीकार कर लिया। पञ्जाब तथा बङ्गाल में तो मुसल्मानों के बहुमत का शासन सर्वदा के लिये स्वीकार हुआ और जिन प्रान्तों में मुसल्मान अल्प संख्या में थे, वहाँ उनको विशेष-अधिकार देकर उनका प्रतिनिधित्व बढ़ाया गया। ब्रिटिश सरकार तो ऐसे अवसरों की खोज में रहती थी। 'मॉटेग्यू चैम्सफोर्ड-स्कीम' में इस बटवारे को क़ानूनी रूप-रेखा दी गई। इस प्रकार हिन्दू नेताओं ने अपने पैरों पर अपने हाथ से कुल्हाड़ा मारा। लखनऊ का यह पैक्ट विष-भरा प्याला था, और इस स्थान पर लगी जड़ आज फल-फूल रही है और कई हेर-फेरों से चल-फिरकर अब हमारे सामने 'पाकिस्तान' के रूप में प्रत्यक्ष हुई है, जिसका भविष्य एक पहेली है।

लोग कहते हैं कि हिन्दू बड़ी समझवाले, बुद्धिमान्, चतुर, और बड़े उदार हैं, लेकिन राजनीति में उदारता विष के समान है, जो एक देश या जाति को चिरकाल या सर्वदा के लिये दास बना देती है। हमारे पुराने इतिहास में भी ऐसी उदारताओं की कमी नहीं है। राजा नल ने अपने

भाई के साथ उदारता दिखाई तो स्वयं स्त्री-समेत बन-बन भटके। महाराजा युधिष्ठिर ने भी उदारता का ख़ूब फल चखा, अन्त में श्रीकृष्ण ने रक्षा की। दिल्ली-पति महाराज पृथ्वीराज की उदारता ने तो, हमें आज तक दासता के ऐसे गढ़े में ढकेला, जिससे निकलने का कोई मार्ग नहीं सूझता। यही उदारता काँग्रेस हिन्दू-नेताओं ने लखनऊ में दिखलाई और अब हाथ मल-मलकर पछताते हैं। जब मुसल्मानों का पृथक् प्रतिनिधित्व स्वयं स्वीकार कर लिया, तो काँग्रेस स्वयं ही 'नेशनल' कहाँ रही? 'नेशनल' तो तब होती, जब हिन्दू मुसल्मानों का सम्मिलित चुनाव होता! ख़ैर मुस-ल्मानों ने हिन्दू नेताओं को ख़ूब उल्लू बनाया, और अपनी पहली शक्ति के आधार पर अपनी माँगें बढ़ाते गये और कभी सरकार से मिलकर और कभी काँग्रेस से मिलकर अपनी स्वार्थ-सिद्धि करते रहे।

इस सम्बन्ध में हम इतना कह देना आवश्यक समझते हैं कि श्री मालवीयजी लखनऊ-पैक्ट को अच्छा न समझते थे और इनसे जो कुछ बन पड़ा, हिन्दू-हितों की रक्षा के लिये किया। लोकमान्य तिलक ने भी इसे इस शर्त पर स्वीकार किया था कि यह हिन्दू-मुस्लिम-एकता का अन्तिम समझौता होगा और इस को पूर्ण रूप से कार्य में परिणत कर दिया जायेगा न कि इसके टुकड़े-टुकड़े करने के लिये स्वीकार किया था।

महात्मा गाँधीजी ने भी इस कॉङ्ग्रेस में भाग लिया, किन्तु इनका प्रभाव उस समय तक कुछ अधिक न था। खैर पैक्ट सर्व सम्मति से पास हुआ। हिन्दू इस बात पर प्रसन्न थे कि उन्होंने थोड़ी-सी घूस देकर मुसल्मानों को सर्वदा के लिये अपने साथ मिला लिया। मुसल्मान इस बात पर प्रसन्न थे कि, पैर रखने का स्थान तो मिल ही गया, अब आगे बढ़ना अपने हाथ है। सरकार को यह प्रसन्नता थी कि जब व्यापार बढ़ रहा है, बढ़िया माल तथा नक़दी हमारे पास हैं, हम मुसल्मानों को ज़रा-सा लालच और दे देंगे तो वे तत्काल हमारे साथ मिल जायेंगे और यही हुआ, सरकार की चाल चल गई। नेशनल कॉङ्ग्रेस का यह पैक्ट भारत में एकता स्थापित करने के लिये घातक सिद्ध हुआ।

श्री मालवीयजी तो हिन्दू-सभा की आवश्यकता को पहले ही अनुभव कर चुके थे। लखनऊ कॉङ्ग्रेस-अधिवेशन का कार्य, एक बड़े ऐतिहासिक सज्जन पण्डित देवरत्न शर्मा जी जो कि लाला लालचन्द के साथ पञ्जाब में हिन्दू-सभा का कार्य करते थे—होता रहा था, जब तक कि वे पण्डाल में आये भी न थे। कॉङ्ग्रेस का प्रभाव इतना अधिक था, कि कोई हिन्दू नेता खुले तौर से, हिन्दू-सभा में आने की इच्छा प्रकट न करता था। जो हिन्दू-सभा का कार्य करे, वह एक प्रकार से अछूत समझा जाता था, और कॉङ्ग्रेसी

नेता उसे घृणात्मक दृष्टि से देखते थे तथा देश-द्रोही-आदि की उपाधि देने से भी न चूकते थे। इतना पता चलता है कि १ दिसम्बर, १९१२ में, 'अखिल-भारतीय हिन्दू-सभा' की एक कॉन्फ्रेंस, दिल्ली में रायबरेली के बड़े ताल्लुक़ेदार ऑनरेबिल राजा रामपालसिंहजी के सभापतित्व में हुई। इस कॉन्फ्रेंस में भारत के समस्त प्रान्तों के प्रतिनिधि आये और उन्होंने हिन्दुओं की शोचनीय दशा पर ठंडे दिल से विचार किया था।

'रॉलट-ऐक्ट' या काला ऐक्ट

१९१८ में जर्मन-युद्ध समाप्त हो गया और ब्रिटिश गवर्नमेण्ट की विजय हुई। सरकार ने 'मांटेग्यू-चेम्सफोर्ड-स्कीम' प्रकाशित की और लखनऊ-पैक्ट के बँटवारे को स्वीकार कर, इस पर अपनी मोहर लगा दी और साथ में यह भी लिख दिया "यद्यपि साम्प्रदायिक प्रतिनिधित्व (Commanal Representatior) एकता उत्पन्न करने में बाधक है, तथापि सरकार को यह इसलिये स्वीकार है कि सरकार ने हिन्दुओं की दुर्दशा का अनुभव किया।" इस पुस्तक का लेखक उन दिनों लखनऊ में ही था। यद्यपि पंडितजी की अवस्था बहुत अधिक थी, पर इनमें उत्साह कूट-कूटकर भरा हुआ था। मुख पर लम्बी, श्वेत दाढ़ी निराली शोभा देती थी। वे लखनऊ के प्रसिद्ध वकील व हिन्दू-नेता पंडित ताराशङ्करजी के मकान पर आये और सारा समाचार कह

सुनाया। उन दोनों पंडितों के यत्न से 'हिन्दू-कॉन्फ्रेंस' की गई और हिन्दुओं को आनेवाले ख़तरे से ख़बरदार कर दिया गया। फिर 'हिन्दू-सभा' के कार्य को पंडितजी ने अपने जीवन का लक्ष्य बनाकर, नगरों व प्रान्तों में भ्रमण करना आरम्भ कर दिया। और हरिद्वार में 'हिन्दू-सभा, का कार्यालय खोल दिया। ऑनरेबिल लाला सुखबीरसिंहजी इसके प्रधान मन्त्री बने। श्री मालवीयजी ने भी इस सभा को आशीर्वाद दिया, और प्रयाग तथा पञ्जाब की हिन्दू-सभाओं ने भी इसके साथ मिलकर कार्य आरम्भ कर दिया। इस प्रकार 'हिन्दू-सभा' का कार्य हरिद्वार से होता रहा। हिन्दू-पर्वों पर वहाँ सभायें की जातीं तथा कुम्भ-आदि पर प्रचार होता। 'हिन्दू-सभा' के इस आरम्भिक काल का दौरा कुछ भली प्रकार ज्ञात नहीं होता। ऐसा प्रतीत होता था कि 'हिन्दू-सभा' के पैर काट दिये गये हों; क्योंकि सरकार ने मुसल्मानों को विशेष-अधिकार देने का वचन दिया और 'लखनऊ-पैक्ट' को तो हिन्दू-मुसल्मान, दोनों ने स्वीकार कर लिया। अभी समाचार-पत्रों में, इस स्कीम पर वाद-विवाद हो ही रहा था, कि सरकार की मन-चाही हुई 'रॉलट-कमेटी' की रिपोर्ट भी प्रकाशित हो गई और उसके आधार पर तुरन्त ही एक ऐक्ट बनाकर १६१६ के आरम्भ में वॉयसरॉय की कौंसिल में पेश किया गया। इस ऐक्ट में पुलिस तथा फ़ौजदारी अदालतों व अफ़सरों को

विशेष-अधिकार देकर, अनार्किस्टों को कुचलने पर जोर दिया गया था। नाम तो अनार्किस्टों का था, पर भारतीय नव-युवकों का डरा-धमका या दण्ड देकर स्वराज्य की तरंग को कुचलना था । गत महायुद्ध में भारतीयों ने दिल खोलकर सरकार को हर प्रकार से सहायता की थी। भारतीय सैनिक बड़ी वीरता से लड़े थे । अभी-अभी भारतीयों ने रुपये-पैसे से सरकार की सहायता की और सरकार ने भारत को Responsible Government देने का वचन दिया था। 'रॉलट-एक्ट' को देखकर सब चकित होगये। किसी ने इसे विश्वासघात जाना, और किसी ने सरकार की पुरानी नीति। सारे देश में आन्दोलन चल पड़ा। 'रॉलट-एक्ट' का नाम काला-एक्ट, प्रसिद्ध हुआ; क्योंकि यह एक्ट न्याय व स्वतन्त्रता की जड़ें उखाड़नेवाला प्रतीत होता था।

भारत के रंग-मञ्च पर महात्मा गाँधी

सरकार ने शीघ्र ही 'रॉलट बिल' पास कर दिया और इसे 'रॉलट-एक्ट' का रूप दिया। भारतीय मेम्बरों ने इसके विरुद्ध बड़े आवेशपूर्ण व्याख्यान दिये, परन्तु उनकी एक न चली। सरकार इसको पास करने पर तुली बैठी थी और कौंसिल में बहुमत भी सरकार का था, बिल तो एक्ट बन गया, पर समस्त देश में एक भारी लहर उठ खड़ी हुई। उधर मुसल्मान भी ख़िलाफ़त के कारण सरकार से क्रुद्ध थे। ऐसे अवसर पर भारत के राजनीतिक आकाश पर

एक नवीन तारा चमकने लगा, जिसका प्रकाश धीरे-धीरे समस्त भारतवर्ष में फैल गया, और वह थे महात्मा गाँधी। गुजरात से वैरिस्टरी पास करके आप दक्षिण-अफ्रीका चले गये थे और वहीं एक मुसल्मान-जहाजी कम्पनी का मुकद्दमा लेकर वैरिस्टरी आरम्भ कर दी। हिन्दुस्तानियों के प्रति अन्याय देखकर वहाँ की सरकार के विरुद्ध सत्याग्रह-आन्दोलन चलया और कई वार जेल-यात्रा की। अब वे भारत में लौट आये थे और कर्मवीर गाँधी के नाम से विख्यात थे। गाँधीजी ने मुसल्मानों का बहुत साथ दिया। जब बम्बई में इनकी वैरिस्टरी न चली, तो मुसल्मान जहाजी कम्पनी के साथ ही वे दक्षिण अफ्रीका चले गये और इसकी सहायता से वह अपने पाँव पर खड़े हो सके। गाँधीजी ने इस अहसान को कभी नहीं भुलाया और इसका बदला उन्होंने खिलाफत को अपनाकर मुसल्मानों को देना चाहा। अस्तु जब 'रॉलट-एक्ट' पास हो गया, तो गाँधीजी ने खुल्लमखुल्ला घोषणा कर दी, कि वे इस क़ानून को तोड़ने के लिये सत्याग्रह करेंगे और इसी विरोध में ६ अप्रैल का दिन, देश-भर में हड़ताल करने के लिये नियत किया गया। इतनी सफल तथा बड़ी हड़ताल भारत में पहले कभी न हुई थी। गाँधीजी दिल्ली को जा रहे थे कि मार्ग में सरकार ने उनको रोक लिया। यह समाचार बिजली की तरह सारे देश में फैल गया और कलकत्ता,

दिल्ली, अहमदाबाद-आदि में दंगे भी हो गये, किन्तु इस का अधिक प्रभाव पञ्जाब में पड़ा। अमृतसर में वैशाखी के दिन, जलयाँवाले बाग़ में सैकड़ों बेगुनाह गोली का लक्ष्य बने, फिर पञ्जाब के कई ज़िलों में 'मार्शल लॉ' लगा दिया। सारा देश त्राहि-त्राहि करने लगा। बड़े-बड़े नेता जेल में डाल दिये गये। बहुतों का अपमान हुआ। लोगों को बाज़ार में नग्न करके बैत लगाये गये। स्वराज्य की बजाय, मार्शल लॉ का उपहार भारतीयों को मिला।

खिलाफ़त की आपत्ति

इसी समय एक अन्य घटना यह हुई, कि जर्मन-युद्ध की समाप्ति पर तुर्की के सामने भी, जो ब्रिटिश सरकार के विरुद्ध लड़ी थी, सन्धि की शर्तें पेश की गईं। शर्तें बहुत कड़ी थीं। तुर्की का राज्य पूर्व में बिल्कुल समाप्त कर दिया गया और कुस्तुनतुनिया का भी ख़लीफ़ा से छिना जाना घोषित हुआ। सुल्तान-तुर्की मुसल्मानों के ख़लीफ़ा थे, इसलिये मुसल्मान जोश में आ गये और ख़िलाफ़त की रक्षा के लिये उठ खड़े हुए। गाँधीजी ने यह उपयुक्त अवसर समझा और तुरन्त उनकी सहायता के लिये मैदान में आ धमके और कुछ समय तक स्वराज्य के प्रश्न को पीछे डाल दिया। वह पञ्जाब के मार्शल लॉ के अन्याय व अत्याचारों को भी भूल गये, पर मुसल्मानों को प्रसन्न करने के लिये ख़िलाफत को अपना लिया। महात्मा-

जी को कई हिन्दू-नेताओं ने सलाह दी कि खिलाफत का प्रश्न भारत का प्रश्न नहीं है, इसे इस रूप में न अपनाओ। मगर वह किसी की कब सुननेवाले थे। झट खिलाफत को लेकर ही सत्याग्रह-आन्दोलन शुरू कर दिया। स्वराज्य व 'मार्शल लॉ' के कार्यक्रम का बाद में करने के लिये छोड़ दिया। इसी समय मुहम्मदअली तथा शौकतअली महात्माजी के साथी बने और उन्होंने समस्त देश में दौरा करना आरम्भ कर दिया। कई हिन्दू खिलाफत के लिये जेल में गये और अनेकों ने दूसरे बलिदान किये। अब मुसल्मान भी कॉङ्ग्रेस मे दिखाई देने लगे और दो-तीन साल तक खूब ऊधम मचता रहा। इसके पश्चात गॉधीजी ने एक साल के भीतर, स्वराज्य प्राप्ति का कार्यक्रम बना लिया। विद्यार्थियों ने स्कूल तथा कॉलेज छोड़े। वकीलों ने वकालतें छोड़ दी। व्यापारियों ने विदेशी व्यापार छोड़ दिया विदेशी वस्त्रों की स्थान-स्थान पर होली मनाई गई; किन्तु मुसल्मानों का जोश तो खिलाफत तक ही था। तुर्की में कमालपाशा ने खलीफा को वहाँ से निकाल दिया; किन्तु यह आपत्ति भारत से न गई। अब गाँधीजी के मुसल्मान भक्त धीरे-धीरे खिसकने लगे। मुहम्मदअली ने साफ़ कह दिया, कि वह केवल इस्लाम की सेवा के लिये गॉधीजी के साथ थे और वह एक छो-टे-से-छोटे तथा पापी मुसल्मान को भी गाँधीजी से अच्छा समझते हैं, क्योंकि गाँधी

काफ़िर है। फिर ख़ुदा से प्रार्थना करते हैं कि काश काफ़िर गाँधी मुसल्मान हो जाय।

खिलाफत का परिणाम

जब गाँधीजी ख़िलाफ़त-अन्दोलन आरम्भ करनेवाले थे, तो कहते हैं कि लोकमान्य तिलक ने उनको ऐसा करने से रोका, किन्तु गाँधीजी पर इसका प्रभाव न हुआ। वह भला कब माननेवाले थे? हिन्दुओं का दुर्भाग्य, कि इसी समय सन् १६२० में लोकमान्य की मृत्यु होगई और गाँधीजी को अपनी नीति चलाने का खुला अवसर प्राप्त हो गया। लोकमान्य का नाम तो समस्त भारतवर्ष में प्रसिद्ध था ही, झट उनके नाम से फण्ड खोलकर एक करोड़ रुपया इकट्ठा कर लिया गया। स्वयं गाँधीजी ख़िलाफत-कॉन्फ्रेन्स में उपस्थित होते थे और इनकी सलाह से सब कार्य होता था। इस प्रकार गाँधीजी के उद्योग से तथा हिन्दुओं के रुपये से मुसल्मान सङ्गठित और शक्तिशाली हो गये। जोशीले मुसल्मान यह समझने लगे कि अब ख़लीफ़ा का राज्य भारत में होनेवाला है। ख़िलाफ़त-अन्दोलन का बड़ा प्रभाव मालाबार के मोपलों (जिनका एक बड़ा भारी जोशीला सम्प्रदाय है) पर पड़ा। इन्होंने घोषणा करदी कि ख़िलाफ़त-राज्य स्थापित होगया और फिर नेक मुसल्मानों की भाँति जबरन् तबलीग़ आरम्भ करदी। उन्होंने हिन्दुओं के घर जलाना, स्त्रियों का अपमान करना, बेगुनाहों को

मार डालना और उनको लूटना आरम्भ कर दिया। परि-णाम-स्वरूप कई हिन्दू मारे गये। जब इस घोर अत्याचार के समाचार पत्रों में प्रकाशित हुए, तो समस्त देश में हाहाकार मच गया। पञ्जाब के बहुत-से हिन्दू-कार्यकर्ता विशेष कर, 'आर्य-समाजी वीर' वहाँ पहुँचे और इनके घावों की मरहम-पट्टी की। जो जबरन् मुसल्मान बनाये गये थे, उनको शुद्ध किया गया, किन्तु काँग्रेस ने इस सारी घटना को कुछ गुण्डों की एक साधारण कार्रवाई समझा और लूट-मार व क़त्ल के समाचारों को दबाने में बहुत जोर लगाया। एक जाँच-कमेटी भी नियुक्त की गई, जिसका कार्य इस उत्पात को दबाकर भुला देना था। हुआ भी ऐसा ही। हिन्दुओं पर जब आपत्ति आती है, तो जरा सिर उठाते हैं और फिर सो जाते हैं। काँग्रेस के पास बड़े भारी प्रेस हैं; प्लेटफॉर्म हैं। इनमें कई मालाबार पचा जाने की शक्ति है। ख़िलाफत को अपनाने का फल हिन्दुओं ने खूब चखा।

मालाबार के पश्चात् शीघ्र ही मुल्तान आ खड़ा हुआ। मुसल्मानों को तो हिन्दुओं के कलह से लाभ उठाने की लत पड़ी हुई है। काँग्रेसी नेताओं ने बहुत समझाया और भाई चारा कराना चाहा, परन्तु जब स्वयं हिन्दू ही अपनी रक्षा से उदासीन हैं; और मुसल्मानों के अत्याचारों को दबा देना अपना धर्म समझते हैं, तो मुसल्मानों को क्या आवश्यकता है कि वे

भागलपुर का मोर्चा

'हिन्दू-महासभा' के जनरल सेक्रेटरी
श्री० महेश्वरदयालजी सेठी अपने युक्त-प्रान्तीय साथियों के साथ
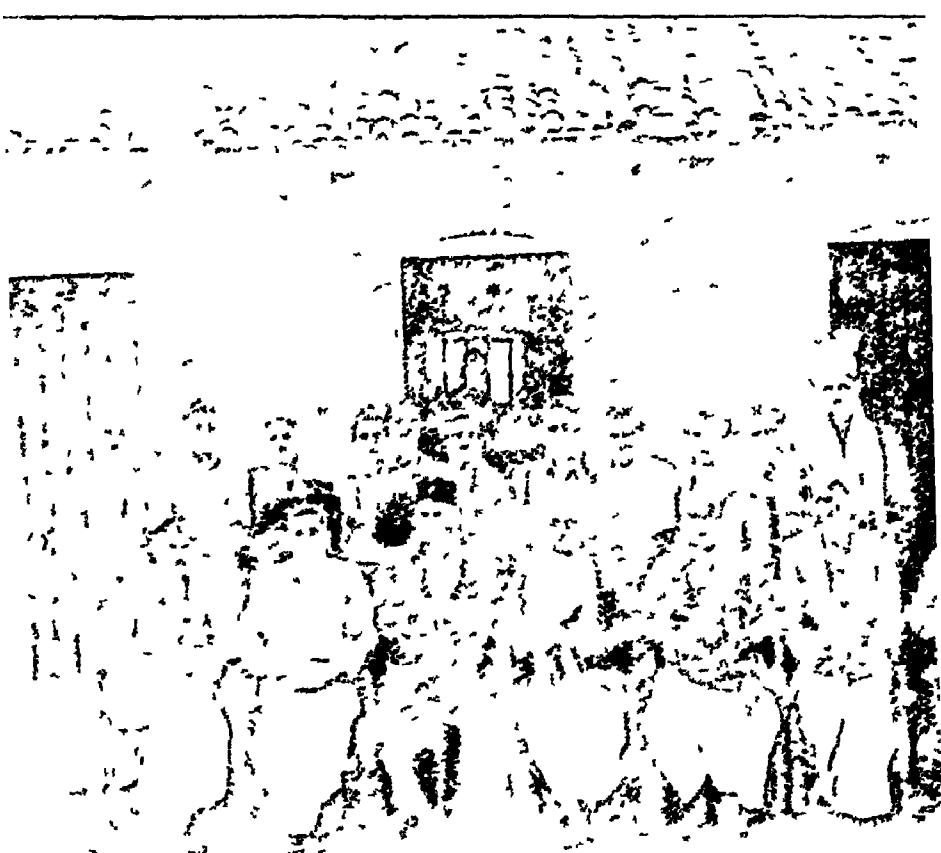
पञ्जाब-प्रान्तीय हिन्दू-सभा की ओर से भागलपुर गये हुए कुछ वीर
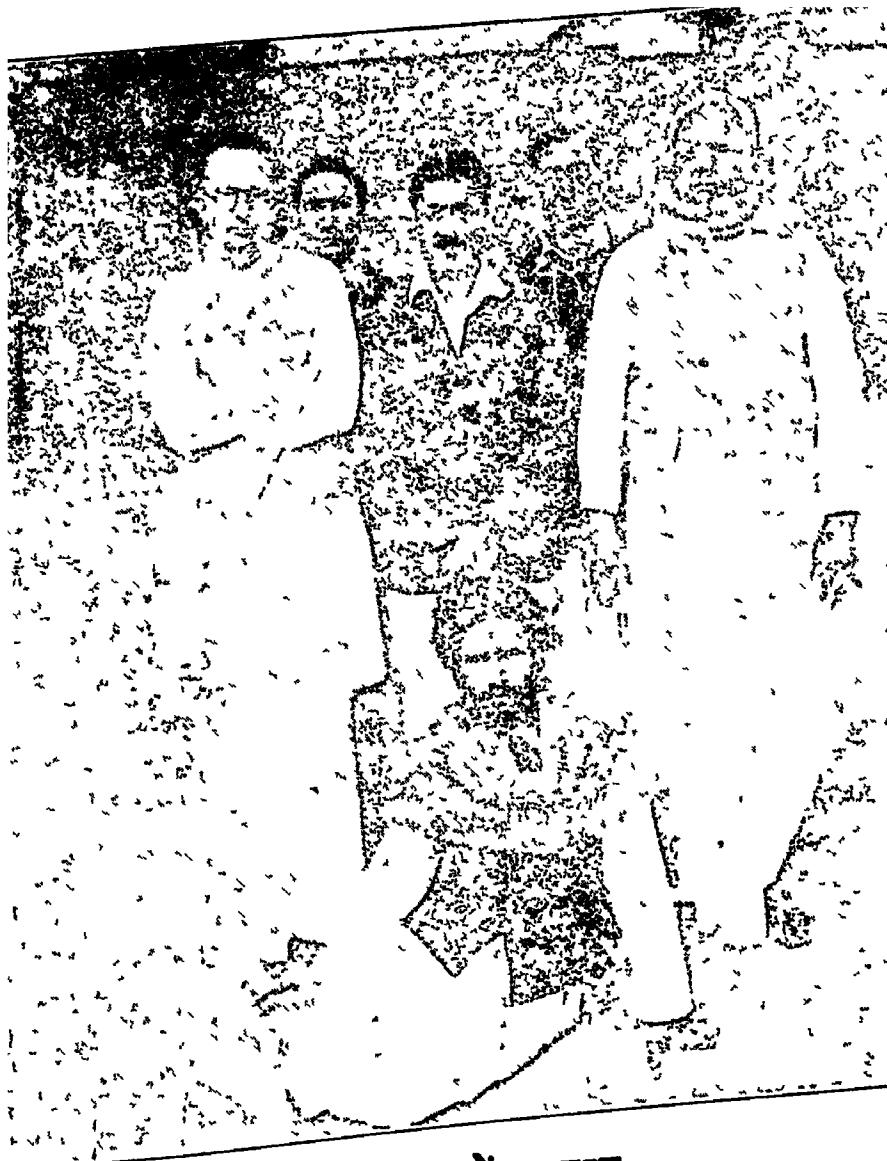
जेल में आनन्द

कुछ सत्याग्रही जेल में एकान्त-सेवन का आनन्द ले रहे हैं।

भागलपुर का मोर्चा
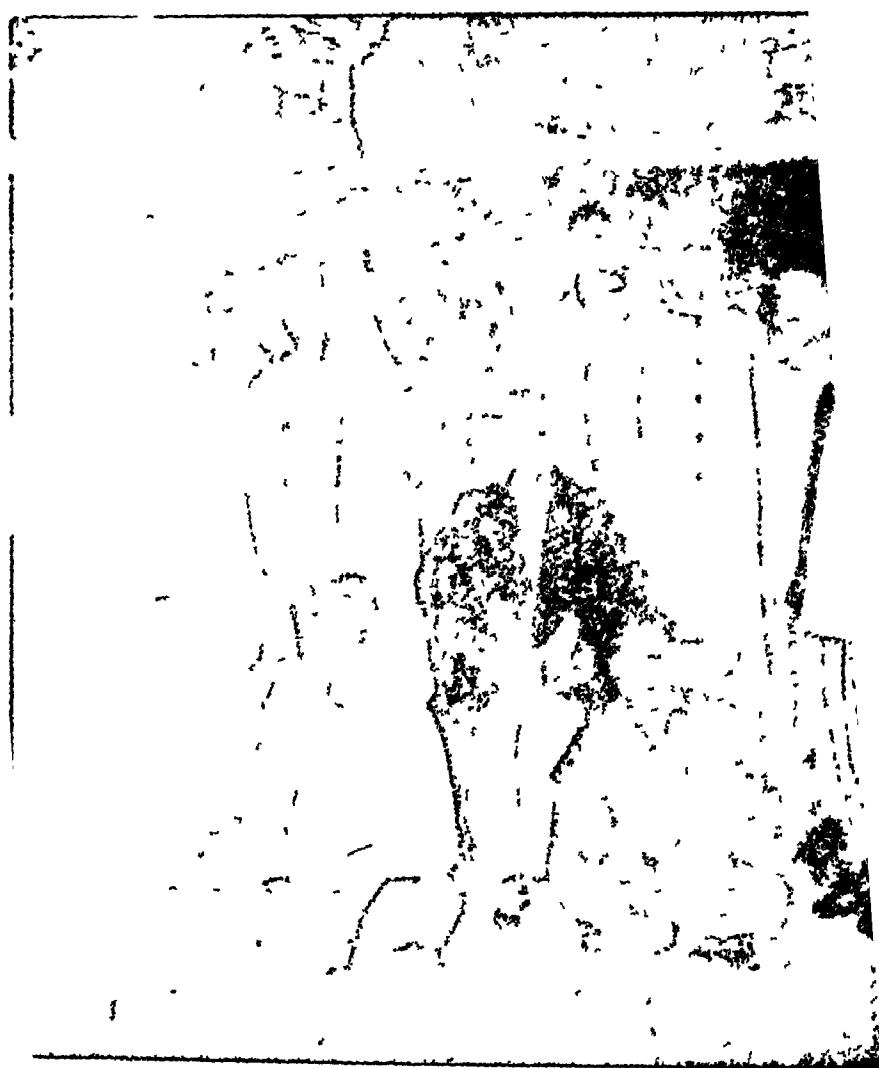
बाबा खापर्डे
(अपने बरार-प्रान्तीय शिष्यों-सहित)

इन पर करुणा करें, और इनकी दुर्बलता से लाभ न उठावें? और फिर काफिरों को मुसल्मान बनाना ही हर मुसल्मान का कर्तव्य है। सारांश यह है कि मुल्तान में भी हिन्दुओं पर वह अत्याचार किये गये और ऐसी-ऐसी आपत्तियाँ उन पर आईं कि लोग मालाबार को भूल गये। मालाबार तो दूर दक्षिण के एक कोने में है। उसे तो भुलाया भी जा सकता है, परन्तु मुल्तान को कैसे भुला दें? काँग्रेस ने फिर जाँच-कमेटी बनाई, जिसमें मालवीयजी भी सम्मिलित थे। इस लाचारी तथा बेबसी का उन पर इतना प्रभाव पड़ा, कि उन्होंने हिन्दू-सङ्गठन-द्वारा इस दुर्बलता को दूर करने का निश्चय कर लिया।

अमानुल्ला को निमन्त्रण

इस स्थान पर एक और बात का उल्लेख कर देना आवश्यक प्रतीत होता है। वह यह कि जब १९२०-२१ में, देश में सत्याग्रह व खिलाफत-आन्दोलन जोरों पर थे और महात्मा गाँधी, व अलीभाई देश के कोने-कोने को हिला रहे थे, उस समय अली-भाइयों का इस्लामी जोश, उन्हें उसी समय अफग़ानिस्तान की ओर ले गया और उन्होंने पत्रों-द्वारा यत्न किया कि अमीर का भारत पर आक्रमण कराकर इस्लामी राज्य स्थापित करें। गाँधीजी तो उनको प्रसन्न करना चाहते थे; उन्होंने कुछ भी विरोध प्रकट नहीं किया। प्रत्युत ऐसा प्रतीत होता है, कि उन्होंने इस कार्य में

उनकी पीठ ठोंकी। हिन्दू-नेताओं का भोलापन देखिये; वह मुसलमानों के सात सौ वर्षों के अत्याचार एकदम भूल गये! काशी में, अयोध्या से, मथुरा में, हिन्दू-मन्दिरों पर मस्जिदें अब तक मुसल्मानों के अत्याचारों को पुकार-पुकार-कर बता रही हैं। सोमनाथ-आदि के खण्डहर रो रहे हैं। पद्मिनी-आदि सतियों की आहें चीत्कार कर रही हैं; किन्तु हमारे हिन्दू नेता फिर भी मुस्लिम-राज्य को अच्छा समझते हैं। इतिहास को भूल जाना और इससे शिक्षा प्राप्त न करना यह घातक दोष केवल हिन्दुओं में आज भी विद्यमान है। बहुत-से कह देते हैं, कि यह अँग्रेजों के हाथों की लिखी पुस्तकें हैं। परन्तु स्वयं मुसल्मानों की पुस्तकें इनसे कहीं अधिक बढ़ी - चढ़ी हैं। फिर मन्दिरों पर मस्जिदें अँग्रेजों ने तो नहीं बनवाईं।

१० मई १९२२ में इलाहाबाद में व्याख्यान देते हुए महात्मा गाँधीजी ने कहा; "मेरी समझ में नहीं आता, कि क्यों यह समाचार उड़ रहा है, कि अली-भाइयों को गिरफ्तार कर लिया जायेगा और मुझे स्वतन्त्र रहने दिया जायेगा। उन्होंने कभी कोई ऐसा अपराध नहीं किया, जो मैंने न किया हो। अगर उन्होंने अमीर अफग़ान के पास कोई पत्र भेजने का अपराध किया है, तो मैं भी अमीर को पत्र लिखूँगा कि अगर वह भारत पर आक्रमण करे, तो कोई भारतीय जो मेरी बात मानेगा, अमीर को पीछे हटाने में सरकार की सहायता न करेगा।"

२६-१०-२६ के "लिबरेटर" (Liberator) में स्वामी श्रद्धानन्दजी लिखते हैं —"मौलाना मोहम्मदअली शिकायत करते थे, कि दूसरे नेता उनको इस बात पर क्यों तंग करते हैं कि उन्होंने अमीर काबुल को तार भेजा है कि वह ब्रिटिश सरकार के साथ समझौता न करें। मैंने स्वयं मौलाना से कहा कि उन्होंने यह कोई बुद्धिमानी का कार्य नहीं किया। इस पर भाई मुहम्मदअली मुझे एक ओर लेगये और मुझे अपने बैग से एक तार का ड्राफ्ट (Draft) निकालकर दिखाया। इसे देखकर मेरे आश्चर्य की कोई सीमा न रही, कि वह ड्राफ्ट तो स्वयं महात्माजी के हाथ का लिखा हुआ था।" इन बातों से सिद्ध होता है कि हिन्दू-नेता बुरी प्रकार से मुसल्मानों के चंगुल में फँसे हुए थे और हैं। हिन्दुओं का भोलापन हिन्दुओं को न-जाने किस ओर ले जायेगा। मुसल्मानों को प्रसन्न करने के लिये आजकल महात्माजी क्या कुछ नहीं कर रहे; पर मुसल्मान फिर भी उनकी एक नहीं सुनते। २३-१०-४० के 'हरिजन' में महात्माजी लिखते हैं—"यदि निज़ाम अन्य राजाओं को अपने आधीन करके उनकी सहायता से या सीमा-प्रान्त के मुसल्मान पठानों की सहायता से भारतवर्ष पर भी अधिकार करे, तो यह "शत-प्रतिशत होमरूल' होगा"। कॉङ्ग्रेस की यह मनोवृत्ति केवल गाँधीजी में ही नहीं पाई जाती, अपितु जिस हिन्दू को 'नेशनल' बनाना हो, उसके लिये आवश्यक है, कि वह हिन्दू न

रहे और हिन्दुत्व का नाम भी न ले, पर मुसलमानों के लिये कोई रोक नहीं। कट्टर-से-कट्टर मुसलमान भी 'नेशनल' रह सकता है।

हम ऊपर लिख आये हैं कि मुल्तान में मुसलमानों ने हिन्दुओं पर इतने अत्याचार किये कि स्वयं कॉङ्ग्रेस की जॉच-कमेटी के मुस्लिम मेम्बर हकीम अजमलखॉ भी शर्मिंदा थे, और समझ न सकते थे, कि कोई पुरुष अन्य पुरुषों पर इस प्रकार की नीचता कर सकता है। निरपराधो की हत्या करना, स्त्रियों का अपमान करना, लूट-मार करना, आग लगाना-आदि घृणितकार्य मुसलमानों के बॉये हाथ के खेल हैं। यह सब कुछ मुल्तान मे हुआ। मालवीयजी अपना सिर धुनते थे, और इसका उपाय खोजते थे, यह अब प्रत्यक्ष हो रहा था, कि यह बीमारी अब सर्वदा के लिये भारत में आ ही गई है, और इसके पीछे कोई बड़ा गूढ़ षड्यन्त्र-कार्य कर रहा है।

कॉङ्ग्रेस चाहे इसे कुछ गुण्डों की शरारत कहे या थोड़े समय का पागलपन। हिन्दू सरकार से भी कोई आशा नहीं कर सकते। पुलिसवाले तो बहुधा तब आते हैं, जब लूट-मार समाप्त हो जाती है। मालवीयजी ने मुल्तान ही में हिन्दुओं की एक विशाल सार्वजनिक सभा की, और घोषणा की कि हिन्दुओं के इस रोग का उपाय केवल हिन्दू-संगठन है, जब तक हिन्दू संगठित नहीं होंगे, वे जीवित नहीं रह

सकते। मालवीयजी ने यहाँ यह भी वचन दिया, कि वह शीघ्र ही समस्त भारत के हिन्दू-नेताओं को बनारस में बुलाकर, हिन्दू-संगठन के आन्दोलन को कार्य-रूप में लायेंगे।

मुल्तान के घाव अभी भरने भी न पाये थे, कि मुसल्मानों ने वही बात सहारनपुर में दोहरा दी। अब हिन्दुओं को संगठित होकर अपने पैरों पर खड़ा होने के अतिरिक्त और कोई चारा न था।

काशी में 'महासभा' का महाधिवेशन

महामना मालवीयजी व स्वामी श्रद्धानन्दजी के अथक परिश्रम तथा उद्योग से १६२३ की अगस्त में 'हिन्दू-महासभा' का एक विशाल महाधिवेशन 'सेण्ट्रल हिन्दू कॉलेज' काशी के मैदान में हुआ। इसमें देश के समस्त प्रान्तों से २००० के लगभग प्रतिनिधि आये और दर्शकों की कोई गिनती न थी। इसमें सनातनी, आर्यसमाजी, सिख, जैन, बौद्ध-आदि सब मत-मतान्तरों के प्रतिनिधि थे। राजा भी थे, और गरीब भी, पण्डित भी थे और अपढ़ भी। सिक्खों में उदासी भी थे और अकाली भी, शिवजी की नगरी पवित्र काशी के पुण्य-धाम में श्री गङ्गाजी के तट पर ब्राह्मण व अछूत तथा राजा व रंक एक-दूसरे से कंधे-से-कंधा मिलाये बैठे थे और हिन्दू-जाति के उद्धार का उपाय सोच रहे थे। ऐसा प्रतीत होता था, कि कितने ही वर्षों की निद्रा के पश्चात्

हिन्दू जाग रहे हैं। वास्तव में 'आपत्ति भी एक बड़ी औषधि है।' मालावार, मुल्तान, सहारनपुर में हिन्दुओं की दुर्दशा हुई। उनके बच्चे मारे गये थे, उनकी स्त्रियों का अपमान हुआ था, धन-दौलत लूटी गई, बेचारे कितने ही हिन्दू तो गलियों में मारे-मारे फिरने लगे। हिन्दुओं ने ख़िलाफ़त में भाग लिया था, उसका बदला उनको यह मिला। सरकार से सहायता की आशा दुराशा-मात्र थी; क्योंकि वह हिन्दुओं से क्रुद्ध थी। सरकार हिन्दुओं को असहयोग करने का मज़ा चखाना चाहती थी। मुसल्मानों ने विश्वासघात किया, सरकार से कोई आशा न रही, अब हिन्दू कैसे जी सकते हैं? यही प्रश्न सब के सामने था।

महाराजा बनारस, स्वयं इस अधिवेशन की स्वागत-कारिणी सभा के सभापति थे और महामना मालवीयजी ने लोक-मत से सभापति का आसन ग्रहण किया। श्री माल-वीयजी का भाषण बड़ा आकर्षक, दिल दहलानेवाला तथा अत्यन्त प्रभावशाली हुआ।

कई प्रस्ताव पास किये गये, पर इनमें मुख्य यही था, कि गाँव-गाँव व नगर-नगर में हिन्दू-सभाओं की स्थापना की जाय और हिन्दू-जाति की रक्षा के लिये स्वयंसेवक-दल स्थापित किये जायें। इन स्वयंसेवकों का कार्य होगा, कि वह अपने हलक़े में शान्ति रक्खें तथा हिन्दू-जनता की रक्षा करें। एक अन्य प्रस्ताव-द्वारा, मलकाना हिन्दुओं को

शुद्ध करना स्वीकार किया गया और इनको हिन्दू-जाति में मिलाकर सब प्रकार की शिक्षा-आदि सुविधायें देने का प्रस्ताव भी स्वीकार किया गया। और भी स्वदेशी-आदि पर प्रस्ताव पास हुए।

बनारस-महाधिवेशन के पश्चात् 'हिन्दू-सभा' का कार्य सुचारु रूप से चलने लगा। 'महासभा' से सम्बन्धित हर प्रान्त में, एक-एक प्रान्तीय हिन्दू-सभा बनाई गई। प्रान्तीय हिन्दू-सभाओं के आधीन ज़िला-सभायें और ज़िला-सभाओं के आधीन लोकल सभायें नियुक्त हुईं। इस प्रकार समस्त देश में हिन्दू-सभाओं का जाल बिछाने का यत्न किया गया और हिन्दू-सभाओं के साथ-साथ, जहाँ सम्भव हो सका, स्वयंसेवक-दल भी स्थापित किये गये।

इस अधिवेशन के कुछ समय पूर्व स्वामी श्रद्धानन्दजी आगरा के पास मलकाना राजपूतों की शुद्धि में लगे हुए थे। लगभग ५०-६० सहस्र राजपूतों ने शुद्धि के लिये अनुमति दी। १६२२ में 'क्षत्रिय-महासभा' ने इसे मानकर उन्हें शुद्ध करना आरम्भ कर दिया। मलकाना-राजपूत औरङ्गज़ेब के समय जबरन् मुसल्मान बनाये गये थे। परन्तु इतने समय मुसल्मान रहने पर भी यह मुसल्मानों से न मिले। हिन्दू-धर्म उनको इतना प्यारा था, कि मुसल्मान होते हुए भी वह अपना नाम हिन्दू ढंग का रखते थे। विवाह-आदि संस्कारों में मौलवी के साथ पण्डितजी भी

आते थे। होली, दिवाली, दशहरा-आदि बड़ी श्रद्धा से मनाते थे। इतने दीर्घ-काल तक वह हिन्दू-धर्म की पूजा दूर से, पर दिल से कर रहे थे। अब, जब उन्होंने स्वयं शुद्ध होने की अनुमति माँगी तो हिन्दुओं का यह प्रथम कर्तव्य हो गया कि वह उनको गले लगायें। पिछले समय हिन्दू अपनी भूल से अनेकों भाइयों को सर्वदा के लिये खो चुके थे। किसी ने किसी मुसल्मान का छुआ पानी पी लिया, किसी ने भूल से रोटी खा ली, किसी ने हुक्का पी लिया तो वह तुरन्त ही हिन्दू-धर्म से सदा के लिये पतित हो गया; गौ-रक्षक से गौ-भक्षक बन गया। इतने पर भी हिन्दुओं के नेत्र न खुले। परन्तु अब हिन्दुओं में जागृति आ चुकी थी। स्वामी दयानन्द के चेले तो, धड़ाधड़ ईसाइयों तथा मुसल्मानों को हिन्दू बना रहे थे, फिर भला वह अपने भाइयों को गले क्यों न लगाते? शुद्धि का कार्य देखकर मुसल्मान बिगड़ उठे, इनके समाचार-पत्रों ने हिन्दू-नेताओं को गालियाँ देना आरम्भ कर दिया। कई मुसल्मान मौलवी शुद्धि के मैदान में जा धमके, "इस्लाम खतरे में है' का नारा लगाने लगे। गाली-गलौज तथा दंगे-आदि पर प्रस्तुत हो गये। परन्तु शुद्धि का कार्य चलता रहा और सहस्रों मल-कानों को शुद्ध कर लिया गया। और भी अनेकों शुद्धि-प्रार्थना-पत्र आने लगे, पर हमारे कॉङ्ग्रेसी भाई इससे सहम गये। स्वामी श्रद्धानन्दजी को शुद्धि का कार्य बन्द

करने को कहा गया, इसका उत्तर सीधा था, 'क्या मुसल्मान भी तबलीग़ बन्द करेंगे ?' मगर कॉङ्ग्रेसी केवल हिन्दुओं को ही धमका सकते हैं, मुसल्मानों के आगे इनकी तूती बन्द हो जाती है। गाँधीजी तो जेल में थे, पर जेल से निकलते ही, उन्होने शुद्धि के कार्य को कोसना आरम्भ कर दिया और यह कहा, कि यह समय शुद्धि का नहीं, पहले मिलकर स्वराज्य ले लें, फिर देखा जायेगा। स्वामीजी का उत्तर था, 'क्या कभी भी कोई दिन ऐसा आयेगा, जब मुसलमान शुद्धि से सहमत होंगे ? यदि शुद्धि का कार्य करना ही है तो इसके लिये दूसरे समय की प्रतीक्षा करना व्यर्थ है।' गाँधीजी के बड़े चेले और सम्बन्धी राजगोपालाचार्य ने तो यहाँ तक कह दिया था, कि 'यदि सब हिन्दू मुसलमान हो जायें, तो कोई चिन्ता नहीं; हमें स्वराज्य की इच्छा है।" कॉङ्ग्रेसी-पत्र स्वामी श्रद्धानन्दजी के विरुद्ध बड़े लम्बे-लम्बे ज़ोरदार लेख लिखते। गाँधीजी के सदा साथ रहनेवाले मुस्लिम चेले अली-बन्धु तो पंजे झाड़कर स्वामीजी के पीछे पड़ गये। इन सब आन्दोलनों का परिणाम यह हुआ, कि १९२६ में दिसम्बर मास में एक मुसल्मान ने ऐसे समय स्वामीजी को गोली का लक्ष्य बनाया, जबकि वे रोगग्रस्त हो, पलँग पर लेट रहे थे।

काशी-महाधिवेशन के पश्चात्

काशी-महाधिवेशन में हिन्दुओं के बड़े-बड़े धुरन्धर

विद्वान्, राजा-महाराजा, दानी पुरुष तथा कार्यकर्ता सम्मिलित हुए। इनके पुरुषार्थ ने समस्त हिन्दू-जगत् में एक नवीन जागृति उत्पन्न करदी। हिन्दू-सभाओं तथा स्वयंसेवक-दलों का कार्य चलने लगा। ऐसा प्रतीत होता था कि अब हिन्दू सदा के लिए चेत गये हैं। और यदि यह सङ्गठन का कार्य इसी प्रकार चलता रहेगा, तो भविष्य में किसी को साहस न हो सकेगा कि वह हिन्दुओं को बुरी दृष्टि से देख सकें। परन्तु कॉङ्ग्रेसी हिन्दू-नेता सदा की भाँति हिन्दू-हितों से उदासीन रहे। केवल उदासीन ही नहीं, उनसे जहाँ-कहीं बन सका, हिन्दू-सङ्गठन के पवित्र कार्य में रोड़े अटकाये। महात्मा गाँधी 'क़ुरान' में तो शान्ति का पाठ कर सकते थे, किन्तु 'सत्यार्थप्रकाश' और स्वामी दयानन्द का 'मिशन' इन्हें झगड़े का घर दिखाई दिया। इसकी इन्होंने घोषणा भी कर दी। बंगाल के नेता सी० आर० दास ने अपनी उदारता मुसल्मानों को ६० प्रतिशत नौकरियाँ देकर दिखाई। इधर मुसल्मानों ने हर प्रकार से हिन्दुओं को बे-धर्म करना आरम्भ कर दिया। दिल्ली के ख्वाजा हसन निजामी ने तो हद कर दी। मुस्लिम-बाजारू औरतों तक को हिदायत दी कि जो हिन्दू उनके पास आयें, तो वे अपने इस्लाम की प्रशंसा कर, उन्हें मुसल्मान बनाने का यत्न करें। इसी प्रकार मुसल्मान वकीलों के पास जब कोई हिन्दू सायल जाये, तो वह उसको मुस-

ल्मान बनाने की चेष्टा करें। इसी प्रकार मुस्लिम डॉक्टरों, अहलकारों तथा ज़मींदारों-आदि का कर्तव्य है कि वह मुसल्मानों को उन्नति के पथ पर ले जायें। ख़्वाजा साहिब के पास सहस्रों रुपये एकत्र हो गये। निज़ाम साहेब ने वज़ीफ़ा लगा दिया। अन्य मुसल्मानों ने, विशेषकर इनके मुरीदों ने, धड़ाधड़ मनीऑर्डर भेजने आरम्भ कर दिए। अब पुस्तकों-पर-पुस्तकें, तथा पत्र-पर पत्र प्रकाशित होने लगे। और भी कई मुसल्मान क्षेत्र में कूद पड़े और हिन्दुओं के विरुद्ध घृणा फैलाई जाने लगी। इसका परिणाम भी कुछ अच्छा न निकला। मुसल्मान जोशीले तो होते ही हैं; भड़क उठे। कई स्थानों पर लूट-मार हुई और कोहाट में सहस्रों हिन्दू इस बुरी तरह लूटे गये कि वे घर से बे-घर हो गये। कई जान से मार डाले गये। कितनों के घर जला डाले गये। अकारण ही उन्हें अपनी जन्म-भूमि त्यागकर रावलपिण्डी-आदि स्थानों पर आ जाना पड़ा। सन्तोष की बात यह थी कि अपने भाइयों को आपत्ति में देखकर अन्य हिन्दू उनकी सहायता को दौड़े। 'पञ्जाब-हिन्दू-सभा' तथा 'हिन्दू-सभा', रावलपिण्डी ने विशेषकर इस अवसर पर बड़ी सहायता की। पण्डित मालवीयजी, भाई परमानन्दजी तथा अन्य हिन्दू-नेता कोहाट गये। वहाँ जाकर उन्होंने कोहाट के हिन्दुओं को धीरज बँधाया और जो सहायता कर सकते थे, की।

सप्त ऋषि

कहते हैं कि कोहाट के अत्याचारों का प्रभाव गाँधीजी पर भी पड़ा और कुछ काल के लिए वे हिन्दू-मुस्लिम-एकता से उदासीन हो गए, पर इस दुर्घटना का यह प्रभाव अवश्य हुआ कि 'हिन्दू-सभा' को दो ऐसे नर-रत्न मिल गए, जिनके प्रभाव से हिन्दू-सङ्गठन का कार्य जोरों से चलने लगा। यह दो महान् पुरुष, पञ्जाब-केसरी लाला लाजपत-रायजी तथा दान-वीर सेठ जुगलकिशोरजी बिड़ला थे। प्रथम जर्मन-युद्ध के पश्चात् लालाजी कई वर्ष का देश-निकाला काटकर अमेरिका से लौट रहे थे कि जल-यान में ही उन्होंने कोहाट के अत्याचार के समाचार, पत्रों में पढ़े और तुरन्त ही उस सिंह-पुरुष ने सङ्कल्प कर लिया कि वह अपना तन, मन, धन हिन्दू-जाति को सङ्गठित करने में लगा देगा। यह कार्य उन्होंने सोचा ही नहीं; अपितु भारत में आते ही बड़ी लगन के साथ आरम्भ कर दिया। सेठ जुगलकिशोरजी बिड़ला दूसरे व्यक्ति थे, जिनके हृदय पर कोहाट-काण्ड से गहरी चोट लगी, जिन्होंने अपने अपार धन की थैलियाँ सर्वदा के लिए हिन्दू-सङ्गठन के पवित्र कार्य के निमित्त खोल दीं। भाई परमानन्दजी इस समय सन् १९२० में कालेपानी से लौट आए थे और अब हिन्दू-सङ्गठन का कार्य मालवीयजी तथा लालाजी साथ मिलकर कर रहे थे। डॉ० मुंजे तो मालाबार में ही मोपलों के

अत्याचार को देखकर कॉङ्ग्रेस को सदैव के लिए त्याग-कर पहले ही हिन्दू-सभा में आ चुके थे। महाराष्ट्र-केसरी लोकमान्य तिलक की दक्षिण भुजा मि० केलकर हिन्दू-सङ्गठन के कार्य में तन, मन, धन से लगे हुए थे। इस प्रकार इस समय सन् १९२५-२६ में भारत माता के सात पुत्र हिन्दू-जगत् की लाज रखने तथा हिन्दू जाति की रक्षा करने के लिए कटिबद्ध थे, जिनके शुभ नाम इस प्रकार हैं:—

१—महामना मालवीयजी, २—लाला लाजपतरायजी, ३—स्वामी श्रद्धानन्दजी, ४—भाई परमानन्दजी, ५—डॉ० मुंजे, ६—मि० केलकर, ७—दानवीर सेठ जुगलकिशोरजी बिड़ला।

हिन्दुत्व के रक्षक सङ्गठन-रूपी ध्रुव की दिन-रात परि-क्रमा करनेवाले ये सप्त ऋषि हिन्दू-जगत् के आकाश पर इस अन्धकारमय समय में जगमगाकर पथ-प्रदर्शन कर रहे हैं। परमात्मा उनके कार्य को चिरकाल तक स्थायी रखे।

इन नेताओं ने अथक प्रयत्नों से भारत के भिन्न-भिन्न प्रान्तों में प्रान्तीय हिन्दू-सभायें खुल गईं। और प्रान्तीय-सभाओं के नीचे ज़िला तथा लोकल सभायें भी बन गईं। पंजाब, यू० पी०, बिहार, बङ्गाल, बम्बई, सिन्ध, महाराष्ट्र आदि प्रान्तों ने प्रान्तीय सभायें ज़ोरों से कार्य करने लगीं। कई प्रान्तीय व ज़िला कॉन्फ्रेन्सें की गईं। कलकत्ता में महा-

सभा का वार्षिक महोत्स किया और लाला लाजपतराय इसके प्रधान बने तथा आचार्य प्रह्लादचरणजी स्वागत-कारिणी सभा के चैयरमैन चुने गये। तुरन्त ही बम्बई के प्रसिद्ध कॉङ्ग्रेसी नेता ऑनरेबिल मिस्टर जयकर भी 'हिन्दू-सभा' मे सम्मिलित होगये। लाला लाजपराय ने समस्त भारतवर्ष का दौरा किया। वह पंजाब से बम्बई, बम्बई से आसाम और फिर बर्मा जा पहुँचे। अब 'हिन्दू-सभा' का 'हैड ऑफिस' भी दिल्ली आगया, ताकि असेम्बली-आदि के मेम्बरों की उपस्थिति का भी लाभ उठाया जा सके।

कलकत्ता में पंजाब-केसरी की सिंह गर्जना

हम ऊपर लिख आये हैं, कि 'अखिल-भारतीय-हिन्दू-महासभा' का वार्षिक अधिवेशन १६२५ में कलकत्ता में किया गया, जिसके सभापति, पंजाबकेसरी लाला लाजपत-राय थे। लालाजी कई वर्ष अमेरिका में देश-निकाला काट-कर आये थे और पक्के नेशलिस्ट होने के नाते महात्मा गाँधी के साथ सहयोग-आदि में पूर्ण भाग ले रहे थे और उनका हिन्दू-हृदय, मालाबार, मुल्तान, सहारनपुर, कोहाट-आदि के अत्याचारों से पिघल चुका था। उन्होंने हिन्दुओं की रक्षा का केवल एक उपाय, 'संगठन' देखा और वह 'हिन्दू-सभा' के आन्दोलन में कूद पड़े। १६२६ का उनका भाषण उनके हृदय को खोलकर जनता के सन्मुख रखता है। पाठकों के आगे भाषण का कुछ भाग उपस्थित करता

हूँ। लालाजी कहते हैं, "अभी तक तो हम राष्ट्रीयता पॉलिसी पर चलते रहे हैं पर हम इस बात को नहीं भुला सकते, कि भारतवर्ष में कुछ ऐसी जातियाँ (मुसल्मान) भी हैं, जो हमारे इन राष्ट्रीयता के विचारों से अनुचित लाभ उठा रही हैं, जिससे न केवल हिन्दू-जाति के अपितु, समस्त भारत को हानि पहुँच रही है। ऐसी साम्प्रदायिकता (Communalism) का विरोध करना हमारा कर्त्तव्य है। यदि हमने ऐसा न किया, तो हम सर्वदा के लिये दूसरों के दास, गृह-युद्ध करनेवाले, तथा दूसरों के आश्रित होंगे।' हिन्दू-मुस्लिम-मेल हो जाना कोई असम्भव बात नहीं है, परन्तु इस बात का ध्यान रखना चाहिये कि हिन्दू अब डर व धमकी के कारण कोई समझौता न करेंगे। मुसल्मान चाहे कितने ही दंगे-फसाद करें, किन्तु हिन्दू इनके साथ कोई भी ऐसा समझौता न करेंगे, जिसको वह ठीक व न्याययुक्त न समझें।' शुद्धि की आवश्यकता का लालाजी इस प्रकार वर्णन् करते हैं—'हिन्दू-महासभा तथा अन्य हिन्दू संस्थाओं का परम कर्त्तव्य है कि वह अपने उन भाइयों की रक्षा करें, जिनको अन्य लोग बहकाकर भ्रष्ट करते हों। शुद्धि हिन्दू-की रक्षा के लिये एक सफल शस्त्र है, अतः इसे हिन्दुओं को अवश्य अपनाना चाहिये।' उस समय भी कुछ मुसल्मान पाकिस्तान का स्वप्न देख रहे थे। उनको लालाजी का उत्तर यह था, कि 'कुछ मुसल्मानों ने प्रस्ताव किया है

कि पेशवर से लेकर आगरा तक का सारा क्षेत्र मुसल्मानों को दे दिया जाय, जहाँ वह बाहर के मुसल्मानों के साथ मिलकर अपना राज्य स्थापित कर सकें। बम्बईवाले 'मुस्लिम लीग' के जल्से में मौलाना मुहम्मदअली ने कहा भी था कि सीमा-प्रान्त के मुसल्मानों को यह अधिकार होना चाहिये कि चाहे वह भारत के साथ मिलकर रहें, चाहे काबुल के साथ। परन्तु सीमा का प्रश्न समस्त भारत-वर्ष का प्रश्न है। और इस पर हिन्दू जाति की रक्षा, तथा भविष्य निर्भर है। यह कहना कि अँग्रेजों ने सीमा का राज्य मुसल्मानो से लिया बिलकुल मिथ्या है। अँग्रेजों के आने से पहले ही सिख वीर सीमा को मुसल्मानों से जीत चुके थे। और ब्रिटिश सरकार ने सीमाप्रान्त का राज्य सिखों से लिया था। हिन्दू केवल अपनी रक्षा चाहते हैं। सीमा-प्रान्त का राज्य मुसल्मानों को दे देने से न केवल हिन्दू-जाति, अपितु समस्त भारतवर्ष खतरे में पड़ जायगा।' अपने व्याख्यान के आरम्भ में लालाजी ने हिंसा-अहिंसा-आदि सिद्धान्तों की व्याख्या तथा आलोचना इस प्रकार की 'हिन्दू अन्य जातियों से विरोध या घृणा नहीं करना चाहते। वह सब के साथ शक्तिपूर्वक रहना चाहते हैं। परन्तु इसका यह अर्थ भी नहीं कि हमारे धर्म-ग्रन्थ हमें दूसरों के अत्याचारों का उत्तर देने से, तथा अपनी धन-सम्पत्ति-आदि की रक्षा करने से रोकते हैं। हमें इतना

दुर्बल नहीं होना चाहिये कि दूसरों पर आक्रमण करने का साहस ही न कर सकें। अहिंसा-धर्म की यह बिल्कुल मिथ्या व्याख्या है। यदि हिन्दू अपनी रक्षा करना स्वयं न सीखेंगे तो वह नष्ट हो जायेंगे, यही शिक्षा हमें हमारे वेद-शास्त्र व दूसरे धर्म-ग्रन्थ देते हैं। वर्ण-आश्रम बनाने का भी यही अभिप्राय है कि उससे हिन्दू-जाति व भारतवर्ष की रक्षा हो सके। धर्म भी समय, व अवस्था के अनुकूल बदलता है जो धर्म एक संन्यासी के लिये बड़े पुण्य का देनेवाला होता है, वही गृहस्थी के लिये पाप का कारण बन सकता है। यदि एक नवयुवक गृहस्थी को, संन्यास-धम पर चलने के लिये बाधित किया जाय तो इसका परिणाम विनाश के अतिरिक्त और कुछ नहीं हो सकता।' अपने भाषण के अन्त में लालाजी ने हिन्दुओं से इस प्रकार कहा—'हिन्दू महासभा' समस्त हिन्दुओं को सङ्गठित करने के लिये क्षेत्र में आई है। मै इस महान् हिन्दू-जाति के समस्त मतावलम्बियों से अपील करता हूँ, कि वह आपस के भेद भुला कर, 'हिन्दू महासभा' के झण्डे के नीचे एकत्रित हो जाये। हमें अन्दर और बाहर दोनों ओर भय है। भीतरी भय 'हानिकारक होते हैं। जाति-पाँत ने हमें छोटे-छोटे भागों में विभाजित कर दिया है। हमें अपने आपको सङ्गठित करना चाहिये। हमें अपनी पुरानी इस वस्तु को सर्वदा के लिये त्याग देना चाहिये, जिससे ज़रा-ज़रा-सी बात पर हमने

अपनी जाति के नर-रत्न खो दिये हैं। हमें तो दूसरों को शुद्ध कर अपने में मिलाना चाहिये। गौ-भक्षकों को गौ-रक्षक बनाना बड़ा धर्म है तथा पुण्य है।'

'महासभा' का दिल्ली-अधिवेशन १६२६

इस समय "मॉंटग्यू-चेम्सफोर्ड-रिफॉर्म-स्कीम" पास हो चुकी थी। सरकार ने लखनऊ-पैक्ट को जानते हुए, उसके अनुसार हिन्दू-मुसल्मानों को कौंसिल आदि में सीटें दी थीं। १६२६ के अन्त में जनरल चुनाव होने ही वाले थे। समस्त देश मे एक नया जोश छाया हुआ था। हिन्दुओं को अब काफी अनुभव हो चुका था, कि काँग्रेसी-नेता तो मुसल्मानो को प्रसन्न रखने का प्रयत्न करते हैं, और हिन्दू-अधिकार उनके हाथ में सुरक्षित नहीं रह सकते। सब ओर से यही ध्वनि आ रही थी कि 'हिन्दू-सभा' के प्रतिनिधि 'हिन्दू-सभा' के अपने-टिकट पर चुने जायें, जो हिन्दू-अधिकारों का प्रण ले सकें। मार्च १६२६ में अखिल-भारतीय 'हिन्दू-महासभा' का वार्षिक-अधिवेशन दिल्ली में होने वाला था। सब हिन्दू-संसार के नेता इसी ओर लगे हुए थे। काँग्रेसी-हिन्दू भी इसमें 'प्रतिनिधि-रूप में सम्मिलित हो गये थे और जो न हो सके, उन्होंने बाहर से ही दबाव तथा प्रभाव डालना आरम्भ कर दिया, कि 'हिन्दू-महासभा' चुनाव में भाग न ले सके। लाला लाजपतराय इस समय काँग्रेस-स्वराज्य-पार्टी के डिपुटी-लीडर थे। परन्तु उसकी

पालिसी से कुछ ऊब से गये थे। पण्डित मालवीयजी भी काँग्रेस की नीति को अच्छा न समझते थे।

दिल्ली के इस अधिवेशन के प्रधान लाहौर के राजा नरेन्द्रनाथजी चुने गये। जो बुढ़ापे में भी नवयुवकों की भाँति हिन्दू-जाति की सेवा कर रहे थे। अधिवेशन में खूब चहल-पहल थी, और ऐसा प्रतीत होता था कि हिन्दू-जाति अब जीती-जागती जाति है सब की आँखें चुनाव वाले प्रस्ताव पर लगी हुई थीं। अभी तक 'हिन्दू-महासभा' काँग्रेस के पीछे-पीछे चल रही थी और काँग्रेस के नेता इसकी पॉलिसी को कंट्रोल करते थे। चुनाव में भाग लेना इसके लिये नवीन बात थी। बहुत से हिन्दू इस बात का विचार भी न कर सकते थे, कि यह कार्य 'हिन्दू-महासभा' का हो सकता है। वह कहते थे, कि 'हिन्दू-महासभा' को तो केवल सामाजिक तथा धार्मिक-सुधार का ही ध्यान रखना चाहिये। राजनीतिक क्षेत्र तो काँग्रेस के लिये ही छोड़ देना चाहिये। परन्तु प्रश्न यह था कि हिन्दू हितों की रक्षा कैसे हो? काँग्रेस में तो कुछ मुसलमान भी हैं, और वे नेशनल हैं। मुस्लिम-लीग मुसल्मानों के हितों की रक्षा करती है, तो हिन्दू ही घाटे में क्यों रहें। ऐसा प्रतीत होता कि स्वयं 'हिन्दू-महासभा' में इस समय दो विचार के नेता थे। एक तो यह चाहते थे, कि 'हिन्दू-महासभा' चुनाव से बिल्कुल पृथक् रह कर काँग्रेस

के लिये खुला क्षेत्र छोड़ दे, और दूसरे कह रहे थे, जो 'महासभा' के टिकट पर चुनाव लड़ना चाहते थे। और कॉंग्रेस का सामना करना चाहते थे। लाला लाजपतराय जी ने चुनाव लड़ने के विरुद्ध आवाज़ उठाई, इनका मुकाबला भाई परमानन्द तथा मालवीयजी ने किया। आखिर दोनों पक्षों में समझौता हो गया, और प्रस्ताव पास हुआ, कि 'केवल उन काँग्रेसी-उम्मीदवारों का मुक़ाबला किया जाय, जिनका सफल होना 'हिंदू-महासभा' के विचार मे 'हिन्दू-हितों' के लिये हानिकारक सिद्ध हो सके। ऐसे उम्मीदवारो के मुकाबले में 'हिन्दू-महासभा' अपने उम्मीदवार खड़े करे। और चुनाव मे उनकी सहायता करे। एक ओर तो 'हिन्दू-महासभा' ने 'हिन्दू-हितो' की रक्षा के लिये उपरोक्त प्रस्ताव पास किया, लेकिन दूसरे प्रस्ताव में 'साम्प्रदायिक-प्रतिनिधित्व' की निन्दा भी की और देश से अपील की कि इसके विरुद्ध आवाज़ उठाई जाय। इससे यह भली प्रकार सिद्ध होता है कि 'हिन्दू-महासभा' आदि से ही पक्का नेशनल-स्वरूप धारण किये रही है। 'लखनऊ-पैक्ट' आदि पास करके काँग्रेस तथा मुस्लिम-लीग ने साम्प्रदायिकता (Communalism) के विप का बीज बोया। इस अधिवेशन ने हिन्दुओं को सलाह दी, कि वह शुद्धि को अपनायें, क्योंकि इनकी संख्या हर जन-गणना में कम हो रही है। 'महासभा' ने शुद्धि को सराहा, विशेषकर मलकानों की शुद्धि

को, और जिन भाइयों ने उन्हें अपनी पुरानी विरादरी में मिला लिया उनको बधाई दी गई। 'महासभा' ने यह भी पास किया, कि हिन्दुओं को अहिन्दुओं को भी शुद्ध करके अपने में मिला लेना चाहिये। एक दूसरे प्रस्ताव में पास किया कि हिन्दी ही, हिन्दुओं की राष्ट्रभाषा है, और नागरी हमारी लिपि है। अतः इनको अपनाना, तथा इनका प्रचार करना, हर हिन्दू का प्रथम कर्त्तव्य है। मस्जिदों के सामने बाजा न बजाने के विरुद्ध भी प्रस्ताव पास किया क्योंकि यह एक नई इस्लामी-बला भारत में आई थी।

कलकत्ता के उपद्रव तथा संगठन की शक्ति

बंगाल के हिन्दू बहुधा "नेशनल" कहलाने वाले काँग्रेसी थे। लार्ड कर्ज़न ने जब बंगाल को दो भागों में विभजित कर दिया, तो बंगाली-नेता, और नवयुवक क्षेत्र में निकल आये। और स्वदेशी तथा बॉयकाट का आन्दोलन इस ज़ोर से किया कि सारा भारत जाग उठा। बंगाल में अनार्किस्टों की भी कमी नहीं थी। अपने प्रान्त को खण्ड-खण्ड होते देख बंगाली-नवयुवकों ने बम व रिवाल्वर उठा लिये, जिसके कारण कुछ अंग्रेज मारे गये, और वे नवयुवक हँसते-हँसते फाँसी पर चढ़ गये। सरकार के विरुद्ध तो हिन्दू-बंगाली-जनता इतना विरोध दिखाने लगी, पर अपने आस्तीन के साँप की ओर तनिक भी ध्यान नहीं दिया। जब यह काण्ड हो रहे थे, तो बंगाल के मुसल्मान

मजे से तमाशा देख रहे थे। अगर किसी और ने भी सिर उठाया, तो इन हिन्दू-नवयुवकों को फँसवाकर सरकार से अपनी वफ़ादारी की सनदें प्राप्त कीं। परन्तु खिलाफ़त ने वहाँ भी अपना प्रभाव डाला, और मुसल्मान, हिन्दुओं के विरुद्ध षडयन्त्र रचने लगे। उधर हिन्दू-संगठन की लहर भी बंगाल पर अपना प्रभाव डाल रही थी और उनको संगठित कर अपनी रक्षा के लिये तैयार कर रही थी। इसी समय १९२६ में कलकत्ता में 'आर्य-समाज' की वार्षिक-सभा हुई। सर्वदा की भाँति नगर-कीर्तन निकला, पर मुसल्मान हिन्दुओं के जलूसों को कब भली-दृष्टि से देख सकते हैं। पहले ही से मस्जिदों में ईंट-पत्थर इकट्ठे कर रखे थे, और जलूस के बाज़ार में पहुँचते ही उस पर धड़ाधड़ बरसाने आरम्भ कर दिये। बस फिर क्या था, बलवा, दंगा, मार-धाड़ आदि आरम्भ हो गये। केवल बंगाल ही नहीं, अपितु सारा भारत मुसल्मानों के अत्याचारों से हिल गया। बंगाली-हिन्दुओं ने बड़ा बुरा अनुभव किया और यही समझ में आया कि बिना संगठन के हमारी रक्षा करने वाला कोई नहीं है। 'हिन्दू-सभायें' स्थापित हुईं, और मुसल्मान-गुण्डों का मुकाबला किया गया। कहते हैं "लातों के भूत बातों से नहीं मानते"—मुसल्मानों को हर प्रकार से समझाया गया, भाईचारे आदि के नाते भी बताये गये, देश की हानि की ओर ध्यान

दिलाया गया, पर मुसल्मान एक न माने, बल्कि उनका उत्साह और भी बढ़ गया। अन्त में जब ईंट का उत्तर पत्थर से दिया गया, तो उनके होश ठिकाने लगे। कॉंग्रेसी-नेता तो अब भी सदा की भाँति कुम्भकर्ण की नींद सो रहे थे, पर 'महासभा-वादियों' ने संगठन कर मुसल्मानों को करारा उत्तर देना आरम्भ कर दिया, बस फिर क्या था, मुसल्मान-नेता लगे शोर करने तथा दुहाई मचाने। जब तक हिन्दू पिटते रहे, ये सब चुप्पी साधे बैठे रहे। मालावार में मोपलों के अत्याचार देख कर न बोले, मुल्तान, सहारन-पुर आदि के अत्याचारों को पचा गये, पर कलकत्ता में जब मियाँ जी को दो चार चोटे लगीं, तो लगे 'हिन्दू-मुस्लिम-मेल' तथा 'इस्लाम खतरे में है' आदि की दुहाई देने। दूसरों की रहने दीजिये स्वयं गाँधीजी के कॉंग्रेसी-मुसल्मान मुहम्मदअली, हकीम अजमलखाँ, शौकतअली आदि भी अपने क्रोध को न रोक सके, और तुरन्त दिल्ली में एक 'खिलाफ़त-कान्फ्रेंस' कर डाली, जिसमें हिन्दुओं को दिल खोल कर कोसा गया और हिन्दुओं को युद्ध का खुला-चैलेंज दिया गया। खैर, हिन्दुओं को अब भली-प्रकार प्रतीत हो गया था कि ये कॉंग्रेस के इने-गिने मुस्लिम-नेता भी हिन्दुओं को पिटते, लुटते, मरते देख कर ही प्रसन्न होते हैं; और वे कॉंग्रेस में केवल इस्लामी-लाभ के लिये ही घुसे हैं। वह इस बात को सहन नहीं कर सकते,

कि हिन्दू भी मुसलमानों के साथ वैसा ही वर्ताव करें जैसा कि मुसलमान इनके साथ करते आये हैं। क्या बंगाल के हिन्दू विचार करेंगे ?—कि इनका प्यारा 'वन्दे-मातरम्'-गान क्यों इनके ही एक भाई ने सभापति के आसन पर बैठ कर तोड़-मरोड़ डाला। अब मुर्दा-दिलों में भी जीवन-फूँक देनेवाला गान पूर्ण-रूप अथवा अपूर्ण-रूप में काँग्रेस की सभाओं मे क्यो नहीं गाया जाता ? और कलकत्ता महाविद्यालय से 'श्रीः' आदि के चित्र क्यों दूर कर दिये गये ?

१९२६ का जनरल-चुनाव

१९२६ का वर्ष 'हिन्दू-महासभा' के इतिहास में सदा स्मरण रहेगा। हिन्दू अब भली-प्रकार समझने लगे थे, कि हिन्दू-कॉङ्ग्रेसी-नेताओ के हाथ उनके अधिकार सुरक्षित नहीं हैं। वे सभा के टिकट पर अपने प्रतिनिधि भेजना चाहते थे, पर कॉङ्ग्रेस का प्रभाव अभी तक पूरे तौर से हमारे नेताओं पर से दूर न हुआ था। इस लिये हमने देखा, कि दिल्ली-'हिन्दू-महासभा' के अधिवेशन पर क्यों 'हिन्दू-सभा' ने अपने उम्मीदवार खड़े करने का प्रस्ताव पास किया ? जब वह समझते थे, कि कॉङ्ग्रेसी-उम्मीदवार हिन्दू-हितों की रक्षा न करेंगे।

फिर भी जनता के दिलों में नवीन-उत्साह उत्पन्न हो चुका था। १९२६ के नवम्बर मास में जनरल-चुनाव होने

वाले थे, और इसके लिये पहले से ही तैयारियाँ हो रहीं थीं। पण्डित मालवीयजी, स्वामी श्रद्धानन्दजी, लाला लाजपतराय, भाई परमानन्द, डॉक्टर मुंजे आदि नेता प्रान्त-प्रान्त में दौरा करने के लिये निकल पड़े थे। समस्त देश में हिन्दू-सङ्गठन की लहर-सी दौड़ गई थी। काँग्रेस-स्वराज्य-पार्टी के नेता पं० मोतीलाल नेहरू आदि भी अपनी चेष्टा में लगे हुए थे, और उन्होंने दिन-रात एक कर दिया था। 'हिन्दू-सभा' के उम्मीदवारों ने खुले-रूप से तथा स्वतन्त्र-रूप से कॉङ्ग्रेस-स्वराज्य-पार्टी के उम्मीदवारों का कई स्थानों पर मुक़ाबिला किया और उनको बुरी तरह से हराया। पण्डित मोतीलाल नेहरू की स्वराज्य-पार्टी की कमर टूट गई। विशेषकर यू० पी० में जो कि कॉङ्ग्रेस का अखाड़ा समझा जाता है, काँङ्ग्रेस के उम्मीदवार बुरी तरह से हारे। इसी प्रकार सी० पी०, पञ्जाब, बिहार आदि में भी कॉंग्रेसियों ने खूब हार खाई। पञ्जाब में तो काँग्रेस के सभापति ऐसे हारे कि उनकी ज़मानत भी ज़ब्त हो गई। स्वयं लाला लाजपत राय ने दो स्थानों के दो काँग्रेसी-उम्मीदवारों को बुरी तरह हराया। जिस-जिस प्रान्त में 'हिन्दू-सभा' का प्रचार हो गया था वहाँ पर कहीं भी कॉंग्रेसियों की दाल न गली। इसी प्रकार १९२६ के जनरल-चुनाव में काँग्रेस की सब स्थानों पर हार ही रही, और अन्त में इस हार को स्वयं पण्डित मोतीलाल नेहरू ने स्वीकार कर लिया। चुनाव में

'हिन्दू-महासभा' की यह प्रथम महान्-विजय थी और इसने समस्त देश के हिन्दुओं में एक नवीन-जागृति उत्पन्न कर दी।

अमर-शहीद स्वामी श्रद्धानन्दजी

लाला मुन्शीराम जालन्धर के एक बड़े प्रसिद्ध वकील थे। जिनका आरम्भ ही से यह अनुमान था कि अँग्रेजी-शिक्षा भारतीयों को, और विशेष कर हिन्दुओं को अपनी पुरानी-सभ्यता से दूर ले जा रही है। स्वामी दयानन्द सरस्वती के आन्दोलन का प्रभाव भी उन पर बड़ा गहरा पड़ा था, अतः उन्होने वकालत त्याग कर गङ्गा-माई के तट पर गुरुकुल-काँगड़ी की स्थापना की; और इसमें शुद्ध-संस्कृत, वेद आदि धर्म-शास्त्रों की शिक्षा देनी आरम्भ की। सबसे पहले अपने दो सुपुत्रों को ही इसमे प्रवेश कराकर उनको गुरुकुल का स्नातक बनाया। अब वह महात्मा मुन्शीराम के नाम से प्रसिद्ध थे और आर्य समाज में गुरुकुल-पार्टी के नेता माने जाते थे। जब उन्होंने देखा कि उनकी संस्था अब अपने पाँव पर खड़ी हो गई है, तो इसे अन्य योग्य-पुरुषों के संरक्षण में रख कर आपने सन्यास ले लिया और स्वामी श्रद्धानन्द के नाम से विख्यात हुए। जब महात्मा-गाँधी ने पहले-पहल अपना सत्याग्रह-आन्दोलन चलाया तो स्वामी श्रद्धानन्दजी इसमें सम्मिलित हुए। दिल्ली में तो उन्होंने अपनी छाती ब्रिटिश-सैनिको की सङ्गीनों के आगे

खोल दी। आपकी इस निर्भयता का यह परिणाम हुआ कि हिन्दू-मुस्लिम सब इनकी जयकार गाने लगे। प्रथम-बार स्वामी जी ने जामा-मस्जिद-देहली के मञ्च से व्याख्यान दिया। इस स्थान पर बड़े-बड़े मुसल्मानों को भी खड़े होने की आज्ञा न थी। एक ग़ैर-मुस्लिम का उस स्थान से व्याख्यान देना स्वामीजी की सर्व-प्रियता प्रकट करता है। मार्शल-लॉ के पश्चात् १६१६ में जो अमृतसर में काँग्रेस हुई इसकी स्वागत-कारिणी-समिति के प्रधान स्वामीजी थे। यह स्वामीजी का ही उत्साह था कि, पञ्जाब की ऐसी विषम-परिस्थिति में काँग्रेस का कार्य किया और डरे हुए हिन्दू तथा मुसल्मानों को धीरज बँधाया।

अब एक ऐसी घटना हुई कि जिससे स्वामीजी के शेष-जीवन का कार्य-क्रम ही बदल गया। १६२२ के दिसम्बर मास में 'अखिल-भारतीय-क्षत्री सभा' का अधिवेशन आगरा में, श्री राजा साहब शाहपुर के सभापतित्व में हुआ। जिसमें यह प्रस्ताव पास हुआ कि मल्काना कहलानेवाले मुस्लिम-राजपूत जो साढ़े-चार लाख के लगभग हैं और जिन्होंने स्वयं लिखकर प्रार्थना की है, शुद्ध करके बिरादरी में मिला लिया जाये। इस कार्य के लिये १६२३ में एक 'भारतीय-हिन्दू-शुद्धि-सभा' स्थापित की गई और स्वामीजी को इसका प्रधान बना दिया गया। भला स्वामीजी अपने बिछुड़े भाइयों की पुकार कैसे न सुनते, तुरन्त क्षेत्र में कूद

पड़े और वर्षों के बिछुड़े हुए भाइयों को शुद्ध करके गले लगाया। इसका यह प्रभाव पड़ा कि अब मुसलमान और कॉङ्ग्रेसी-हिन्दू-नेताओं ने स्वामीजी के विरुद्ध प्रचार करना आरम्भ किया और उनको बदनाम तक करने की चेष्टा की। मुसलमान-क्षेत्रों में स्वामीजी के विरुद्ध षड्यन्त्र रचे जाने लगे। गत जनरल-चुनाव की विजय पर हिन्दू ख़ुशियाँ मना रहे थे, और 'हिन्दू-महासभा' का एक विशेष-अधिवेशन (दिसम्बर १९२६) गोहाटी (आसाम) में कॉङ्ग्रेस के साथ-साथ हो रहा था कि अचानक समाचार प्राप्त हुआ कि दिल्ली में एक मुसलमान ने स्वामीजी को गोली का लक्ष्य बना दिया है। इस बुरे समाचार को सुनते ही सारी कॉङ्ग्रेस में मातम छा गया तथा सहानुभूति के तारों तथा पत्रों का ताँता बँध गया।

इस स्थान पर हम 'मुस्लिम-मनोवृत्ति' का उल्लेख करना चाहते हैं, और अपने हिन्दू-भाइयों से निवेदन करना चाहते हैं कि वे इससे शिक्षा-ग्रहण करें। स्वामीजी का अपराध क्या था—यही कि वह अपने बिछुड़े भाइयों को उनकी प्रार्थना पर गले लगा रहे थे। फिर स्वामीजी एक वृद्ध-सन्यासी थे, जो हर-जाति के सम्मान के योग्य थे। उस समय वे रोग-ग्रस्त थे, और अपने पलंग से उठ भी नहीं सकते थे, इस अवस्था में कट्टर-शत्रु भी दया दिखाता, पर मुसलमानों के दिल में दया कहाँ? घातक ने स्वामीजी से

पानी पीने को माँगा, और जब स्वामीजी का सेवक पानी लेने गया तो इस क्रूर 'ग़ाज़ी' ने वृद्ध-बीमार-संन्यासी के सीने पर दनादन पिस्तौल के फ़ायर कर दिये। यह हमारे मुसल्मान-पड़ौसियों की मनोवृत्ति है, जिसका हमें हरदम सामना करना पड़ता है। कॉङ्ग्रेसी-भाई या और दयालु-हिन्दू कहेंगे कि यह केवल एक मुस्लिम का कार्य है, सारे मुसल्मान समान कैसे हो सकते हैं? पर क्या आप किसी मुस्लिम-नेता या समाचार-पत्र का लेख दिखा सकते हैं, जिसमें इस घृणित-कार्य की निन्दा की गई हो? नहीं, कोई नहीं, केवल इतना ही नहीं, किन्तु मुसल्मानों ने स्वामी जी के घातक को 'ग़ाज़ी', 'क़ाज़ी' आदि की उपाधियाँ दीं, उसका जलूस निकाला और उसका मुकदमा चन्दा इकट्ठा कर प्रीवी-कौंसिल तक लड़ाया। जब कहीं न चली और 'ग़ाज़ी-साहब' को फाँसी हो गई तो सहस्रों मुसल्मानों ने उसके शव का जलूस निकाला। जामा-मस्जिद में दुआयें माँगी गईं और उसकी क़ब्र पर अब तक चिराग़ जलता है। यह है 'मुस्लिम-मनोवृत्ति' जिसका हिन्दुओं को सदैव ध्यान रखना चाहिये। फिर स्वामीजी के हत्यारे की वीरता की यह सीमा है कि जेल में पागल बन गये और मारने से बिल्कुल मुकर गये। इस्लाम के 'ग़ाज़ी' ऐसे वीर होते हैं।

स्वामीजी की हत्या करने के पश्चात् भी मुसल्मान चुप

न रहे। उनको तो हिन्दुओं को मारने तथा तंग करने की चाट-सी लग गई है। और भी कई स्थानों पर हिन्दुओं पर आक्रमण किये गये, जिसमें सब से अधिक प्रसिद्ध लाहौर के 'रङ्गीला-रसूल' नामक पुस्तक के प्रकाशक महाशय-राजपाल की हत्या है। परन्तु हिन्दुओं में जो जागृति उत्पन्न हो चुकी थी वह अब दब नहीं सकती थी, कार्य और जोरों के साथ चलता रहा। 'गोहाटी-कॉफ्रेंस' के अवसर पर ही प्रस्ताव पास किया गया था कि 'स्वामी श्रद्धानन्दजी की स्मृति चिर-काल तक स्थापित रखने और उनके शुद्धि-संगठन, अछूतोद्धार आदि के कार्य को जारी रखने के लिये एक फंड खोला जाये जिसका नाम 'अखिल-भारतीय स्वामी श्रद्धानन्द-मेमोरियल-फंड' हो, और इसमें कम-से-कम दस लाख रुपये इकट्ठे किये जायें।' अपील जारी की गई और फण्ड के लिये रुपये धड़ाधड़ आने लगे। दक्षिणी और पूर्वी अफ्रीका-वासियों ने भी फंड के लिये रुपया भेजा। १६२७ के 'अखिल-भारतीय-हिन्दू-अधिवेशन' पर एक ट्रस्ट इसी फंड का प्रवन्ध करने के लिये बना दी गई। ट्रस्टियों में भारत के ३५ मुख्य-मुख्य हिन्दू-नेताओं के नाम हैं जिनमें, महात्मा मालवीयजी, लाला लाजपतराय, महात्मा हंसराज, भाई परमानन्द, डाक्टर मुंजे, मिस्टर केल्कर, सेठ विरला आदि के नाम विशेषकर उल्लेखनीय हैं। 'महासभा' ने प्रस्ताव के द्वारा ट्रस्टियो को यह भी आज्ञा

दी कि वह ट्रस्ट के मुख्य कार्य—संगठन, शुद्धि, अछूत-उद्धार आदि 'हिन्दू-महासभा', सनातन-धर्म-सभा, आर्य-समाज, शुद्धि-सभा और दलित-उद्धार-सभा-दिल्ली के द्वारा करें।

डॉक्टर बी० एस० मुंजे

डॉक्टर मुंजे नागपुर के निवासी हैं और हिन्दू-नवयुवकों में सैनिक-शिक्षा का प्रचार करने के लिये आपने नासिक में 'भौंसला-मिलिट्री-स्कूल' खोला है जो इस समय बड़ा अच्छा कार्य कर रहा है। डॉक्टर साहब पहले कट्टर कॉङ्ग्रेसी थे। जब मालाबार में मोपलों ने हिन्दुओं पर बड़े-बड़े अत्याचार किये तो डॉक्टर साहब स्वयं सब-कुछ अपनी आँखों से देखने के लिये वहाँ गये। मुसल्मानों के अत्याचार देखकर डॉक्टर साहब जैसे अनुभवी-नेता अपने आँसुओं को न रोक सके। हिन्दुओं को घोर-विपदा में देखकर डॉक्टर साहब का हृदय पसीज गया। उधर कॉङ्ग्रेसी-समाचार-पत्र, नेता और विशेषकर कॉङ्ग्रेस की जाँच-कमेटी इस उद्योग में लगे हुए थे कि मामला दबा दिया जाय, ताकि स्वराज्य-आन्दोलन चलता रहे और मुसल्मान क्रुद्ध न हो जायें। इसी समय डॉक्टर साहब ने जो ऐसे विपत्ति-काल में भी हिन्दुओं की सहायता नहीं करना चाहती थी, उस कॉङ्ग्रेस को दूर से ही अन्तिम नमस्ते की और झट हिन्दू-संगठन की लहर में कूद पड़े।

तब से आज तक डॉक्टर साहब 'हिन्दू-महासभा' के एक महान्-स्तम्भ बने हुए हैं और अपनी सेवाओं से हिन्दू-जाति को चिर-काल के लिये ऋणी बना दिया है।

'हिन्दू-महासभा' अपने पैरों पर

१६११ की अखिल-भारतीय 'हिन्दू-महा-सभा' का अधिवेशन पटना में हुआ। इसके सभापति डॉक्टर मुंजे चुने गये। अब 'महा-सभा' शैशव-काल को पूरा कर चुकी थी। वह अब कॉङ्ग्रेस के पीछे न लगकर अपने पॉव पर स्वयं खड़ा होना चाहती थी और उसमें वह शक्ति १६२६ के जनरल चुनाव में आगई थीं, जहाँ इसने कॉङ्ग्रेस को नीचा दिखाया था। जब वे स्वयं कॉङ्ग्रेस के पीछे क्यों चले। डॉक्टर साहब हिन्दूवादी तो प्रसिद्ध थे ही, कॉङ्ग्रेस-मनोवृत्ति के हिन्दू-नेता इनके सभापति के चुनाव से घबराये कि कहीं कॉङ्ग्रेस तथा और हिन्दू-सभा के बीच खेचातानी न हो जाये। डॉक्टर साहब का भाषण बड़ा प्रभावशाली तथा हिन्दू-वाद को उत्साह देने वाला था। हिन्दू-मुस्लिम-मनोवृत्ति का उल्लेख डॉक्टर साहब ने इस प्रकार किया "हरएक मुसल्मान, चाहे वह स्त्री हो या मर्द, इस्लाम का प्रचार करने करने के लिये एक स्थाई-एजेण्ट है। वह, यह अपना धर्म समझता है कि अपने जीवन में हिन्दुओं को चाहे वह स्त्री हो या मर्द, लड़का हो या लड़की (यदि लड़कियॉ हों तो सबसे अच्छा) किसी-न-किसी ढॅग से मुसल्मान बनाये। 'मुसल्मान

समस्त संसार को अपना घर समझता है, सामिग्री जिसको वह छू लेता है वही उसकी दृष्टि में पवित्र हो जाती है,' और हिन्दुओं को, कहीं नाम मात्र अछूतों की छूत सता रही है, और कहीं बाहरी पुरुष की छाया इनकी थाली में पड़कर इन्हें भ्रष्ट कर देती है। इनको सर्वदा यह सन्देह रहता है कि, जो पानी वह पी रहे हैं या जो भी भोजन वह कर रहे हैं, उसको किसी शूद्र ने छू तो नहीं लिया। वह सदैव प्रायश्चित करने को उद्यत रहते हैं।" काँग्रेसी-हिन्दू-नेताओं ने ख़िलाफ़त का आन्दोलन अपनाकर मुसल्मानों की शक्ति को संगठित कर हिन्दुओं को सदा के लिये इनकी दया का पात्र बना दिया है। डॉक्टर साहब कहते हैं कि खिलाफत-आन्दोलन से मुसल्मानों ने यह लाभ उठाया कि वे हर प्रकार से सगठित हो गये, और अपनी शक्ति बढ़ाने के लिये भारत के बाहर के इस्लामी-देशों की ओर देखने लगे। मुसल्मानों के हृदय में यह विचार होगया कि तुर्की से लेकर पूर्व-बङ्गाल तक का सारा क्षेत्र उनका है, और अब उनकी ओर से प्रश्न होने लगा कि किस प्रकार सारे क्षेत्र पर जिसमें सीमा-प्रान्त, सिंध, बिलोचिस्तान, पञ्जाब, काश्मीर-आदि सम्मिलित हैं, मुसल्मानों का राज्य हो जाये।" हिन्दू-मुसलिम-ऐक्यता के बारे में डॉ० साहब ने कहा "जो एकता दुकानदारी करके स्थापित की जाती है वह कभी स्थाई नहीं हो सकती विशेष-कर उस समय जबकि एक जाति दूसरी को अधिकारों की

घूस देकर उसको स्थगित करने का प्रयत्न करे। जब-जब कॉङ्ग्रेसी-नेता घोषणा करते हैं कि, बिना 'हिन्दू-मुस्लिम-एकता' के स्वराज्य नहीं मिल सकता उसी समय एकता बिक्री की वस्तु बन जाती है और खुले-बाजार, आवश्यकता अनुसार बिकने लगती है।" अब हिन्दू-मनोवृत्ति देखिये "हिन्दुओं को स्वराज्य लेने का पागलपन-सा हो ही गया है। आदर्श तो यह बड़ा उत्तम है, पर क्या कभी हिन्दुओं ने इस पर ठण्डे दिल से विचार किया है कि वह स्वराज्य को सँभाल सकते हैं या नहीं। वे यदि विचार करें तो देखें कि, जब हिन्दू अपनी स्त्रियों तथा मन्दिरों आदि की रक्षा उनसे नहीं कर सकते जिनके शस्त्र केवल लाठियाँ तथा छुरे हैं, तो वह उनसे स्वराज्य कैसे छीनेंगे और फिर इस स्वराज्य को उनके विरुद्ध कैसे सँभाल सकेंगे; जिनके पास वायुयान, मशीनगन जैसे भयानक हथियार हैं। क्या यह सत्य नहीं कि हिन्दू हर स्थान पर दंगे में मुसल्मानों के आगे भाग खड़े होते हैं। सत्य, अहिंसा, धर्म भक्ति आदि सिद्धान्तों पर इतना जोर देने के कारण हिन्दू दुर्बल और दयनीय बन गये हैं, और मुसल्मान संगठित होकर शक्ति प्राप्त कर रहे हैं। अब उनका उत्साह इतना बढ़ा हुआ है कि वे समस्त भारत को ही मुसल्मान-भारत बनाना चाहते हैं, जैसा कि उन्होने अफग़ानिस्तान को बना लिया है, जो किसी समय एक हिन्दू-प्रान्त था।" परन्तु हिन्दू सदा से ही ऐसे शक्ति-हीन नहीं

रहे, मरहठों ने मुग़ल राज्य का अन्त कर दिया, और सिखों ने पञ्जाब में अपना राज्य स्थापित कर क़ाबुल तक जीत लिया था। डॉक्टर साहब ने अपने व्याख्यान में स्वराज्य के विषय में कहीं "मैं ऐसा स्वराज्य कभी न लूँगा जिसमें कि हिन्दुओं की संख्या दिन-प्रति-दिन कम होती जाये और वे औरों से नीचे रहें; मैं केवल वही स्वराज्य लूँगा जिसमें कि हिन्दू अपनी पितृ-भूमि में सुख से रहते हुए सदा फूलें-फलें और शक्ति-शाली बनें। उस प्रकार हर स्थान पर शान्ति, प्रेम तथा भाईचारे की स्थापना कर सकें। परन्तु प्रश्न यह है कि, ऐसा हो कैसे सकता है—क्यों कि इस समय हिन्दू, मुसल्मानों के डंडे और अँग्रेज़ी-सरकार की मशीनगन के नीचे दबे पड़े हैं। 'हिन्दू-महासभा' ने इसका हल शुद्धि तथा संगठन नियत किया है, और हमारी बुद्धि कहती है कि यदि हम अपने इस मिशन में उत्तीर्ण हो गये तो वास्तविक तथा स्थाई-रूप में एकता हो जायेगी। और हमें उस स्वराज्य की प्राप्ति भी हो जायेगी, जिसकी हम इच्छा करते हैं।" इस समय हमें मुसल्मानों -से इस सम्बन्ध में किसी प्रकार का परामर्श-व्यवहार नहीं करना चाहिये। डाक्टर साहब का कथन है "हिन्दुओं को चाहिये कि वे मुसल्मानों के साथ एकता के बारे में कुछ काल के लिये कोई बातचीत न करें, और उनकी जो इच्छा हो इन्हें करने दें, चाहे वह सरकार से ही क्यों न मिल जाये। कुछ समय

पश्चात् मुसलमान अपनी भूल का स्वयं अनुभव करलेंगे और तब उनको प्रतीत होगा कि हिन्दुओं से पृथक रहकर वह कोई लाभ नहीं उठा सकते। इसी बीच यदि हिन्दू संगठित हो जायेंगे तो फिर मुसलमान स्वयं उनके द्वार पर एकता के लिये आयेंगे, उस समय जो एक भारतीय-जाति बनेगी वह सदैव स्थापित रहेगी और इससे हिन्दुओं को या मुसलमानों को ही नहीं समस्त भारत को लाभ पहुँचेगा।"

'पटना-कॉन्फ्रेंस' में 'महासभा' के कई लाभदायक प्रस्ताव पास किये, जिनको कि कार्य-रूप में परिणत करना हिन्दुओं के लिये परम-आवश्यक है। मुसलमान-गुण्डों की शरारतों का ध्यान रखते हुए 'महासभा' ने एक प्रस्ताव-द्वारा समस्त हिन्दू-ललनाओं को सलाह दी, कि वह अपनी तथा अपने बच्चों की रक्षा-हित कोई-न-कोई शस्त्र सदैव अपने पास रखें। पुरुषों को तो यह सलाह पहले ही दी जा चुकी थी। आशा है कि 'हिन्दू-महासभा-वादी' उस उद्देश को कार्य-रूप में परिणत करेंगे। एक अन्य प्रस्ताव-द्वारा 'महासभा' ने समस्त प्रान्तीय व अन्य 'हिन्दू-सभाओं' को आदेश दिया कि वह प्रति-वर्ष अपने वीर-महापुरुषों के जन्म-दिवस बड़े समारोह से मनाया करें और उनके चरित्रों से जो शिक्षा हमें आज-कल मिल सकती है उनका प्रचार करें। निम्न-लिखित महापुरुषों के जन्म-दिन विशेषकर मनाये जायें:—महात्मा बुद्ध, गुरु गोविन्द-

सिंह, महाराणा प्रतापसिंह, छत्रपति शिवाजी, वीर बन्दा वैरागी, झाँसी की रानी लक्ष्मीबाई, दयानन्द सरस्वती तथा स्वामी श्रद्धानन्द-आदि।

'साइमन कमीशन' का बॉयकाट

'मॉंटेग्यू-चेम्सफोर्ड-रिपोर्ट' की एक बड़ी शर्त यह थी कि वह केवल दस वर्ष तक चालू रहेगी। इसके उपरान्त "'रॉयल-कमीशन' द्वारा उसकी जाँच की जायगी, और जो उचित समझा जायेगा उसे पूरा करने के पश्चात् ही अगला क़दम उठाया जायेगा। कॉङ्ग्रेस ने पहले ही इसका बॉयकाट कर रखा था। फिर दूसरे चुनाव में मिस्टर सी० आर० दास तथा पं० मोतीलाल नेहरू-आदि ने कॉङ्ग्रेस में स्वराज्य-पार्टी बना कर कौंसिलों और असेम्बलियों में अधिकार कर लिया। १९२६ के जनरल-चुनाव में कॉंग्रेस-स्वराज्य-पार्टी, 'हिन्दू-सभा' से बुरी प्रकार हारी। अब दस साल की अवधि व्यतीत हुई, इसलिये ब्रिटिश-सरकार ने 'रिफ़ॉर्म-एक्ट' के अनुसार एक 'रॉयल-कमीशन' जाँच के लिये भारत भेजा, इस कमीशन के सभापति लन्दन के प्रसिद्ध वकील सर जॉन साइमन थे, इसलिये इस कमीशन का नाम भी उनके नाम पर 'साइमन-कमीशन' प्रसिद्ध हुआ। इस कमीशन के मेम्बरों के चुनाव में सरकार ने बड़ी भूल की, कि इसमें एक भी हिन्दुस्तानी को मेम्बर न बनाया।

इसके सब मेम्बर पार्लियामेंट के अंग्रेज थे। काँग्रेसी-नेता इस अपमान को कैसे सहन कर सकते थे, तुरन्त ही कमीशन के बॉयकाट की आज्ञा दे दी गई। कमीशन को बम्बई आते ही काले झण्डे दिखा गये तथा 'साइमन लौट जाओ' के नारे लगाये गये। खैर कमीशन ने अपना कार्य आरम्भ किया; वह जहाँ जाता; उसका स्वागत काले-झण्डों से किया जाता। इस समय लाला लाजपतराय ने उचित यही समझा कि कॉंग्रेस का साथ देकर कमीशन का बॉयकाट करें। जब कमीशन लाहौर पहुँचा तो लालाजी बहुत से वालण्टियर लेकर स्टेशन पर पहुँच गये। उधर सरकार ने भी उनको दूर रखने का पूरा प्रबन्ध किया था। प्यादा-पुलिस व घुड़सवार-पुलिस ने स्टेशन जानेवाले सब मार्ग रोक रखे थे। पुलिस अफसरों द्वारा लालाजी के स्वयंसेवक स्टेशन के पास ही रोक लिये गये, लालाजी स्वयं वहाँ उपस्थित थे। जब कमीशन के मेम्बरों को काले झण्डे दिखाये गये, और 'वापिस जाओ' के नारे लगे तो पुलिस ने लाठी-चार्ज कर दिया। कहते हैं कुछ लाठियाँ लालाजी के सिर पर भी पड़ीं। वह बीमार तो पहले ही से थे। कुछ लाठियों की चोट, और सब से बड़ी चोट सरकार के इस व्यवहार की उनके दिल पर ऐसी लगी, कि वे इस बीमारी से फिर न उठ सके, और कुछ काल बिस्तर पर पड़े रहने के पश्चात लाहौर में ही उनका स्वर्गवास हो गया। इस

प्रकार लालाजी अपने प्यारे देश व जाति की सेवा करते सदैव के लिये सो गये।

इस समय 'हिन्दू-महासभा' की लहर जोर मार रही थी पर 'साइमन-कमीशन' के बॉयकाट ने इस तरंग को कुछ काल के लिये दबा दिया। बॉयकाट करनेवाले काँग्रेसी अधिकतर हिन्दू थे। सर जॉन साइमन ने फिर भी उनके साथ न्याय ही किया। हिन्दुओं को उनकी संख्या के अनुपात से असेम्बली तथा कौंसिल में सीटें दी जाने लगीं, किन्तु मुसल्मान तो अपने भाग से कहीं बढ़-चढ़कर माँग रहे थे। वे 'साइमन-कमीशन' की सिफारिशों को क्यों स्वीकार करते। काँग्रेसी-हिन्दू तो पहले ही से बॉयकाट कर रहे थे, अब मुसल्मानों ने भी बॉयकाट का ढोंग रचकर नेशनल की पदवी प्राप्त की। इसको कहते हैं 'ख़ून लगाकर शहीदों में नाम लिखाना।' सरकार ने देखा कि हिन्दू इस प्रकार न मानेंगे। मुसल्मानों को ख़रीदने की वही पुरानी चाल चली। 'साइमन-कमीशन' की सिफारिशें और रिपोर्ट रद्द कर दीं गईं; और हिन्दुओं को इतना दुर्बल करने की ठानी कि फिर कभी वे सरकार के विरुद्ध सिर उठा ही न सकें।

गोलमेज़-कॉन्फ्रेन्स

जब 'साइमन-कमीशन' की रिपोर्ट निकली तो काँग्रेस की ओर से सत्याग्रह का आन्दोलन आरम्भ हो चुका था। कॉंग्रेसी-नेताओं ने रिपोर्ट पढ़े बिना ही अस्वीकार कर दी,

और स्थान-स्थान पर सभायें करवा कर सत्याग्रह का कार्य्य करने लगे। इससे जोश तो बहुत फैल गया पर हिन्दू औरों के आश्रित हो गये। ब्रिटिश-सरकार ने अब बड़े चातुर्य से काम लेकर लन्दन में 'गोलमेज-कॉन्फ्रेंस' आरम्भ की और कॉंग्रेस, हिन्दू, मुसलमान, सिख सभी के प्रतिनिधियों को बुलाया। डॉक्टर मुँजे उस समय 'हिन्दू-महासभा' के प्रधान-कार्यकर्त्ता थे, इसलिये उन्हें भी निमन्त्रित किया गया। ला० सुरेन्द्रनाथ, मिस्टर जैकर, पण्डित नानकचन्द इत्यादि सब को बुलाया गया और उन्होंने हिन्दुओं की वकालत करते हुए 'हिन्दू-महासभा' के उद्देश्य को 'गोलमेज-कॉन्फ्रेंस' में पेश किया। कॉंग्रेस ने पहली 'गोलमेज-कॉन्फ्रेंस' का बहिष्कार किया, किन्तु दूसरी कान्फ्रेंस में गॉंधीजी कॉंग्रेस के प्रतिनिधि बनकर लन्दन गये। वहॉं भी वे मुसल्मानों के साथ समझौते की बातें करते रहे। वहॉं अहिंसा और सत्य के पुजारी महात्मा की अंग्रेज-राज-नीतिज्ञ-घाघ कब दाल गलने देनेवाले थे। वह तो पहले से ही जानते थे कि मुसलमान सरलता से खरीदे जा सकते हैं, और नकद रुपये भी उनके पास थे। बस फिर क्या था मुसल्मानो ने महात्माजी के 'कोरे-चैक' ठुकरा दिये, क्योंकि उन्हें महात्माजी के चैक में कुछ रुपये दिखाई न दिये। उन्होंने सरकारी-प्रतिनिधियों के साथ सौदेबाजी करली। सरकार को भी तो अपने पास से कुछ देना ही न

था। हिन्दुओं के कुछ अधिकार कम किये और मुसल्मानों के बढ़ा दिये। प्रधान-मन्त्री स्वयं ही पंच बन बैठे, और हिन्दू-मुसल्मानों के भाग का एक ऐसा बन्दर-बॅटवारा कर दिया कि हिन्दू-मुसल्मानों में सदा के लिये लड़ाई-झगड़े रहें, और ये माई के लाल इन पर शासन करते रहें। यह न्याय जो 'साम्प्रदायिक-निर्णय' (Communal Award) के नाम से प्रसिद्ध है, लन्दन में १६ अगस्त १६३३ में ब्रिटिश प्रधान-मन्त्री मेकडॉनेल्ड द्वारा घोषित किया गया था। सरकार की सहायता से मुसल्मानों ने हिन्दुओं को फिर परास्त किया। मुसल्मान बड़े प्रसन्न थे, और हिन्दू (कॅग्रेसी-हिन्दू) फिर मुसल्मानों की चापलूसी में लग गये। भला जिस बाघ के मुँह ख़ून लग जाता है वह कभी छोड़ सकता है? १६२६ में ही 'महासभा' की बागडोर डॉक्टर मुंजे के हाथ में आई थी, और वह इसके कई वर्ष तक लगातार प्रधान कार्यकर्ता नियुक्त होते रहे। १६२८ तथा ३२ में दो बार पूना के प्रसिद्ध हिन्दू-नेता लोकमान्य तिलक के वंशज श्री एन० सी० केल्करजी 'महासभा' के प्रधान चुने गये। १६२६ में कलकत्ता के 'मॉडर्न-रिव्यू' के प्रसिद्ध सम्पादक श्री रामानन्द चटर्जी, और १६३२ में मद्रास के वृद्ध हिन्दू-शास्त्री विजयराघोचार्य 'महासभा' के सभापति बने; पर इस सारे समय में 'महासभा' की बागडोर डॉक्टर मुंजे के हाथ में रही, और उन्होंने यथा-शक्ति सभा के कार्य

को बढ़ाया। लाला लाजपतरायजी की मृत्यु के पश्चात 'हिन्दू-सभा' ने निर्णय किया कि उनकी याद बनाये रखने के लिये फंड खोला जाय। डॉक्टर मुंजे के उद्योगों से इस फंड में ५०००० रुपये इकट्ठे हुए। प्रधान-कार्यकर्त्ता के रूप में डॉक्टर साहिब 'गोलमेज कॉफ्रेंस' में सम्मिलित होने के लिये लन्दन भी गये, और इनसे जो बन पड़ा वही हिन्दू-हितों की रक्षा के लिये किया। उन्होंने समस्त-भारत में भी कई दौरे लगाये और 'साम्प्रदायिक-निर्णय' के विरुद्ध प्रचार किया। इस काल की अवस्था समझने के लिये हम यह उचित समझते हैं, कि पाठकों के सम्मुख उस समय की महासभाओं के प्रधानों के भाषणों के कुछ भाग और आवश्यक प्रस्ताव रखें।

१६२८ में 'अखिल-भारतीय-हिन्दू-सभा' का ११ वॉ अधिवेशन जबलपुर मे श्री केलकर के सभापतित्व में हुआ। श्री केलकरजी ने कहा—"हिन्दुओं का तो सब कुछ केवल भारत पर ही निर्भर है। अन्य जातियॉ तो अन्य देशों की ओर भी देख सकती हैं। गत दिनो की गड़बड़ में मुसलमानों ने इस्लामी-देशों की ओर हिजरत की। यद्यपि इसका परिणाम कुछ अच्छा न निकला, पर हिन्दुओ के लिये हिन्दोस्तान के अतिरिक्त स्थान कहॉ है। हम अकेले, तथा बिखरे हुए हिन्दुओं का इसके अतिरिक्त कि संगठित हो, अपनी शक्ति बढ़ावें, और अपने शत्रुओं का सामना

करते रहें और क्या साधन है। यदि हिन्दू ऐसा नहीं करेंगे तो वह दिन दूर नहीं जब हिन्दू-जाति का नाश हो जायगा। हिन्दू केवल स्वराज्य ही लेना नही चाहते, परन्तु हिन्दू रह कर स्वराज्य में पूर्ण-भाग लेना चाहते हैं। जिस स्वराज्य का मूल्य हिन्दुत्व से ही हाथ धोना है, हमें ऐसा स्वराज्य नहीं चाहिये। हिन्दुओं को अपने अन्दर के भेद-भाव मिटा कर आपस में प्रेम बढ़ाकर अपनी शक्ति बढ़ानी चाहिये। इसी से वे मान के साथ रह सकते हैं, और स्वराज्य का आनन्द ले सकते हैं।" हिन्दू-मुस्लिम-एकता के बारे में केल्करजी का यह विचार है "मुसल्मानों और हिन्दुओं की पिछले तीन साल से कॉफ्रेंसें हो रही हैं कि किसी प्रकार दोनों में एकता हो जाये, लेकिन हुई कहाँ? अब हमें क्या करना चाहिये? मेरी राय में अब हमें बिल्कुल चुप हो जाना चाहिये और फिर देखना चाहिये कि, ऊँट किस करवट बैठता है, समझौते के प्रस्तावों को भी तो कुछ काल के लिये आराम लेने दिया जाय। हिन्दुओ को अब अपना ध्यान स्वराज्य-प्राप्ति की ओर लगाना चाहिये। मुसल्मानों के पीछे दौड़ने से क्या लाभ?" शुद्धि व संगठन पर आपके विचार सराहनीय हैं, "मैं सबको चेलैंज देता हूँ कि वे एक भी ऐसा फरमान बतायें कि जब से शुद्धि और संगठन का कार्य चला है तब से हमने एक भी शुद्धि धोखे से या जबरन की हो। क्या इस पर भी

हिन्दू 'साम्प्रदायिक' हैं और हैं नेशनल विचारों के शत्रु। यदि वे हिन्दू रह कर स्वराज्य प्राप्त करना चाहते हैं तो क्या यह कोई पाप है ? क्या ही अच्छा होता यदि अन्य-जातियाँ भी हिन्दुओं से मिलकर स्वराज्य-प्राप्ति का कार्य करतीं। पर यदि वे ऐसा न करना चाहें तो भी कोई हानि नहीं। हमे दृढ़-निश्चय के साथ अपनी यात्रा पर अकेले ही चलते रहना चाहिये, मार्ग में बहुत साथी मिल जाया करते हैं।"

इसी अधिवेशन में 'महासभा' ने 'साम्प्रदायिक-निर्णय-प्रतिनिधि-मण्डल' के विरुद्ध एक प्रस्ताव पास किया और इसे 'नेशनलिज्म' के लिये घातक घोषित किया। 'महासभा' ने इस सम्बन्ध मे अपनी तजवीज भी आगे रक्खी, और माँग की कि भारत के विधान में प्रतिनिधि चुनने का ढंग उनकी संख्या, टैक्स या मत-दाताओ के अनुपात से समान होना चाहिये।

श्री रामानन्द चटर्जी का भाषण १९२९

श्री रामानन्द चटर्जी भारत की प्रसिद्ध अँग्रेजी मासिक-पत्रिका "मॉडर्न-रिव्यू" के प्रवर्त्तक तथा सुयोग्य सम्पादक हैं। सूरत में १९२९ की अखिल-भारतीय-'हिन्दू-महासभा' के अध्यक्ष-पद से उन्होंने एक बड़ा प्रभावशाली-भाषण दिया था। उन्होंने इस बात को प्रत्यक्ष-रूप में स्पष्ट किया कि 'हिन्दू-महासभा' साम्प्रदायिक नहीं परन्तु शुद्ध-नेशनल है,

उन्होंने कहा 'हिन्दू-महासभा' हिन्दुओं के लिये कोई भी अधिकार नहीं माँगती जिससे वह अपनी जन-संख्या, शिक्षा व टैक्स -आदि के अतिरिक्त और कुछ हो। न 'हिन्दू-महासभा' हिन्दुओं के लिये कोई ऐसा भाग कराना चाहती है, जिससे किसी अन्य-सम्प्रदाय के भाग में कमी पड़ जाय। वह तो जाति, वर्ण, धर्म-आदि के अनुसार सब के लिये समान-अधिकार चाहती है। 'हिन्दू-महासभा' का एक आदर्श यह भी है कि भारत में रहनेवाले, भिन्न-भिन्न मतावलम्बियों में प्रेम-द्वारा एकता उत्पन्न करे।" शुद्धि के सम्बन्ध में श्री चटर्जी का कथन है कि "शायद मुसल्मान 'हिन्दू-महासभा' को इसलिये नहीं चाहते कि वह शुद्धि-द्वारा जन-संख्या बढ़ाने का प्रयत्न करती है। लेकिन क्या यह सत्य नहीं कि मुसल्मान तथा ईसाई सदैव, हिन्दुओं को भ्रष्ट कर अपने-अपने धर्म की वृद्धि करते आये हैं। विशेषकर मुसल्मानों की जन-वृद्धि केवल हिन्दुओं से हुई है, और ईसाईयों ने जंगली-फिर्क़ों को अपने धर्म में मिलाया। इसलिये जब उनको अपनी मनमानी करने से रोका जाता है तो वे क्यों प्रसन्न होगे, और यदि हम इनमें से किसी को शुद्ध कर लें, तब तो उनके क्रोध की सीमा नहीं रहती। जो कार्य दूसरे बिना रोक-टोक के शताब्दियों से करते चले आ रहे हैं वही कार्य यदि आत्म-रक्षा के लिये हिन्दू करें तो उनको क्यों दुःख होता है। 'हिन्दू-

महासभा' तथा अन्य हिन्दू-संस्थायें तो केवल प्रचार-द्वारा और बिना किसी धोखे-बाजी के शुद्धि का कार्य करती हैं। अछूत कहलानेवाले भाइयो की वकालत करते हुए प्रधानजी ने कहा 'हिन्दू-महासभा' को उनकी शिक्षा-आदि का प्रबन्ध करना चाहिये, और उनको अछूत या दलित कभी न कहना चाहिये। हम सब हिन्दू हैं और समान हैं।" उन भाइयों की जन-संख्या के बारे में आप कहते हैं "अन्य लोग इनकी जन-संख्या बढ़ा चढ़ाकर कहते हैं कि ६ करोड़ या इससे भी अधिक हैं, परन्तु यह तो केवल सरकारी-तौर से स्वीकार कर लिया है, वे तो समस्त देश में तीन करोड़ से भी कम हैं।" मिस्टर चटर्जी इस बात को सर्वथा मिथ्या बताते हैं कि 'हिन्दू-महासभा' एक साम्प्रदायिक संस्था है। "हिन्दुओं के जीवन का आदर्श यह होना चाहिये कि हमें अपने पूर्वजों से जो संस्कृति व सभ्यता प्राप्त हुई है हम उसकी न केवल रक्षा करें, अपितु और भी बढ़ायें। हिन्दू सदा से एक जीवित जाति रही है, और वह अवश्य एक बार फिर जीवन प्राप्त करके रहेगी। मानव-धर्म के अमर सिद्धान्तों का हिन्दू-जाति ने सर्वदा ही से प्रचार किया है, और अब फिर उस सुप्त-संस्कृति को जगाने का वह समय आ गया है, जब प्रत्येक हिन्दू परम-पवित्र-लोक मंगलकारी मानव-धर्म का बिगुल बजा देना चाहिये।' मिस्टर चटर्जी को बात का बड़ा दुःख हुआ कि हिन्दुओ की जन-संख्या दिन-

प्रति-दिन कम होती जा रही है उन्होंने कहा—"जब एक जाति किसी दूसरी जाति पर ऐसे प्रतिबन्ध लगा देती है, जिससे कि उस जाति के आराम, प्रसन्नता और आशायें कम हो जायें तो उस जाति की जन-संख्या धीरे-धीरे कम होने लगती है, और कुछ काल के पश्चात् वह जाति नष्ट हो जाती है।' अन्य जातियों के साथ व्यवहार के विषय में प्रधानजी ने कहा, "मैं केवल इतना ही कहूँगा कि हिन्दू सर्वदा से सब का साथ निभाते आये हैं, अब भी भरसक प्रयत्न कर रहे हैं और भविष्य में भी भारी-से-भारी भय का सामना करते हुए बड़े-से-बड़ा बलिदान देकर स्वतंत्रता का युद्ध चालू रखेंगे।"

'हिन्दू महासभा' की इस १२वीं सभा में जहाँ संगठन-आदि का कार्य बढ़ाने के लिये नई-नई 'हिन्दू-सभाओं' का खोलना आवश्यक समझा गया था; वहाँ के लिये यह भी महत्वपूर्ण प्रस्ताव पास किया कि संगठन तथा स्व-राज्य का कार्य भली प्रकार चलाने के लिये यह आवश्यक है कि हिन्दू-नवयुवक-संस्थायें स्थापित की जायें और अखाड़े-आदि खोलकर उनको व्यायाम (लाठी-इत्यादि चलाना) सिखाया जाय। 'हिन्दू-महासभा' ने एक लम्बे प्रस्ताव-द्वारा फिर दोहराया कि सारे ही चुनाव साम्प्रदा-यिकता से अछूते रहें 'महासभा' ने सिन्ध को बम्बई-प्रान्त से प्रथक् करने के विरुद्ध भी प्रस्ताव पास किया।

अकोला-अधिवेशन के प्रधान श्री विजय राघोवाचार्य

अखिल-भारतवर्षीय 'हिन्दू-महासभा' का १३वाँ वार्षिक-अधिवेशन अकोला में १९३१ में हुआ। १९३० में महा-सभा का कोई वार्षिक अधिवेशन न हो सका। तेरहवें अधिवेशन के प्रधान, मद्रास के वयो-वृद्ध और विद्वान हिन्दू-नेता श्री विजय राघोवाचार्य जी चुने गये। आपने अपने प्रभावशाली तथा ओज पूर्ण व्याख्यान में बताया कि मुसलमानों को प्रसन्न करने की पॉलिसी १८वीं शताब्दी के १७वें तथा अस्सीवें वर्ष के मध्य से चली आ रही है। जब से तुर्की के सुलतानों ने मुसलमानों को संगठित करने की तरंग चलाई, तब से सरकार की सहायता पाकर मुसल्मान अपनी माँगें बराबर बढ़ाते आ रहे हैं, और मॉगे यहॉ तक पहुँच गई हैं कि मुसल्मान स्वयं भी नहीं कह सकते कि उनको और अधिक 'क्या माँगना है और वे कहॉ तक कहें। इस समय संसार के नेत्र यूरोप की 'लीग-ऑफ-नेशन्ज पर लगे हुए थे, और इससे बड़ी-बड़ी आशायें की जा रही थीं। प्रधानजी ने 'हिन्दू-मुस्लिम-समस्या' इसी लीग के हाथ देने की सलाह दी। आगे चल-कर प्रधानजी ने कहा 'इतिहास हमें बताता है कि हिन्दुओं ने कभी भी किसी दूसरी जाति पर अत्याचार नहीं किये और भारत में जो भी आया वह सुख-पूर्वक रहा। कोचीन में यहूदी बस गये, मालावार में ईसाई और बम्बई तथा

गुजरात में पारसी विदेश से आकर रहने लगे, पर इनको किसी ने दुःख नहीं दिया। वे सैकड़ों वर्षों से भारत में सुखपूर्वक रहते हैं और अपने देशों को लौटने का नाम भी नहीं लेते। इसलिये मुसलमानों को भी हम से कोई भय न होना चाहिये। फिर इनकी जन-संख्या ७ करोड़ से अधिक है, इनके पास रियासतें भी हैं। इनमें से बहुत से अच्छे पढ़े-लिखे धनपति हैं और सब से बड़ी बात यह है कि वे हिन्दुओं से कहीं भली प्रकार संगठित हैं फिर उन्हें विशेष-अधिकारों और रक्षा-आदि के ढोंगों से अर्थ क्या ?

'अकोला-अधिवेशन' पर कई प्रस्ताव बड़े महत्वपूर्ण पास हुए, एक प्रस्ताव १९३१ की जन-गणना के सम्बन्ध में था, जिसमें कॉंग्रेस के जन-संख्या का बहिष्कार करने का प्रभाव विशेषकर हिन्दुओं पर पड़ा था। इस नीति का परिणाम यह निकला कि हिन्दुओं ने तो जन-संख्या में कोई सहयोग न दिया। और इनकी संख्या वास्तविक संख्या से और भी घटाकर लिखी गई। कई स्थानों पर तो संख्या लिखनेवाले गये तक नहीं, और हमारे भोले-भाले हिन्दू इस बात से बहुत प्रसन्न हुए कि हमने सरकार को खूब धोखा दिया है। दूसरी ओर मुसलमान सदा की नाईं हिन्दुओं से अधिक चालाक व चतुर निकले उन्होंने अपनी अनेकों अंजुमन बनाकर और जन-संख्या

के कार्यालयों में घुसकर अपना नम्बर बढ़ा चढ़ा कर लिखवाया, और जिस घर में दस आदमी थे उसमें २० या २५ लिखवाना उनके लिये साधारण सी बात थी। मस्जिदे खाली पड़ी रहतीं थीं, इनमें थी मुसल्मानों की जन-संख्या २००, ४०० या इससे भी अधिक लिखी गई। इसका परिणाम यह निकला कि मुसल्मानों की जन-संख्या तो अपनी वास्तविक संख्या से अधिक दर्ज हुई, और इसके विपरीत हिन्दू कम पर ही प्रसन्न थे। मुसलमान, इसलिये कि वह अपनी जन-संख्या के कारण अधिक अधिकार प्राप्त करेंगे, और हिन्दू इसलिये कि उन्होंने सरकार को कैसा अच्छा धोखा दिया। जब अगले विधान में इनको इनकी संख्या के अनुसार असेम्बली व कौंसिल में प्रतिनिधित्व न मिला, और मुसलमानों की लिखी गई संख्या से भी अधिक मिला तो हिन्दू पछताये, लेकिन क्या हो सकता था। हिन्दू तो स्वयं अपने शत्रु हैं। यह तो रही हिन्दुओं की अपनी मूर्खता; दूसरी ओर सरकार ने जन-संख्या के नाते हिन्दुओं को कई छोटे छोटे सम्प्रदायों में दिखाकर उनको प्रथक कर दिया, और हिन्दुओं की जन-संख्या कम से कम दिखाने का पूरा-पूरा प्रयत्न किया। 'महासभा' ने अपने प्रस्ताव में सरकार की इस नई नीति की निन्दा की, और अनुरोध किया कि जिन सम्प्रदायों को उनसे प्रथक लिखा गया है, भविष्य में उन्हें हिन्दू ही लिखा जाया करे। यह

प्रस्ताव 'गोलमेज-कॉफ्रेंस' में भी या और सरकार भेजा गया से उचित प्रतिनिधित्व की माँग की गई थी 'हिन्दू-महासभा' ने अपना ध्येय, पूर्ण-स्वराज्य निश्चित किया, परन्तु जब इसकी प्राप्ति न हुई तो हिन्दू-हितों की रक्षा के उचित-प्रबन्ध-की-माँग की। एक प्रस्ताव सिन्ध को भी बम्बई से प्रथक कर देने के विरुद्ध था, और इस विषय में कांग्रेस की 'यूनिटी-कांफ्रेंस' (Unity Conference) के निर्णय का विरोध किया गया था कि इसमें भी सिंध के हिन्दुओं से बिना बूझे ही सिंध को बम्बई से प्रथक कर देने का प्रयत्न किया गया था ।

'महासभा' का १४वाँ अधिवेशन दिल्ली (१९३२)

'हिन्दू-महासभा' का १४वाँ वार्षिक-अधिवेशन सितम्बर मास (१९३२) में दिल्ली में हुआ। २६ अगस्त १९३२ को ब्रिटिश प्रधान-मंत्री मिस्टर मेक्डॉनेल्ड ने हिन्दू-मुसलमानों के भागों को बन्दर-बाँट कर एक निर्णय प्रकाशित किया जो कि 'साम्प्रदायिक-निर्णय' (Communal Award) के नाम से प्रसिद्ध है। दूसरी चाल यह चली गई कि हिन्दुओं में दलित कहलाने वाले भाईयों को हिन्दुओं से अलग कर दिया गया। समस्त देश में इस न्याय के विरुद्ध लहर दौड़ गई। सरकार ने यह भी घोषणा की कि यह निर्णय-तब तक लागू रहेगा, जब तक सब सम्प्रदाय आपस में मिलकर कोई अन्य समझौता न कर लेंगे। दलित

कहलाने वाले भाईयों को हिन्दू-जाति में ही रखे जाने के लिये महात्मा गाँधी ने (आमरण उपवास) द्वारा इसकी कुछ शर्तें बदलवा लीं, पर यह सौदा हिन्दुओं को बड़ा महँगा पड़ा। जिन पर इसका विशेष प्रभाव पड़ा जिसका उल्लेख आगे विस्तार पूर्वक होगा। महासभा के १४वें अधिवेशन के प्रधान पूना के प्रसिद्ध हिन्दू-नेता श्री केलकरजी थे। आप एक बार १९२८ में भी सभापति पद ग्रहण कर चुके थे। इस अवसर पर श्री केल्कर जी का प्रधान-मन्त्री के साम्प्रदायिक-निर्णय के विषय में निम्न भाषण था—

"सबसे प्रथम मैं यह बता देना चाहता हूँ कि यह 'साम्प्रदायिक-निर्णय' हमारी किसी भी स्वीकृति-पंच का निर्णय नहीं है, यह तो केवल ब्रिटिश-सरकार का अपना मनचाहा-निर्णय है, और इसकी सारी जिम्मेवारी सरकार के सिर पर पड़ती है। सरकार ने तो 'हिन्दू-महासभा' का कोई प्रतिनिधि ही इस बार 'गोलमेज़-कॉन्फ्रेंस' में नहीं बुलाया था, इसलिये 'हिन्दू महासभा' को पूर्ण अधिकार है कि वह इसका विरोध करे। सरकार आरम्भ से ही मुसल्मानों को साथ लेकर ऐसी चालें चल रही है कि कोई समझौता ही न हो सके। सरकार ने जान बूझकर ऐसे आदमी 'गोलमेंज-कॉन्फ्रेंस' के लिये चुने थे जो आपस में कोई निर्णय न कर सकें, ताकि सरकार संसार को बता सके कि हिन्दुस्तानी आपस में फूट के कारण स्वराज्य लेने

के योग्य नहीं। यदि सरकार सच्चे हृदय से न्याय कराना चाहती तो इसे 'लीग आफ नेशनूज़' के सिद्धान्तों पर निर्णय करना था। यह निर्णय देकर सरकार ने साम्प्रदायिक-प्रश्न को और भी जटिल बना दिया है। इसमें तो मुसल्मानों के साथ साथ ऐंग्लो-इंडियन, ईसाई, दलित-जातियों आदि को भी प्रथक कर हिन्दुस्थानी जाति का विभाजन कर दिया है। बंगाल और पंजाब में हिन्दुओं की अल्प-संख्या को सदैव के लिये मुसल्मानों की दया पर छोड़ दिया है। ऐसा प्रतीत होता है कि सरकार जान बूझकर हिन्दुओं को कुचलना चाहती है क्योंकि स्वराज्य आदि राजनैतिक आन्दोलनों में विशेष भाग लेने वाले हिन्दू ही थे सरकार ने भारतीयों को कोई ठोस अधिकार भी नहीं दिये, केवल इनके टुकड़े टुकड़े कर उनको आपस में लड़ाना ही इनका अभिप्राय प्रतीत होता है।' गाँधीजी के पूना वाले आमरण के सम्बन्ध में श्री केल्करजी कहते हैं "सच पूछो तो मैं यह कहूँगा कि राजनैतिक मामलों में ऐसी चाल ठीक नहीं कही जा सकती, चाहे उसका अभिप्राय अच्छा ही हो पर परिणाम अच्छा न निकलेगा। यह तरीक़ा हिन्दुओं को नीचा दिखायेगा। दलितों के प्रतिनिधि गाँधीजी भी इस शोचनीय दशा पर दयाकर चाहे कुछ करें पर उनको इससे जो रियायतें मिलेंगी इनका प्रयोग हिन्दुओं के विरुद्ध

ही करेंगे ।" हिन्दू-मुसल्मानों के बीच समझौता कराने की बातचीत पर प्रधानजी ने कहा, "हमें यह मानना पड़ता है कि मुसल्मान हर अवसर पर हिन्दुओं को इस क्षेत्र में हराते रहे हैं और उनकी जीत का कारण केवल सरकार की उनके साथ रियायत व पक्षपात है। जब कभी किसी समझौते की बातचीत हिन्दू-मुसल्मानों में हुई तो हिन्दुओं को हारना ही पड़ा, और मुसल्मान सदैव लाभ उठाते रहे। हिन्दू-मुसल्मानों के साथ इस लिये रियायत करते रहे कि वे दोनों मिलकर स्वराज्य लें, और मुसल्मान यह समझते रहे कि हिन्दू निर्बल हैं इसलिये वह हमसे डरकर हमें रियायतें देते हैं। अब मुसल्मान कॉंग्रेस को एक हिन्दू-संस्था और अपनी शत्रु समझने लगे। अधिकार-बलिदान करते समय तो हिन्दू आगे होते हैं और लाभ उठाते हैं मुसल्मान ।"

साम्प्रदायिक-निर्णय (Communal Award) के विरुद्ध 'महासभा' ने एक बड़ा लम्बा-चौड़ा प्रस्ताव पास किया जो कुछ अंशों में इस प्रकार है :—

(१) 'अखिल-भारतीय-हिन्दू महासभा' का यह अधिवेशन सरकार-द्वारा घोषित किये निर्णय का पूर्ण विरोध करता है, क्योंकि इसके द्वारा प्रथक साम्प्रदायिक-निर्वाचन होता है जो आपस में फूट उत्पन्न कर देश को स्व-शासन (Responsible Govt) से कोसों दूर ले जायेगा। यह

निर्णय प्रधान-मन्त्री की अपनी घोषणा (१९ फरवरी १९३१) हिन्दू-जाति सिखों अथवा बहुत से मुसल्मानों तथा ईसाईयों की इच्छा के विरुद्ध है। पंजाब व बंगाल के हिन्दू अल्प-संख्या में होते हुए भी इसके विरुद्ध हैं। यह निर्णय केवल मुसल्मान अल्प-संख्या के अधिकार की रक्षा करता है और हिन्दू-हितों की हत्या। इस निर्णय के द्वारा मुसल्मान-अल्पसंख्या को बहुत अधिक अधिकार दिये गये हैं और बंगाल व पंजाब में हिन्दू-अल्पसंख्या के अधिकार और भी कम कर दिये हैं। मुसल्मानों की-भाँति इसमें सिख-अल्पसंख्या को कोई विशेष अधिकार नहीं दिया गया। इसने यूरोपियन व ऐंग्लो-इंडियन को इतने अधिकार दिये हैं जो उनकी जन-संख्या से कई गुने अधिक हैं। इसने 'लखनऊ-पेक्ट' को भी मात कर दिया जिसे मुसल्मान आदि सब ने मान लिया और 'साइमन कमीशन' ने भी जिसको स्वीकार कर लिया था।

(२) यह निर्णय हमारे किसी भी चुने हुए पंच का नहीं है जो हम पर लागू हो, यह तो ब्रिटिश-सरकार का अपना निर्णय है।

(३) यह कहना कि हिन्दू-मुसल्मानों में साम्प्रदायिक-एकता हो नहीं सकती सर्वथा निर्मूल है, क्योंकि ब्रिटिश-सरकार ने तो इसे स्वयं बढ़ाया है। जब 'साइमन कमीशन' ने इसका निर्णय कर दिया था तो सरकार को अपना

डिस्पेच (Dispatch) निकालकर मुसल्मानों की अधिक माँगे स्वीकार करने की क्या आवश्यकता थी ? फिर 'गोल-मेज़-कांफ्रेंस' में कोई भी राष्ट्रीयवादी-मुसल्मान नहीं लिया गया था, चुनकर सब कट्टरवादी भर लिये गये थे।

(४) हिन्दू-मुसल्मानों के साम्प्रदायिक-प्रश्नों का निर्णय तो उन सिद्धान्तों व नियमों से होना चाहिये जो 'लीग आफ नेशन्ज़' ने यूरोप के अन्य देशों के लिये बनाये हैं।

(५) यदि सरकार साम्प्रदायिक-निर्णय नहीं बदलती तो महासभा समस्त हिन्दुओं से अनुरोध करती है कि वह अँग्रेज व मुस्लिम की इस गाँठ-जोड़ का विरोध करने के लिये कौंसिलों के अन्दर व बाहर, सभी स्थानों पर तैयार हो जाये और कार्यकारिणी-समिति को हिदायत की कि वह इस प्रस्ताव को कार्य-रूप में लाने का कोई प्रोग्राम बनाये।"

उन दिनों हैदराबाद, भूपाल, भावलपुर, रामपुर-आदि मुसल्मान रियासतों के हिन्दुओं के कई पत्र मिले कि वहाँ की हिन्दू-प्रजा के साथ न्याय नहीं होता और हिन्दू-अधिकारों को दिन दहाड़े कुचला जाता है। हिन्दुओं की इस दशा का निरीक्षण करने के लिये 'हिन्दू-महासभा' ने कार्यकारिणी-समिति को अधिकार दिया कि वह एक जाँच कमेटी-द्वारा इन सब मामलों की जाँच करवाये और यदि वास्तव में हिन्दुओं के साथ जहाँ

अन्याय हो रहा है उसके हटाने के लिये आवाज़ भी उठाये।

यह सरकारी साम्प्रदायिक-निर्णय एक ऐसा विष का प्याला था कि उसको देखकर सभी डर गये। काँग्रेस के नेताओं ने इसके विरुद्ध बहुत कटुशब्द प्रयोग किये। गाँधीजी भी चुप न रह सके पर वह मुसल्मानों को क्रुद्ध भी न कर सकते थे, किन्तु हरिजनों की प्रथक् करने की समस्या पर आमरण-व्रत भी रख लिया और 'पूना पैक्ट' कर बंगाल, पंजाब आदि के हिन्दुओं का गला सदा के लिये घोट दिया। पंडित जवाहरलाल नेहरू ने कहा "कि यह निर्णय राष्ट्रवाद की जड़ों को खोदने वाला है और हिन्दू-मुसल्मानों में सदैव के लिये फूट डालकर ब्रिटिश साम्राज्य को सदा के लिये शक्तिशाली बनाने वाला है। डाक्टर अंसारी जैसे मुसल्मानों ने भी इसे विष का प्याला बताया। पर अधिक मुसल्मानों ने इसमें अपना लाभ देखा; क्योंकि उनको अपनी जन-संख्या से कहीं अधिक अधिकार मिले थे। मुसल्मानों ने तो विशेश प्रयत्न-द्वारा हिन्दुओं से विश्वासघात कर और सरकार से गुपचुप मिलकर इसे प्राप्त किया था, वह इसे क्यों न अपनाते ? जब मुसल्मानों ने इसे अपना लिया, तो अब कॉङ्ग्रेस इसका विरोध कैसे कर सकती थी। अखिर कॉङ्ग्रेस ने 'अस्वीकार-स्वीकार' वाली पालिसी की घोषणा करदी।

साम्प्रदायिक-निर्णय (सन् १७-१८-१६३२)

इस सरकारी-निर्णय के सम्बन्ध में हम पहले भी कुछ लिख आए हैं। इसका प्रभाव समस्त देश की जातियों पर पड़ा। मुसल्मानों को बड़ा आश्रय मिला जिसके द्वारा वे सरकार की सहायता और कॉङ्ग्रेस की उदासीनता के कारण अब पाकिस्तान के महल में प्रवेश कर रहे हैं। न-मालूम कॉङ्ग्रेसी नेताओं की उदासीनता और मुसल्मानों को प्रसन्न करने की नीति हमें कहाँ-से-कहाँ ले जायेगी। कॉङ्ग्रेसी नेता अब केवल उदासीन ही नहीं इनमें से अधिकतर खुल्लम-खुल्ला मुसल्मानों को पाकिस्तान के महल में बसाना चाहते हैं, और शेष धीरे-धीरे उनके दिखाये मार्ग पर चल रहे हैं। उनकी अपनी मन-मानी आज नहीं तो कल उनको सत्य मार्ग-पर ला देगी। हमें देखना-यह है कि इस काल में हिन्दुओं की रक्षा के लिये 'हिन्दू-महासभा' ने क्या किया और आगे वह क्या करना चाहती है।

ऊपर लिखा जा चुका है कि इस साम्प्रदायिक-निर्णय के पश्चात् शीघ्र ही 'हिन्दू-महासभा' का अधिवेशन दिल्ली में हुआ, उसमें जो प्रस्ताव पास हुआ वह भी संक्षिप्त दिया गया है। 'हिन्दू-महासभा' के नेताओं ने इस सम्बन्ध में और जो-जो कार्यवाहियाँ की हैं वह भी हम लिख देना चाहते हैं।

उस समय डॉक्टर मुंजे 'हिन्दू सभा' के प्रधान-कार्यकर्त्ता थे, उन्होंने इस निर्णय के विरुद्ध बड़ा आन्दोलन खड़ा किया, और कुछ हिन्दू नेताओं के साथ लन्दन इस लिये गये कि वहाँ 'जौईण्ट पार्लियामेण्ट्री सिलेक्ट कमेटी' के सामने 'हिन्दू-महासभा' के विचार इस निर्णय के सम्बन्ध में रखे। उन्होंने महासभा की ओर से एक बड़ा प्रभावशाली वक्तव्य इस पार्लियामेण्ट्री कमेटी के सामने पेश किया, जिसमें इस निर्णय को भारतीय राष्ट्रवाद तथा हिन्दू-मुसल्मान-आदि के हितों के लिये हानिकारक बताया। विशेषकर पञ्जाब व बङ्गाल के हिन्दुओं को तो इसने सदा के लिए मुसल्मानों का दास बना दिया था।

परन्तु इस विष के प्याले के टुकड़े करनेवाले और उसकी हर प्रकार से समस्त देश के हितों के विरुद्ध सिद्ध करनेवाले हिन्दू नेता श्री भाई परमानन्द हैं।

श्री भाई परमानन्दजी

भाई परमानन्दजी हिन्दुओं के एक योग्य इतिहासकार हैं, और उन्होंने हिन्दू-इतिहास पर कितनी ही पुस्तकें लिखी हैं। आपकी लेखन-शैली बिल्कुल नवीन और हिन्दू-दृष्टिकोण की है। आप हमारे विदेशी-विजेताओं के गीत नहीं गाते वरन् हिन्दू-संस्कृति तथा सभ्यता का ऊँचा आदर्श, हिन्दुओं के पतन का कारण और रक्षा के उपाय बताते हैं। पहले आप डी० ए० वी० कालेज लाहौर के जीवन-सदस्य

थे। उन्होंने एक पुस्तक 'हिन्दुस्थान का इतिहास' लिखी जो उन की समस्त विपदाओं का कारण कही जा सकती है। सरकार ने पुस्तक तो जब्त कर ही ली लेकिन साथ ही साथ भाई जी पर सदैव सन्देह की दृष्टि हो गई। कई मुकद्दमे चलाये गये और भाईजी को फाँसी तक का दण्ड दिया; फिर फाँसी का दण्ड आजन्म काले-पानी में बदला गया और भाईजी को अण्डमान द्वीप भेजा गया। ६ साल निर्वासन भुगत कर १९२० में भाईजी रिहा हुए और जब वह हिन्दुस्तान आये तो कितने ही विद्यार्थी स्कूल तथा कालेज छोड़कर महात्मा गाँधी के असहयोग आँदोलन में कूद पड़े थे जो बड़े जोरों पर था। उसी समय लाहौर में काँग्रेस की ओर से एक राष्ट्रीय-महाविद्यालव खोला गया। भाईजी उसके चाँसलर बने और नवयुवकों में अपने विचारों का प्रचार करते रहे। कुछ समय के पश्चात खिलाफत-आन्दोलन के कारण मुसलमान संगठित हो गये और हिन्दुओं के साथ विश्वासघात किया। स्थान स्थान पर दंगे हुए, पुराने-साथी खिलाफत-आन्दोलन में बिछुड़ गये। इन सब घटनाओं का भाईजी पर बहुत गहरा प्रभाव पड़ा, आपने तुरन्त भाँप लिया कि हिन्दुओं के रोग का निदान संगठन है, और वह तन-मन से हिन्दू-संगठन की तरंग में कूद पड़े। उस समय से आज तक भाईजी ने जो जो सेवायें हिन्दू-जगत के लिये की हैं वे अनमोल हैं और स्वर्णाक्षरों

में लिखे जाने योग्य हैं। काँग्रेसी-हिन्दुओं ने भाई जी की हँसी उड़ाई, गालियाँ दीं, जनता के समक्ष मिथ्या-रूप में प्रकट किया, पर भाईजी अपने मार्ग से टस से मस न हुए। भाईजी को न तो मान की चाह थी, न सम्मान की चिंता है और न रुपये-पैसे का ही लालच है। भाईजी का जीवन है साधारण ऋषियों का सा जीवन। भाईजी ने सिख, मरहटा, राजपूत आदि इतिहास 'बन्दा-बैरागी' का जीवन चरित्र, और तथा कई पुस्तकें लिखकर हिन्दू-जनता की बड़ी सेवायें की हैं आज भी आपके तीन पत्र (१) लाहौर का 'दैनिक हिन्दू' (उर्दू)। (२) दिल्ली का साप्ताहिक 'हिन्दू आउटलुक (अंग्रेजी) (३) दिल्ली का साप्ताहिक 'हिन्दू', (हिन्दी) हिन्दू-जनता की सेवा कर रहे हैं, जिनमें भाईजी के लेख सदा पढ़ने योग्य होते हैं।

हम ऊपर लिख आये हैं कि हिन्दू-नेताओं ने विशेष कर भाईजी ने 'साम्प्रदायिक-निर्णय' के विरुद्ध क्या नहीं किया। भाईजी ने इस विषभरे-प्याले के विरुद्ध एक प्रकार का धर्म-युद्ध आरम्भ कर दिया 'सेन्ट्रल असेम्बली' में भाईजी अकेले हिन्दू मेम्बर थे, जिन्होने इसके विरुद्ध आवाज उठाई। १६३३, १६३६ में उन्होंने असेम्बली में दो बड़े महत्त्वपूर्ण व्याख्यान दिये जिसमें उहोंन्ने बताया कि "इस निर्णय से हिन्दुओं पर इतना अन्याय हुआ है, जितना कि पहले कभी न हुआ

था। मैं तो यहाँ तक कहूँगा कि सरकार ने हिन्दुओं को उनके सत्याग्रह-आदि आन्दोलनों में विशेष भाग लेने का दण्ड दिया है। फिर सब हिन्दू भी तो इन आन्दोलनों में सम्मिलित नहीं हुए थे। कुछ मनुष्यों के अपराध के कारण यदि यह सारी जाति का अपराध कहा जाता है, तो निस्सन्देह इसका परिणाम अपावन होगा, जिसका इतिहास साक्षी है। सन् १९३३ में भाईजी ने 'सैण्ट्रल-असेम्बली' के हिन्दू, सिक्ख तथा पारसी मेम्बरों की एक सभा कराई और उनके हस्ताक्षरों से एक वक्तव्य इस निर्णय के विरुद्ध विलायत 'पार्लियामेण्ट्री-कमेटी' को भिजवाया। भाईजी स्वयं भी लन्दन गए और इस निर्णय को रद्द कराने का जो प्रयत्न उनसे हो सका उन्होंने किया। उन्होंने एक बड़ा लम्बा-चौड़ा प्रभावशाली वक्तव्य कमेटी के सामने पेश किया, जिसमें दिखाया कि 'साइमन-कमीशन' के पश्चात् कौंसिलों तथा असेम्बलियों में हिन्दुओं का प्रतिनिधित्व धीरे-धीरे कितना कम होगया है। कमीशन ने 'फेडरल-असेम्बली' की कुल २६० सीटें नियत की थीं; इनमें से हिन्दुओं को १५० सीटें मिलीं, ६० मुसल्मानों को और २६ अन्य जातियों को। इस प्रकार हिन्दुओं को ६० प्रतिशत सीटें मिलीं। यद्यपि इनकी संख्या के अनुपात से इन्हें ६६ प्रतिशत मिलनी चाहियें थीं। भारतीय-सरकार ने हिन्दुओं को १३६ और मुसल्मानों को ६५ की सिफारिश

की, परन्तु 'साम्प्रदायिक-निर्णय' के अनुसार हिन्दुओं को केवल १०५, मुसल्मानों को ८२, और शेष अन्य जातियों को मिली। इसके अनुसार हिन्दुओं की असेम्बली मे ४२ प्रतिशत सीटें हुई, यद्यपि उनकी जन-संख्या ७६ प्रतिशत है। ऐसा अन्याय कभी नहीं हुआ।

रायबहादुर मेहरचन्द खन्ना के यत्नों से सन् १९३४ में पेशावर में सीमाप्रान्त 'हिन्दू-सभा' की ओर से एक कान्फ्रेन्स हुई, जिसमें महामना मालवीयजी, भाई परमानन्दजी-आदि नेता उपस्थित थे। बहुत समय तक बहस होती रही और सब नेताओं ने अपना-अपना दृष्टि-कोण बताया। अक्तूबर सन् १९३४ में बम्बई में 'साम्प्र-दायिक-निर्णय' के विरुद्ध एक 'अखिल-भारतीय-निर्णय-विरोधक-कान्फ्रेन्स' की गई, इसके सभापति 'हिन्दू-महासभा' के भूतपूर्व-प्रधान श्री० रामानन्द चटर्जी थे। सन् १९३६ में एक कान्फ्रेन्स दिल्ली में की गई, जिसके प्रधान प्रयाग के प्रसिद्ध-पत्र 'लीडर' के सम्पादक (स्वर्गीय) सर सी० वाई० चिन्तामणि थे। इन दोनों विद्वान् प्रधानों का भाषण पढ़ने के योग्य हैं, इनमें हिन्दुओं पर सरकार तथा मुसल्मानों के किये गये अन्यायों का भली प्रकार वर्णन् है। इसी प्रकार पञ्जाब-आदि प्रान्तों में कान्फ्रेन्स कर इनके प्रस्ताव सरकार के पास भिजवा दिये गये। पञ्जाब में हिन्दू, सिक्ख, पारसी, ईसाई-आदि काम करने लगे।

'हिन्दू-सभा' के नेता अब भी उनसे जो कुछ बन पड़ता यत्न कर रहे हैं, परन्तु वह क्या कर सकते हैं, सरकार तो भेद-नीति प्रयोग में लाकर अपना शासन शक्तिशाली बनाना चाहती है। मुसल्मान अपना लाभ सरकार के साथ मेल करने में देखते हैं, और थोड़े से लोभ से वे ख़रीदे भी जा सकते हैं। हिन्दुओं की अधिक जन-संख्या काँग्रेस के साथ है और काँग्रेस ने हर मूल्य पर मुसल्मानों को प्रसन्न करने की नीति अपनाई। काँग्रेसी नेताओं का सिद्धान्त है कि बिना हिन्दू-मुस्लिम-एकता के स्वराज्य नहीं मिल सकता। और इसी अभिप्राय से उन्होंने इस निर्णय को विषका प्याला मानते हुए भी स्वीकार व अस्वीकार की नीति की घोषणा की, जिसका परिणाम यह हुआ कि मुसल्मान व सरकार इस पर खुले तौर से चले। वास्तव में कॉंग्रेस ने इस हिन्दू-घातक-निर्णय को स्वीकार कर लिया है और इसके नेता इसको मानते भी हैं।

'महासभा' का १५ वॉ अधिवेशन अजमेर १९३३

इस समय डॉक्टर मुंजे के साथ-साथ भाई परमानन्द जी भी 'हिन्दू-महासभा' की बड़ी सेवा कर रहे थे। लाहोर से अपने पत्र 'हिन्दू' द्वारा हिन्दू-सङ्गठन का प्रचार करना उन्होंने अपना धर्म मान रखा था। इस पवित्र उद्देश की पूर्ति के लिये कई पुस्तकें भी लिखीं। उन्होंने हिन्दुओं का इतिहास हिन्दू-दृष्टिकोण से लिखना आरम्भ किया।

भागलपुर का मोर्चा

'हिन्दू-महासभा' के वर्तमान प्रधान-मन्त्री राजा महेश्वरदयालजी सेठ अपने कुछ साथियों के साथ

सत्याग्रहियों की अधिक संख्या के कारण जेल-अधिकारियों को तम्बू लगाने पड़े

अपने साथियों-सहित एक संन्यासी सत्याग्रही

भागलपुर का मोर्चा
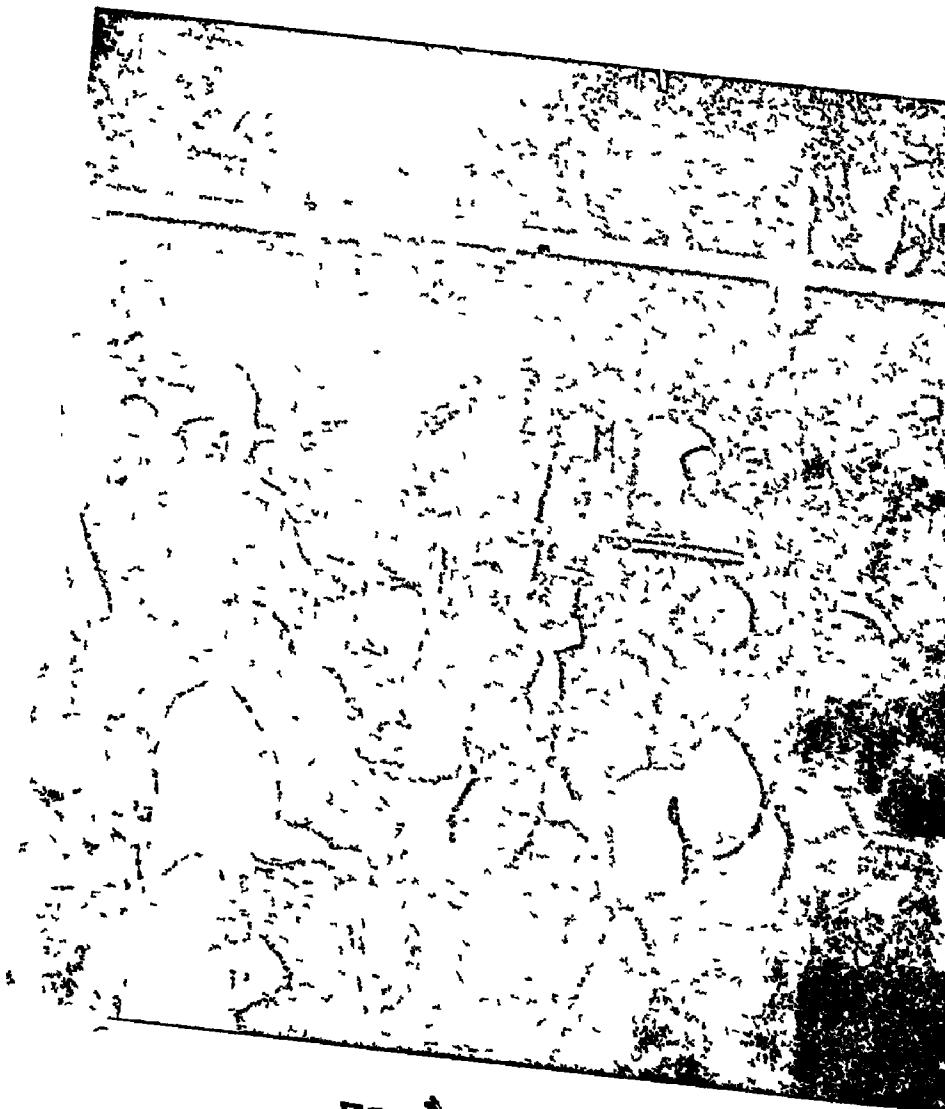
एक और सभा

(डॉ० मुञ्जे की अध्यक्षता मे जेल के भीतर एक और सभा का दृश्य)

राजपूतों, मरहठों तथा सिखों का इतिहास, 'बन्दा बैरागी', 'हिन्दू-सङ्गठन', 'स्वराज्य-सङ्गठन', 'आप बीती' आदि कई पुस्तके लिखकर हिन्दू-जाति की ठोस सेवा की। सरकार के साम्प्रदायिक-निर्णय का इन्होंने भली प्रकार अध्ययन किया और इसमें जो-जो हिन्दू-हितों के घातक बातें थीं उनका घोर विरोध कर हिन्दू जाति के नेत्र खोले। लन्दन जाकर 'पार्लियामेंट्री कमेटी' के सामने हिन्दू-दृष्टिकोण पेश किया। डाक्टर मुँजे अभी विलायत से वापस आये थे कि अखिल-भारतीय 'हिन्दू-महासभा' का पन्द्रहवाँ अधिवेशन अक्टूबर १९३३ में अजमेर में हुआ, प्रधान-पद के लिये श्री भाईजी चुने गये। इस अधिवेशन के साथ ही 'हिन्दू-महासभा' के इतिहास मे 'मुँजे-युग' समाप्त होकर 'परमानन्द-युग' आरम्भ हुआ। डॉक्टर मुँजे १९२७ में प्रधान चुने गये थे इसके पश्चात् लगातार प्रधान-कार्यकर्त्ता बनते रहे, बागडोर उनके हाथ में रही। १९३३ से 'महासभा' की बागडोर भाईजी ने सँभाली और 'परमानन्द-यु।' आरम्भ किया। यह युग १९३६–३७ तक चलता रहा, और इस युग में भाईजी कभी प्रधान, कभी प्रधान कार्यकर्ता, कभी उप-प्रधान बनकर सभा के कार्य को चलाते रहे। हाँ, दिसम्बर १९३७ में अवश्य महामना मालवीयजी प्रधान चुने गये थे।

भाईजी का भाषण (अजमेर १९३३)

सभापति के आसन से भाईजी ने एक बड़ा दर्दनाक

तथा सार-गर्भित भाषण दिया, जिसके कुछ अंश नीचे दिये जाते हैं। साम्प्रदायिक-निर्णय का कारण भाईजी ने इस प्रकार बताया 'ब्रिटिश-सरकार तो १६०६ से खुल्लम-खुल्ला मुसल्मानों की पीठ-ठोंक ही रही थी काँग्रेस ने 'हिन्दू-मुस्लिम-एकता के बिना स्वराज्य असम्भव' की रट लगा कर मुसल्मानों को सिर पर चढ़ाया। 'लखनऊ ऐक्ट' (१६१६) के द्वारा उनका प्रथक् प्रतिनिधित्व स्वीकार ही नहीं किया बल्कि उनको विशेष अधिकार भी दिये, और फिर खिला-फत-आन्दोलन द्वारा उनको शक्ति-शाली भी बना दिया'। वास्तविक-अधिकार तो सरकार के पास हैं उन्होंने हिन्दुओं का गला काट कर उनके भाग की घूस मुसल्मानों को देकर अपने साथ मिला लिया। इस समय सरकार और मुसल्मानों में खुल्लम-खुल्ला गठ-बन्धन है और ऐसी अवस्था में हिन्दू-मुस्लिम-एकता असम्भव-सी बात है, और न कोई सत्याग्रह का ही प्रभाव हो सकता है। भाईजी ने ब्रिटिश-सरकार को एक चेतावनी इन शब्दों में दी 'ब्रिटिश-राज्य के अन्दर हिन्दू यह अवस्था कभी स्वीकार नहीं करेंगे कि वे मुसल्मानों के आधीन रहें या उनकी करुणा पर रहें, मैं सरकार को चेता-वनी देता हूँ कि यदि हिन्दुओं की मान-मर्यादा सुरक्षित न रही और उनके साथ अन्याय किया गया और उन्होंने निराश होकर ब्रिटिश-साम्राज्यवाद के विरुद्ध कुछ किया तो वे दोष के भागी न होंगे।

काँग्रेस के सम्बन्ध में भाईजी कहते हैं "बड़े आश्चर्य की बात है कि काँग्रेस, जो कि भारत की सबसे बड़ी राजनैतिक-संस्था समझी जाती है, उसने जान बूझकर ऐसी नीति अपनाई है कि वह 'साम्प्रदायिक-निर्णय' का बिल्कुल विरोध नहीं करती। काँग्रेस के हिन्दू-नेता इसका विरोध कैसे कर सकते हैं, वे तो मुसलमानों से डरते हैं। कैसे खेद की बात है कि काँग्रेस के हिन्दू मौन बैठे सब कुछ देख रहे हैं और हिन्दू-जाति के जीवन-मरण का प्रश्न है॥" हिन्दुओं को इस घोर आपत्ति-काल में भाईजी यह शिक्षा देते हैं "इस साम्प्रदायिक-निर्णय के कारण अब हिन्दुओं को 'हिन्दू-महासभा' में आने के या हिन्दू-संगठन-कार्य करने के और कोई मार्ग नहीं रह जाता। मैं यह स्वीकार करता हूँ कि 'महासभा' का कार्य इतना अच्छा नहीं हो रहा जितना कि होना चाहिये पर इससे यह परिणाम नहीं निकल सकता कि 'महासभा' की आवश्यकता नहीं। 'महा-सभा' की दुर्बलता हिन्दुओं की अपनी दुर्बलता का परिणाम है। हमें अब हिन्दुओं में जाग्रति उत्पन्न करने का पूर्ण-उद्योग करना चाहिये, हमें कौंसिलों व असेम्बलियों पर अपना अधिकार करना चाहिये, अब हिन्दुओं को चाहिये कि केवल उन उम्मीदवारों ही को चुनें, जो यह वचन दें कि वह असेम्बलियों तथा कौंसिलों में जाकर 'साम्प्रदायिक-निर्णय' का विरोध करेंगे। यह हमारे कार्यक्रम का प्रथम-

वाक्य होना चाहिये और इस पर हमें दृढ़ता के साथ चलना चाहिये।" आगे चलकर भाईजी कहते हैं "हिंदुओं पर इससे पहले भी कई विपदायें आचुकी हैं, और उन्होंने उनका सामना किया और उन पर क़ाबू पाया है। एक समय भारत के इतिहास में ऐसा भी आया था कि विदेशियों ने समस्तभारत को पाँव तले रौंद डाला था। उस समय ब्राह्मणों ने आबू-पहाड़ पर एक बड़ा यज्ञ किया, अग्नि-कुल राजपूतों की उत्पत्ति की तथा हिन्दू-धर्म व देश की रक्षा की। सिक्ख-गुरूओं ने भी अपने शीश देकर ऐसे यज्ञ कराये, उनके बलिदान का यह फल हुआ कि पहले तो पठान हिन्दुओं के ऊपर बाज की नाईं झपटते थे पर अब सिख उनको लताड़ने लग गये और काबुल तथा सारा देश जीत लिया था। इस समय हिन्दु-नवयुवकों को क्षेत्र में आकर जाति की सेवा करनी चाहिये। जो इस यज्ञ में अपना बलिदान नहीं दे सकते वे भी जाति की सेवा कर सकते हैं—धनवान धन देकर, विद्वान विद्या दान देकर और शक्तिवान अपनी शक्ति द्वारा देश व जाति की सेवा कर सकते हैं।" अन्त में शुगरमिल के अपने १०० भागों का दान देकर घोषणा की कि वह दिल्ली में एक आश्रम खोलेंगे, जिसमें हिन्दू-कार्य-कर्ता रहकर हिन्दू-संगठन के प्रचार का कार्य कर सकें, और फिर जीवन-पर्यन्त इस पवित्र कार्य में लगे रहें। दिल्ली से इस समय भाईजी के दो साप्ताहिक-पत्र निकल

रहे हैं और इनके द्वारा 'हिन्दू-सङ्गठन' का कार्य होरहा है।

'अजमेर-अधिवेशन' में बड़े महत्वपूर्ण प्रस्ताव पास हुए। 'महासभा' के नेता ब्रिटिश सरकार से निराश होकर अब न्याय के लिये 'लीग ऑफ़ नेशनज़' की ओर देख रहे थे, अतएव साम्प्रदायिक-निर्णय पर एक बड़ा प्रस्ताव पास हुआ, जिसमें सरकार से 'लीग ऑफ़ नेशनज़' के सिद्धान्त के अनुसार साम्प्रदायिक प्रश्नों को सुलझाने की अपील की गई, जिसके सिद्धान्त ब्रिटेन तथा भारत दोनों के लिये मान्य हैं। एक प्र.ताव-द्वारा सिन्ध को बम्बई प्रान्त से प्रथक् करने के विरोध में पास किया गया। एक महत्व-पूर्ण प्रस्ताव जो अजमेर में पास हुआ वह यह था कि 'महासभा' के हिन्दू नेताओं ने बौद्ध-भिक्षुओं के साथ अपने सम्बन्ध बढ़ाने के लिए हिन्दू-विद्यालयों से अनुरोध किया कि वे विश्वविद्यालयों में चीनी, जापानी, स्यामी-आदि भाषायें सिखाने का प्रबन्ध करें, और चीन, जापान-आदि की सरकारों से प्रार्थना की कि वे अपने विश्वविद्यालयों में संस्कृत-आदि शिक्षा का प्रबन्ध करे। प्रधान 'हिन्दू-महासभा' को यह अधिकार दिया गया कि यदि उचित समझा जाय तो विदेशों में कोई डेपूटेशन भेजा करें। इसी प्रस्ताव में जर्मन-सरकार की प्रशंसा की गई कि वहाँ संस्कृत-विद्या के प्रचार का उचित प्रबन्ध है।

अजमेर-वार्षिक-अधिवेशन समाप्त होते ही भाईजी ने

सङ्गठन-कार्य बढ़ाने के लिये समस्त भारत का दौरा किया। यू० पी०, बिहार, बङ्गाल, बम्बई, महाराष्ट्र, मद्रास, सी०-पी०, गुजरात, सीमाप्रान्त-आदि का दौरा करते हुए प्रमुख नगरों में सभायें कीं और साम्प्रदायिक-निर्णय के विरुद्ध प्रस्ताव पास किये गये और सरकार के पास भेजे गये।

'हिन्दू महासभा' का सोलहवाँ वार्षिक-अधिवेशन कानपुर में अप्रैल १६३५ में हुआ। १६३४ में बुद्ध भगवान् को जन्म लिये पूरे २५०० वर्ष होगये थे। उनका जन्मोत्सव जापान-आदि विदेशों में बड़ी धूम-धाम से मनाया गया। बुद्ध भगवान् भारतीय थे और हिन्दू उनको अवतार मानते हैं। इसलिये 'महासभा' के नेताओं को चीन, जापान-आदि के साथ पुनर्सम्बन्ध स्थापित करने का एक बड़ा अच्छा अवसर प्राप्त हुआ। इस शुभ अवसर पर 'महासभा' के प्रतिनिधि जापान गये। भिक्षु उत्तम जो ब्रह्मा के एक प्रसिद्ध बौद्ध-भिक्षु थे, कानपुर-अधिवेशन के प्रधान चुने गये। समस्त भारतवर्ष तथा चीन और जापान ने भी इस चुनाव को बहुत पसन्द किया।

भिक्षु उत्तम का भाषण, कानपुर १६३५

सभापति का आसन ग्रहण करने के पश्चात् भिक्षु उत्तम ने कहा—मैंने तो आज तक 'हिन्दू-महासभा' की कोई सेवा ही नहीं की, इस पर भी आपने मेरा इतना मान किया कि मुझे इसका सभापति बनाया, इसका अर्थ यही निकल सकता

है कि आप ब्रह्मा के एक करोड़ बौद्धों को अपना भाई ही समझते हैं। आप इनसे प्यार करते हैं और इन्हें हिन्दू-जाति का एक अङ्ग समझते हैं। इससे यह भी ज्ञात होता है कि आप मेरी इन सेवाओं की भी प्रशंसा करते हैं जो मैंने ब्रह्मा के बौद्धों की की हैं' भिक्षुजी ने अपने भाषण में बड़े जोर के साथ कहा—जिन्होंने बुद्ध तथा हिन्दू दोनों धर्मों का भली भाँति अध्ययन किया था मैं बलपूर्वक सबसे कह सकता हूँ कि वे भगवान् बुद्धएक कट्टर हिन्दू थे। वे हिन्दू-धर्म के प्राण थे। बुद्धजी ने हिन्दू-धर्म को नवीन रङ्ग व जीवन देकर भारत के बाहर देशों तक में फैलाया था। ब्रह्मा को भारत से प्रथक् करने के सम्बन्ध में भिक्षु जी ने कहा, ब्रह्मा को भारत से पृथक् करना एक बड़ा पाप है इसका अर्थ आर्य-संस्कृति तथा हिन्दू-जाति के टुकड़े-टुकड़े करना है। अन्त में भिक्षुजी ने कॉग्रेस की मुसलमानों को प्रसन्न रखने और राष्ट्रीय-विरोध-नीति की घोर निन्दा की और इस बात को बिल्कुल मिथ्या बताया कि 'हिन्दू-महासभा' एक साम्प्रदायिक-संस्था है।

उस साल भी 'महासभा' ने साम्प्रदायिक-निर्णय के विरुद्ध एक प्रस्ताव पास किया और असेम्बली की कॉंग्रेस-पार्टी की इसलिये निन्दा की कि वहाँ जब इस निर्णय की स्वीकृति का प्रस्ताव पेश हुआ तो उसने इसके विरुद्ध क्यों वोट नहीं दी। कॉग्रेस-पार्टी ने ऐसा करके हिन्दुओं के साथ

विश्वासघात किया है और निर्णय के विरुद्ध जो वचन चुनाव के समय हिन्दुओं को दिया था उसको पूरा नहीं किया। एक प्रस्ताव-द्वारा महासभा ने जापान की जनता को इस लिये धन्यवाद दिया कि उन्होंने 'महासभा' के प्रतिनिधियों का बड़ा सत्कार किया, और ब्रिटिश-सरकार से अनुरोध किया कि वैशाखी पूर्णमासी को जो कि भगवान बुद्ध की ज्ञान-प्राप्ति तथा निर्वाण तिथि है भारत भर में छुट्टी घोषित की जाये।

'हिन्दू-महासभा'-भवन

कानपुर-अधिवेशन के पश्चात् भाई परमानन्द 'हिन्दू-महासभा' के प्रधान कार्यकर्त्ता चुने गये और वह दिन-रात इस कार्य को बढ़ाने की धुन में लग गये। १६२६ से 'हिन्दू-महासभा' का हेड-ऑफ़िस दिल्ली में तो आ गया था, पर 'महासभा' का कोई अपना भवन नहीं था। अखिल-भारतीय 'हिन्दू-महासभा' का कार्यालय किराये के एक छोटे से मकान में था। उस समय पण्डित देवरत्नजी शर्मा कार्यालय के प्रथम मन्त्री का स्वर्गवास हो चुका था और उनके स्थान पर कार्यालय का सारा कार्य लाला गणपतराय वकील बड़े उत्साह के साथ कर रहे थे। भाईजी ने अनुभव किया कि अखिल-भारतीय 'हिन्दू-महासभा' की शान इसमें नहीं कि इसका कार्यालय एक छोटे से किराये के मकान में रखा जाये, उसको तो अपना घर बनवाना चाहिये, जहाँ

कार्यालय का कार्य सरलता के साथ हो सकें और बाहर से आनेवाले पाहुने भी ठहराये जा सकें। उस समय नई दिल्ली बसाई जा रही थी, बड़े-बड़े मकान बन रहे थे, भाई जी ने सरकार को एक प्रार्थना पत्र इसी आशय का दिया। प्रार्थना-पत्र स्वीकृत हो गया और रीडिङ्ग रोड़ के पास 'हिन्दू-महासभा' को एक पहाड़ी पर काफ़ी बड़ा स्थान ९९ साल की 'लीज़' पर मिल गया। अब सभा-भवन निर्माण का प्रश्न था।

हम ऊपर लिख आये हैं कि 'हिन्दू-महासभा' के प्रधान कार्यकर्ता डॉक्टर मुंजे ने लाला लाजपतराय-स्मारक-फण्ड में ५००००) रुपये एकत्रित किये थे, और वह रुपया बैङ्क में 'महासभा' के नाम जमा था पर ५००००) से अखिल-भारतीय 'हिन्दू-महासभा' का एक अच्छा भवन न बन सकता था। हाँ, काम अवश्य आरम्भ कर दिया गया और महासभा का शायद सारा फ़ण्ड पहाड़ी साफ करने में ही व्यय हो गया। भवन का थोड़ा-सा निर्माण-कार्य ही हो पाया था कि ऐसा प्रतीत होने लगा कि अब कार्य आगे न चल सकेगा। इस समय भारत के प्रसिद्ध दानवीर सेठ जुगलकिशोरजी बिरला ने बड़ी उदारता दिखाई तथा भवन का सारा ख़र्च अपने ऊपर ले लिया और अपनी देख-भाल में भवन बनवाना आरम्भ किया। थोड़े ही समय में रीडिङ्ग रोड के किनारे एक 'विशाल-भवन' निर्मित हो गया जो इस

समय 'हिन्दू-महासभा'-भवन के नाम से प्रसिद्ध है और हिन्दू-ध्वजा को बड़े गौरव से उड़ा रहा है। कहते हैं कि सेठजी का इस कार्य में ६० या ६५ सहस्र रुपया ख़र्च हुआ। लाला नारायणदत्तजी ठेकेदार ने जो वर्षों से 'महासभा' के कोषाध्यक्ष थे 'महासभा'-भवन बनवाने में बड़ा उत्साह दिखाया।

दानवीर सेठ जुगलकिशोरजी बिरला

अब हम पाठकों के सामने एक ऐसे व्यक्ति के सम्बन्ध में कुछ लिखना चाहते हैं, जिनका नाम इस समय केवल भारत में ही नहीं, किन्तु दूर देशों में भी प्रसिद्ध है। भला कौन भारतीय होगा जो सुप्रसिद्ध दानवीर सेठ जुगलकिशोर जी का नाम न जानता हो। सेठजी राजा बलदेवप्रसादजी बिरला के ज्येष्ठ पुत्र हैं, और इस समय भारत की अनेक हिन्दू-संस्थायें इनके दान से चल रही हैं। सनातन-धर्म, आर्यसमाज, सिख, जैन, बुद्ध, दलित, शुद्धि-आदि अनेक संस्थायें इनके दान से धन प्राप्त कर हिन्दू-गौरव बढ़ा रही हैं। सेठजी ने भारत के कई नगरों में मन्दिर, धर्मशालायें, गुरुद्वारे, कुएँ-आदि बनवाकर हिन्दू-जगत को अमर-जीवन प्रदान किया है। सेठजी का दान लाखों तक पहुँचा हुआ है। उनके दान की तुलना करना असम्भव-सी बात है। दिल्ली में ही 'हिन्दू-महासभा'-भवन उनकी कीर्ति-ध्वजा लहरा रहा है, और इसके समीप ही 'श्री लक्ष्मीनारायण'-

मन्दिर अपना सिर आकाश में ऊँचा करके सेठजी के यश को चारों ओर फैला रहा है। मन्दिर का निर्माण-कार्य अभी चालू है। निकट ही एक बड़ी धर्मशाला भी बन गई है, और इसके साथ ही गीता-भवन, मन्दिर के पीछे नहरें, पार्क-आदि बन रहे हैं। बुद्ध भगवान का मन्दिर भी समीप ही सेठजी के यश का गान कर रहा है। इसी प्रकार हरिद्वार में ब्रह्म-कुण्ड के सामने सेठ बिरलाजी ने घण्टाघर बनवाया है सिखों के कई गुरुद्वारे भी बनवाये हैं। अपने जन्म-स्थान पिलानी में बिरला-कॉलेज तथा बिरला-स्कूल खोले हैं। दिल्ली में भी इनका एक हाईस्कूल है। कलकत्ता, बम्बई, बनारस, हरिद्वार-आदि में नित्य बिरलाजी के नाम पर दान होता है। विद्यार्थियों को पुस्तकें, भोजन, वस्त्र-आदि से सहायता की जाती है। सेठ घन-श्यामदासजी बिरला काँग्रेस की भी सहायता करते हैं। सुना है कि इनके दान से कई काँग्रेसी-नेताओं का पालन होता है। फिर इनका विशाल भवन "बिरला हाउस" तो सब के लिये खुला रहता है। बिरला-बन्धुओं के दान को कहाँ तक गिनावें। जिस ओर नेत्र उठा कर देखते हैं, बिरला के दान का प्रकाश दिखाई देता है। भारत में धनवान तो और भी होंगे पर इन-जैसा दानी मिलना कठिन है। सेठ जुगलकिशोरजी बिरला को 'हिन्दू-महासभा' के संगठन-कार्य तथा शुद्धि कितने पसन्द हैं वह हम सेठजी

के उन शब्दों में जो उन्होंने 'हिन्दू महासभा का इतिहास' नामी पुस्तक में लिखे हैं, कहते हैं "खेद है कि इस समय हमारे प्राचीन-गौरव की सब बातें भूतकाल की कहानी रह गई हैं। इस समय तो सर्व प्रकार से हिन्दू पराधीन, दीन-हीन बने हुए हैं। अज्ञानतावश अनेक प्रकार की कुरीति रूपी भीतरी शत्रु तथा अन्य बाहरी शत्रु इनको नष्ट कर रहे हैं। इन दोनों प्रकार के शत्रुओं से बचकर इनको जागृत व संगटित करके सर्व प्रकार से उन्नत करना ही 'हिन्दू-सभा' का उद्देश्य है।

"पिछले बीस वर्ष में 'हिन्दू-महासभा' के कारण हिन्दुओं में ज जागृति उत्पन्न हुई है तथा संगठन हुआ है वह प्रत्यक्ष है। काँग्रेस के कुछ राजनैतिक-नेताओं की हिन्दुत्व के प्रति अजब मनोवृत्ति के कारण हिन्दू-संगठन के कार्य में बाधा भी पहुँच रही है। बड़े-बड़े नेताओं का कार्यक्षेत्र केवल देश के नाम पर राजनीति के लिये हो रहा है वह किसी-किसी समय तो हिन्दुओं के साथ खुल्लम-खुल्ला अन्याय करने पर भी उतारू हो जाते हैं। ऐसी स्थिति में हिन्दू-संगठन के कार्य में शिथिलता आनी स्वाभाविक है। किसी भी जाति की उन्नति उसके मनुष्यों के प्रयत्नों पर ही निर्भर है। कितने ही लोग कहते हैं कि 'हिन्दू-सभा' ने क्या किया ? किन्तु वह यह नहीं सोचते कि उन्होंने 'हिन्दू-सभा' या हिन्दू-जाति के लिए क्या किया

और क्या प्रयत्न कर रहे हैं? जो भी हो यदि हिन्दू अपने प्राचीन - गौरव को प्राप्त करना चाहते हैं और वह फिर से अपनी तथा जगत की सच्ची उन्नति देखना चाहते हैं, तो अपनी प्राचीन - संस्कृति और आर्य-धर्म की रक्षा तथा उन्नति करते हुए आर्थिक तथा राजनैतिक-प्रश्नों को हल करना होगा। अपनी जन-संख्या की रक्षा तथा शारीरिक, आर्थिक, राजनैतिक उन्नति के लिए तो प्रत्येक हिन्दू को वैयक्तिक-रूप तथा सामूहिक-रूप से प्रयत्नशील रहना आवश्यक है- आर्य-जाति की प्राचीन-सभ्यता पर सेठजी लिखते हैं कि भारत की हिन्दू-जाति की सभ्यता इतनी पुरानी है कि बड़े-बड़े पाश्चात्य-विद्वान् भी निश्चयपूर्वक नहीं बता सकते। हमारे आध्यात्मिक आर्य-धर्म का दर्शन-सार उस अटल-सत्य को प्रकट करता है, जिसकी तुलना में भिन्न-मतावलम्बियों का धार्मिक साहित्य कुछ भी नहीं। आर्य-धर्म पूर्ण सत्य का उपदेश है। भारत की आर्यजाति ने इतने अवतारों, दार्शनिकों, तपस्वियों और राजनीतिज्ञों को उत्पन्न किया है, जिनकी गणना भी नहीं हो सकती। प्राचीन समय की बात जाने दीजिये, किन्तु गत कुछ शताब्दियों में भी भगवान् बुद्ध जैसा तपस्वी, अशोक-जैसा सम्राट् तथा चाणक्य-जैसे राजनीतिज्ञ को किसी अन्य देश ने उत्पन्न नहीं किया।

हिन्दू-जगत को सेठजी से बड़ी-बड़ी आशायें हैं। हम

परमात्मा से प्रार्थना करते हैं कि सेठजी को चिरकाल तक हिन्दू-संसार का रक्षक बनाये रखे।

'हिंदू-महासभा का १७ वाँ अधिवेशन पूना १६३६

१६३६ में जनरल चुनाव होनेवाले थे इसलिये यही उचित समझा गया कि १६३५ के अन्त में 'महासभा' का वार्षिक अधिवेशन किया जाय। यह अधिवेशन लोकमान्य तिलक की नगरी पूना में बड़े दिनों की छुट्टियो में बड़े उत्साहपूर्वक हुआ। हिन्दुत्व का जितना प्रेम मरहठा नवयुवकों में पाया जाता है उतना शायद ही देश में अन्यत्र पाया जाता हो। हिन्दुत्व का जो बीज छत्रपति शिवाजी ने बोया था और जिसे पेशवाओ ने सींचकर एक विशाल वृक्ष बना दिया था। वह वृक्ष यद्यपि समय के हेरफेर से जीर्ण-शीर्ण होगया, पर उसकी शाखायें अब भी इधर-उधर बिखरी पड़ी हैं और इस वृक्ष के अमर-फलों का जो स्वाद मरहठों ने चख लिया है उसको वे कदापि नहीं भूलते। उत्तर-भारत में हिन्दुओं के बड़े-बड़े तीथ हैं। काशी विशेषकर हिन्दू नगरी समझी जाती है पर औरङ्गजेब की मस्जिद ने इसकी शोभा नष्ट कर दी है। अयोध्या भगवान् राम की जन्मभूमि है पर इसी जन्मभूमि पर बाबर की मस्जिद देखकर किस हिन्दू का हृदय नहीं फटता। यही हालत श्रीकृष्ण की जन्मभूमि मथुरा का है। प्रयाग सब तीर्थों का राजा है पर वहाँ सङ्गम पर मन्दिर के ऊपर

अकबर का किला है, यही दुर्दशा अन्य तीर्थों की है। वहाँ गङ्गा, यमुना-आदि नदियाँ तो बहती हैं पर उनमें गन्देनाले गिरते देखकर दिल जलने लगता है। काशी में संस्कृत का बड़ा प्रचार है, बड़े-बड़े धुरन्धर पण्डित यहाँ रहते हैं, नित्य विश्वनाथजी के दर्शन करते हैं, पर उनको ज्ञानवापी वाली मस्जिद देखकर लज्जा नहीं आती ? फिर हिन्दुत्व कहाँ रहा, हिन्दुत्व की लाज कहाँ गई ? मरहठों ने हिन्दू-जाति को एक नवीन पाठ पढ़ाया है; उन्होंने हिन्दुत्व की सच्ची रक्षा की है और पूना में साक्षात् हिन्दुत्व के दर्शन होते हैं। उत्तरी-भारत से तो हिन्दुओं की आत्मा निकल चुकी है, हाँ स्थूल शरीर अवश्य है, जीताजागता हिन्दुत्व तो महाराष्ट्र में दिखाई देता है।

हाँ, तो हम पूना-अधिवेशन का हाल लिख रहे थे। इस समय हिन्दू एक बड़े सङ्कट में पड़े हुए थे। सरकार तथा काँग्रेस सदा की भाँति मुसल्मानों को अपने साथ मिलाने में प्रयत्नशील थी, और हिन्दू-हितों के बलिदान-द्वारा उनको प्रसन्न कर रही थी। ऐसी अवस्था में यह आवश्यक प्रतीत हुआ कि 'हिन्दू-महासभा' के प्रधान पद के लिए कोई ऐसा व्यक्ति चुना जाये, जो समस्त भारत में प्रभावशाली हो तथा जिसके हृदय में हिन्दुत्व कूट-कूटकर भरा हो। सब की दृष्टि महामना मालवीयजी पर लगी हुई थी। किसी को इनसे बड़ा हिन्दू-नेता, हिन्दू-हितों की रक्षा

करनेवाला न दीखता था। इससे भी पहले वह 'हिन्दू-सभा' के प्रधान बन चुके थे। वास्तव में वह 'हिन्दू-सभा' के जन्मदाता हैं। जब उन्होंने हिन्दू-जनता की पुकार सुनी, तो वृद्धावस्था में भी 'हिन्दू-सभा' की बागडोर सँभाली और पूना-अधिवेशन का सभापति पद ग्रहण किया।

महामना श्री मालवीयजी का उपदेश

वृद्ध होते हुए भी श्री मालवीयजी पूना पहुँचे। वहाँ उनका जलूस बड़ी धूम-धाम से निकाला गया और इनके सभापतित्व में अधिवेशन का कार्य बड़े उत्साह पूर्वक प्रारम्भ हुआ। सभापति का आसन ग्रहण कर श्री मालवीयजी ने प्रभावशाली व्याख्यान दिया जिसके कुछ अंश इस प्रकार है। ब्रिटिश-प्रधना-मन्त्री के साम्प्रदायिक-निर्णय के सम्बन्ध में मालवीयजी कहते हैं 'हिन्दू-महासभा' की जो-जो सेवायें लाला लाजपतराय, डॉक्टर मुँजे तथा भाई परमानन्द आदि ने की हैं वह सराहनीय हैं। हिन्दू नेता पिछले ५० वर्ष से स्वराज्य-प्राप्ति का प्रयत्न कर रहे थे उनको मिला क्या? ब्रिटिश-प्रधान मन्त्री का साम्प्रदायिक-निर्णय। इतने दिन के सब बलिदान निष्फल गये। हमारा भविष्य अन्धकारमय है। हमने माँगी थी रोटी पर हमें मिले पत्थर। यह निर्णय तो हिन्दू-जनता को ठुकरा कर और उनका अपमान कर ७५ प्रतिशत हिन्दुओं को सदैव के लिये दूसरों का आश्रित बनाता है। मुझे मुसलमानों से कोई शत्रुता नहीं, पर

हिन्दुओं के साथ अन्याय क्यों किया जाय? यह प्रथक्-चुनाव, फ़िसाद और दङ्गों की जड़ है। हिन्दू-मुसल्मानों को आपस में प्रेम से रहना चाहिये।' हिन्दू-जनता को सम्बोधित करते हुए मालवीयजी ने कहा—'कायरता छोड़कर वीर बनो। अपनी शक्ति पर भरोसा रखो। देखो तिलकजी सदैव इस मन्त्र का जाप किया करते थे 'स्वराज्य मेरा जन्म-सिद्ध अधिकार है, और मैं इसे लेकर ही रहूँगा।' आप सबको अपनी शक्ति पर इसी प्रकार विश्वास होना चाहिये। परमात्मा आपको अवश्य सफलता देगा।' अन्त में मालवीयजी ने गो-रक्षा की आवश्यकता बताई और कहा कि प्रत्येक हिन्दू-परिवार में कम-से-कम एक गाय अवश्य होनी चाहिये। अछूत कहलाने वाले भाइयों के सम्बन्ध में श्री मालवीयजी ने उपदेश दिया है 'यह हमारे भाई हैं और विशाल-हिन्दू-जाति के अङ्ग हैं। हमें उनकी यथाशक्ति सहायता करनी चाहिये और उनको ऊपर उठाने का पूर्ण प्रयत्न करना चाहिये। हमें उनसे घृणा कभी न करनी चाहिये।'

मालवीयजी ने यह भी अनुभव किया कि बिना रुपये के कोई महत्वपूर्ण काम नहीं हो सकता। 'महासभा' का कार्य चलाने के लिये उन्होंने रुपया इकट्ठा करने का भी वचन दिया, परन्तु मालवीयजी से वृद्धावस्था के कारण यह कार्य नहीं हो सका।

पूना-अधिवेशन पर 'महासभा' ने कई महत्वपूर्ण-प्रस्ताव

पास किये। एक प्रस्ताव में 'गवर्नमेन्ट ऑफ़ इण्डिया' की निन्दा की गई और एक्ट ब्रिटिश राज्य को अधिक दृढ़ करने वाला बताया गया। यह भी कहा गया कि इस एक्ट द्वारा हिन्दुओं का बलिदान किया गया है। महासभा ने निश्चय किया कि हिन्दू-हितों की रक्षार्थ चुनाव लड़े जावें और प्रान्तीय हिन्दू-सभाओं को अधिकार दिया गया कि वह चुनाव में महासभा के टिकट पर उम्मीदवार खड़े करें। एक और प्रस्ताव द्वारा साम्प्रदायिक-निर्णय की फिर निन्दा की गई क्योंकि इसके द्वारा हिन्दुओं तथा सिखों के साथ अन्याय हुआ है महासभा ने हिन्दुओं व सिखों से अनुरोध किया कि वह इस अन्याय के विरुद्ध आन्दोलन करते रहें जब तक कि वह बिल्कुल रद्द ही न किया जाय। एक महत्व पूर्ण-प्रस्ताव दलित कहलाने वाले भाइयों के सम्बन्ध में भी था, इस प्रस्ताव पर बड़ी बहस होती रही, बम्बई के प्रसिद्ध बैरिस्टर ऑनरेबल मिस्टर जयकर ने इस प्रस्ताव को पास कराने में विशेष भाग लिया और पास हुआ कि अछूतपन हिन्दू धर्म या समाज का अंग न समझा जाय और महासभा ने हिन्दुओं से सिफ़ारिश की कि वह सार्व-जनिक राजनैतिक व समाजिक विषयों में जन्म या जाति के समस्त मतभेदों को हटा दें, यह मतभेद समयानुकूल नहीं है। एक और प्रस्ताव इस आशय का पास किया कि हिन्दुओं को अपनी रक्षार्थ अपने शरीर को शक्तिवान रखने

के लिये अखाड़े आदि खोलने चाहिये और स्वयंसेवक-संघ बनाने चाहिये।

ऐसा प्रतीत होता है कि पूना-अधिवेशन के पश्चात् 'महासभा' के नेताओं में कुछ मत-भेद हो गया और इस अधिवेशन से जिस फल की आशाएँ की जाती थीं, वह पूरी न हो सकीं। मालवीयजी ने फिर सभा के कार्य में हस्तक्षेप करना उचित न समझा और सभा का कार्य पहले की भाँति भाई परमानन्दजी चलाते रहे। कितने आश्चर्य की बात है कि अभी तक 'हिन्दू-महासभा' के जन्मदाता महामना मालवीयजी के चरण 'हिन्दू-महासभा'-भवन को पवित्र नहीं कर सके हैं।

महासभा का १८वाँ अधिवेशन लाहौर (१९३६)

गत अधिवेशन पूना में दिसम्बर में १९३७ में हुआ था; पर लाहौर में अधिवेशन अक्टूबर मास में ही कर डाला गया। कारण यह बताया गया कि दिसम्बर में लाहौर में बहुत सर्दी पड़ती है। इस अधिवेशन के प्रधान नासिक के जगद्गुरु श्री शङ्कराचार्य चुने गये। शङ्कराचार्यजी एक बार पहले भी १९२४ में प्रयागराज-अधिवेशन पर 'महासभा' के प्रधान चुने गये थे। जगद्गुरु संस्कृत, अँगरेज़ी-आदि भाषाओं के उच्च कोटि के विद्वान् और अपने धर्म में कट्टर प्रचारक होते हुए भी उदार विचारक हैं। संगठन व शक्ति के बड़े अनुयायी हैं। आपने एक बड़ा मनोहर

भाषण दिया। आपने कहा—'विदेशियों को यह भली प्रकार जान लेना चाहिये कि हिन्दुस्थान हिन्दुओं का देश है, और हिन्दू यहाँ हिन्दू-धर्म तथा संस्कृति की रक्षा तथा वृद्धि के लिये निवास करते हैं। हिन्दुस्थान की हिन्दू-जाति, हिन्दू-धर्मप्रिय व हिन्दी-भाषी है यथा राष्ट्रीय है। शङ्कराचार्यजी ने बताया कि समय के फेर से हिन्दुओं में स्वयं कई बुराइयाँ आ गई हैं, जो बाहर के आक्रमणों से कहीं अधिक हानिकारक हैं, हमें उनसे बचना चाहिये। हिन्दुओं को उन बुराइयों को मिटाकर अपने-आपको शक्तिशाली, संगठित और सैनिक बनाना चाहिये, ताकि वह हिन्दू-धर्म की रक्षा कर सकें।' जगद्गुरु ने 'हिन्दू-सभा' को सम्मति दी कि इसे चुनाव में अपने उम्मीदवार खड़े करने चाहिएँ, ताकि हिन्दू-हितों की रक्षा हो-सके। अन्त में शङ्कराचार्यजी ने बताया कि हिन्दू-धर्म ने अब तक अपनी रक्षा की है। और पुरानी आर्य-संस्कृति तथा सभ्यता को सुरक्षित रखा है। अब हमारा कर्तव्य है कि अपने धर्म में नव-जीवन का सञ्चार कर इसे फिर वास्तविक रूप में जीवित रखें। हिन्दुस्थान हिन्दुओं का ही देश है, और अन्य कोई ऐसा देश नहीं, जिसको हिन्दू अपना कह सकें।'

इस अधिवेशन में 'महासभा' ने मुसल्मानी-रियासतों भूपाल, हैदराबाद, भावलपुर आदि में हिन्दुओं की शोच-

नीय दशा पर ध्यान देते हुए कई कमेटियाँ इन रियासतों में जाँच के लिए बनगईं। इस अधिवेशन पर जो महत्व-पूर्ण तथा जोशीला प्रस्ताव पास हुआ वह मथुरा के बूचड़-खाने के सम्बन्ध में था। मथुरा वृन्दावन की व्रज-भूमि हिन्दुओं के लिये बड़ी पवित्र भूमि है। इस भूमि का कण-कण श्री कृष्ण की लीलाओं से भरा हुआ है, और यहाँ स्वयं श्री कृष्ण भगवान गउएँ चराया करते थे। मुसल्मान-बादशाहों तथा ईस्ट इण्डिया कम्पनी के समय में भी यहाँ गो-वध नहीं होता था; लेकिन कितने दुःख की बात है कि इस पवित्र भूमि में भी अब ब्रिटिश-सरकार ने यह आज्ञा देदी। 'महासभा' ने सरकार के इस कार्य की बड़ी निन्दा की और बड़े जोर से कहा कि मथुरा का बूचड़खाना तुरन्त बन्द कर दिया जाये। 'महासभा' ने हिन्दुओं से भी अपील की इस बूचड़खाने के विरुद्ध आन्दोलन आरम्भ रखें और यदि आगामी दिसम्बर मास १९३६ तक मथुरा का बूचड़खाना बन्द न हो तो 'महासभा' सत्याग्रह आरम्भ करदे। महासभा के इतिहास में सत्याग्रह का यह प्रथम प्रस्ताव था।

'सावरकर-युग'

लाहौर-अधिवेशन के पश्चात् भी श्री भाई परमानन्दजी ही 'महासभा' का कार्य चलाते रहे। सन् १९२१ से 'महासभा' के कार्य का सब भार था तो डॉक्टर मुंजे के

कन्धों पर; लेकिन सब काम भाईजी करते थे। इस समय भारत में बड़े परिवर्त्तन हुए, कई घटनाएँ हिन्दुओं के विरुद्ध भी हुईं, पर 'महासभा' के इन दोनों नेताओं ने बड़े उत्साह तथा वीरता से इन सब का सामना किया। श्री० मालवीयजी वृद्धावस्था के कारण इस समय 'महासभा' के कार्यों में कुछ भाग न ले सके। स्वामी श्रद्धानन्दजी सन् १९२६ में शहीद हो चुके थे, और लाला लाजपतरायजी १९२८ में परम-धाम को सिधार चुके थे। इसी समय भारत में 'साईमन कमीशन' आया। कॉङ्ग्रेस ने फिर असहयोग चलाया। कई नेता बिगड़ गये। फिर 'गोल-मेज़ कान्फ्रेन्स' का दौर आया। 'ज्वाईण्ट-पार्लियामेन्ट्री' सब-कमेटियाँ बैठीं। हमारे नेता लन्दन गये, वहाँ महात्मा-जी ने मुसल्मानों को कोरे चैक दिए, फिर अँग्रेज़ों तथा मुसल्मानों में गुप्त-गँठजोड़ हुई और हिन्दू-जाति का सदैव के लिये गला घोंटकर ब्रिटिश-प्रधानमन्त्री ने अपने साम्प्र-दायिक-निर्णय की घोषणा की। महात्मा गाँधी ने पूना में आमरण-व्रत रखकर बङ्गाल तथा पंजाब के हिन्दुओं की रही-सही जान भी निकाल ली। 'गवर्नमेण्ट-ऑफ इण्डिया एक्ट' १९३५ में पास हुआ। सिन्ध को बम्बई से प्रथक् कर वहाँ के हिन्दुओं को मुसल्मानो की दया पर छोड़ दिया। इसी प्रकार की कई घटनायें इन दस वर्षों में हुईं। इन सब का सामना डॉक्टर मुंजे तथा भाई परमानन्द ने

बड़े साहस तथा उत्साह के साथ करते रहे और इनसे जो कुछ बन पड़ा उन्होंने हिन्दू-सङ्गठन की लहर की रक्षा का यत्न किया। ऐसा प्रतीत होता है कि इस समय हमारे नेताओं को चारों ओर अन्धकार दिखाई देने लगा था, वृद्ध नेता कब तक अकेले काम चलाते? उनको भी तो कुछ विश्राम की आवश्यकता थी। पर परमात्मा को हिन्दू-जाति की लाज रखनी थी; जिस जाति ने आदि-काल से इस देश में राज्य किया और जिसने अपनी सभ्यता तथा संस्कृति की चाँदनी से समस्त देशों को आलोकित किया है, वह जाति अमर है, वह मिट नहीं सकती। इस विपत्ति-काल में हिन्दू-जाति की रक्षा के लिए भगवान् ने एक ऐसे व्यक्ति को भेज दिया, जिसने इसे पुनर्जीवित कर दिया; इसे नव-जीवन दिया और इसके भविष्य को आशापूर्ण बना दिया। सारा हिन्दू-जगत् ही क्या सारा संसार इस महा-पुरुष के नाम से परिचित हो चुका है। पाठकों को पता लग गया होगा कि इस महापुरुष का नाम राष्ट्रपति स्वतन्त्र-वीर विनायक दामोदर सावरकर हैं। प्रथम बार दिसम्बर १९३७ में अहमदाबाद के उन्नीसवें-अधिवेशन के आप प्रधान चुने गए और तब से बराबर अब तक आपही हर वर्ष सभापति होते आ रहे हैं। 'हिन्दू-महासभा' के इतिहास में इससे पहले कभी कोई ऐसा अवसर नहीं आया कि एक ही व्यक्ति, लगातार पाँच साल तक सभापति चुना गया हो।

मालवीयजी कईबार सभापति चुने गये, पर कभी किसी वर्ष और कभी किसी वर्ष। डॉक्टर मुंजे तथा भाई परमानन्द ने १० या ११ वर्ष तक 'हिन्दू-सभा' की बागडोर अपने हाथ में सँभाली; परन्तु सभापति दूसरे थे, और वह प्रधान कार्यकर्ता थे। राष्ट्रपति सावरकर दिसम्बर १९३७ से आज तक राष्ट्रपति बने हुए हैं और आशा की जाती है कि वह भविष्य में भी इस पद से 'महासभा' व 'हिन्दू-जाति' की रक्षा कर हिन्दुओं के अन्दर नवीन जीवन भरते रहेंगे। दिसम्बर १९३७ से 'हिन्दू-महासभा' के जीवन में एक नवीन-युग आरम्भ होता है और यह युग 'सावरकर-युग' के नाम से प्रसिद्ध है। 'सावरकर-युग' को आरम्भ करने से पहले हम पाठकों को इस युग के कर्णधार राष्ट्रपति वीर सावरकर के संक्षिप्त जीवन-चरित्र का परिचय देना चाहते हैं।

राष्ट्रपति स्वतन्त्र वीर सावरकर का संक्षिप्त जीवन-चरित्र

राष्ट्रपति का जीवन इतनी रोचक घटनाओं से भरा पड़ा है कि पढ़ने से रोंगटे खड़े हो जाते हैं, और मुर्दा-दिलों में भी नवजीवन का सञ्चार हो जाता है। श्री विनायक दामोदर का जन्म स्थान जिला नासिक है, वह इसी जिला के भागूर ग्राम में २८ मई १८८३ को मरहठा-ब्राह्मणों की प्रसिद्ध शाखा चितपावन वंश में उत्पन्न हुए थे। भारतीय-इतिहास को इस वंश से सदा बड़े-बड़े

महापुरुष मिले हैं। पेशवा, नाना फड़नवीस, लोकमान्य तिलक आदि सब चितपावन ब्राह्मण ही थे। अभी सावरकर स्कूल में ही पढ़ते थे कि आपने सहपाठियों की एक सभा 'मित्र-मण्डल' के नाम से स्थापित की, जहाँ सब प्रकार के व्याख्यान होते और कवितायें पढ़ी जाती थीं। सं० १८६७ में जब कुछ मरहठा नवयुवकों को सरकार ने फाँसी के तख्ते पर लटका दिया तो इसकी चोट बालक सावरकर के हृदय में इतनी लगी कि वह अपने घरकी श्री दुर्गाजी की मूर्ति के आगे बैठकर रोने लगे और उसी समय उनके चरण पकड़ कर शपथ ली कि वह अपनी आयु हिन्दुस्थान को स्वतन्त्र कराने में व्यतीत करेंगे। १६०१ में दसवीं कक्षा पास कर पूना के प्रसिद्ध फर्ग्युसन कॉलेज में पढ़ने लगे और वहाँ भी अपने सहपाठियों में स्वदेशी आदि का प्रचार करते रहे। आपके सहपाठी आपको अपना लीडर मानते थे। सं० १६०५ में उन्होंने विदेशी कपड़ों की एक बड़ी होली जलाई जो भारत में इस प्रकार की प्रथम होली थी। इस अवसर पर इनका एक बड़ा प्रभावशाली व्याख्यान हुआ। कालेज-अधिकारियों ने इन्हें बाहर निकाल दिया, पर लोकमान्य तिलकजी ने उनकी बड़ी प्रशंसा की।

अब तक उन्होंने कई पुस्तकें लिख डाली थीं। कविता बड़ी अच्छी करते थे जो पत्रों में छपा करती थी। बी० ए० पास करने के पश्चात् वह 'विहारी' नामक पत्र के सम्पादक

वन गये। फिर लोकमान्य तिलकजी की जोरदार सिफा-रिश पर इनको प्रसिद्ध क्रान्तिकारी नेता पण्डित श्यामजी करुण वर्मा ने 'शिवाजी-वजीफा' देकर विलायत वैरिस्टरी पढ़ने के लिये भेजा। पर वहाँ जाने से पहले सावरकर ने नव-युवकों का एक सङ्घ 'अभिनय भारत'-नामक स्थापित किया, जिसके मेम्बर १५००० हो गये थे और जो अपने देश व जाति के लिये सब-कुछ करने पर तत्पर था।

लन्दन जाकर सावरकरजी ने अपने मकान का नाम 'इण्डिया-हाउस' रखा था और वहाँ बहुतसे भारतीय विद्यार्थी रहने लगे। सावरकरजी ने सब को देश-भक्ति के रंग में रँग दिया। 'ब्रिटिश-म्यूज़ियम' में १८५७ के ग़दर कहलानेवाले स्वतन्त्रता के युद्ध के सम्बन्ध में सब के कार्डों की छान-बीन कर डाली और फिर उनका निचोड़ एक पुस्तक के रूप में संग्रहीत किया, जो प्रकाशित होने से पूर्व ही जब्त हो गई। इसके अतिरिक्त और भी कई पुस्तकें लिखीं।

अब इनका नाम लन्दन में प्रसिद्ध हो चुका था। पुलिसवाले इनके पीछे पड़े रहते थे। उन्होंने कई सी० आई० डी० तोड़ लिये, जो सरकार का भेद इनको बता देते थे। १९०९ में लॉर्ड मॉर्ले के ए० डी० सी० सर कर-जन वाईल को लन्दन में एक पञ्जाबी युवक मदनलाल धींगरा ने दिन-दहाड़े गोली का लक्ष्य बना दिया, इससे

बड़ी सनसनी फैली। सावरकर को फँसाने की बड़ी चेष्टा की गई, पर सफलता प्राप्त न हुई। जब लन्दन की एक सार्वजनिक-सभा में धींगरा के इस कार्य की निन्दा का प्रस्ताव पास हो रहा था, तो सावरकरजी ने अकेले खड़े होकर कहा कि अभी उसका फैसला नहीं हुआ है। इसलिये हम उसको दोषी नहीं बना सकते '। इससे सारी सभा में सन्नाटा छा गया।

इस समय भारत में भी कुछ अँग्रेज़ अफ़सर मारे गये, पुलिस का कहना था कि सावरकर विलायत से पिस्तौल तथा रिवॉल्वर भेजते हैं, और बम बनाने की तरकीब बताते हैं; इसीसे इनके साथी हिन्दुस्तान में उपद्रव कर रहे हैं। सावरकरजी को पता लग गया कि इनके नाम वारन्ट जारी हो चुके हैं। वह लन्दन से पेरिस चले गये, लेकिन अपने मित्रों के रोकने पर इस विचार से वापस आये कि इनके साथियों को सरकार उनके स्थान पर कष्ट देगी और कोई यह विचार भी न करे कि वह दूसरों को फँसाकर स्वयं भाग गये। लन्दन आते ही वह तुरन्त स्टेशन पर ही बन्दी कर लिये गये, और कुछ दिन जेल में रखकर एक जलयान में लादकर भारत भेज दिये गये। यह १९१० की बात है और उस समय सावरकर बैरिस्ट्री पास कर चुके थे, पर सरकार ने उनको सनद न दी।

जब इनका जहाज़ भूमध्य सागर में फ्रांसीसी बन्दरगाह

मारसेल्ज़ के समीप खड़ा था, तो सावरकरजी के हृदय में एक नई उमङ्ग उत्पन्न हुई। उन्होंने सोचा कि यदि मैं फ्रांस की सीमा में पहुँच गया, तो ब्रिटिश-सरकार का मुझ पर कोई अधिकार न रहेगा। यह विचारकर उन्होंने सिपाहियों से स्नान करने को कहा वह इन्हें स्नानागार में ले गये। उसके ऊपर की ओर एक छेद था, जिसमें से एक आदमी बड़ी मुश्किल से निकल सकता था। सावरकर-जी ने स्नानागार का द्वार भीतर से बन्द कर, शीशों पर अपने कपड़े लटका दिये। फिर किसी यत्न से ऊपर चढ़ उस छेद में से निकलकर समुद्र में कूद पड़े। जब पानी का धमाका हुआ, तो सिपाहियों को होश आया। स्नानागार के किवाड़ तोड़े, पर बन्दी गायब था। तुरन्त ही खतरे की घण्टी बजाई गई और तार पानी में छोड़ी गई। अब आगे-आगे तो सावरकरजी तैरते चले जारहे थे और उनके पीछे नाव और सिपाही। पिस्तौल भी चली, पर गोली का लक्ष्य चूक गया। अन्त में सावरकरजी फ्रांसीसी किनारे तक जा पहुँचे और बड़ी कठिनाई से ऊपर चढ़कर पारसेल्ज़ पहुँचे। अँग्रेज़ सिपाही भी पीछे थे। सावरकरजी को एक फ्रांसीसी सिपाही मिला, उससे उन्होंने कहा कि मुझे थाने ले चलो, ये मुझे पकड़ने आ रहे हैं, इनको मुझे पकड़ने का कोई अधिकार नहीं है। फ्रांसीसी सिपाही अँग्रेज़ी नहीं जानता था और न सावरकरजी ही अच्छी फ्रैंच जानते थे।

सिपाही कुछ न समझ सका, इतने में अँग्रेज सिपाहियों ने आकर सावरकरजी को फिर बन्दी बना लिया और इसी जहाज में लेजाकर लाद दिया। उसके पश्चात् यह मामला अन्तर्राष्ट्रीय प्रश्न बन गया और हेग की प्रसिद्ध अन्तर्राष्ट्रीय-अदालत में पेश हुआ। एक दास की सहायता कौन करता ! मामला कुछ भड़ककर वहीं दब गया। सावरकरजी भारत लाये गये और उन पर सरकार के विरुद्ध विद्रोह करने का दोष लगाकर मुक़द्मा चलाया गया। १९११ में उनको ५५ वर्ष का दण्ड मिला और उसी वर्ष वह कालेपानी भेज दिये गये।

उनके बड़े भाई गणेश दामोदर सावरकर को पहले हीं कालापानी हो चुका था, अब छोटे भाई भी वहाँ पहुँचे। कुछ साल पश्चात् भाई परमानन्दजी भी उनके साथी बने और भी कई बंगाली नव-युवक कालेपानी में सड़ रहे थे। सावरकर-बन्धुओं को सब से अलग रखा जाता था और दोनों भाइयों को भी मिलने न दिया जाता था। सावरकर-जी को १५ वर्ष कालेपानी में व्यतीत करने पड़े। वह वहाँ भी गीत बनाते और उनको दीवारों पर लिख देते। बड़ा कठिन परिश्रम करते-करते उनका स्वास्थ्य खराब हो गया और जब १४ वर्ष बाद १९२७ में रत्नगिरी ले जाये गये, तो वह केवल हड्डियों का ढाँचा-मात्र थे, उनके जीवित रहने की भी बहुत कम आशा थी। १९३७ मई मास तक

वह यहीं नजरबन्द रहे। कई पु तकें लिखी और संगठन-शक्ति, दलितोद्धार-आदि के कार्य को भी किसी-न-किसी प्रकार चलाते रहे। इनकी बनाई हुई कवितायें आज महाराष्ट्र-भर की जिह्वा पर हैं।

१६३७ में नये एक्ट के अनुसार प्रान्तीय, सरकार की बागडोर बहुत कुछ प्रजा के प्रतिनिधियों के हाथ में आ चुकी थी कॉंग्रेस तो इस समय मचलती हुई दूर खड़ी रही, और इस कार्य को अन्य प्रतिनिधियों ने सॅभाला। हिन्दुओं के सौभाग्य से इस समय बम्बई-सरकार के मन्त्री मिस्टर जमनादास मेहता के उद्योग से स्वतन्त्र वीर सावरकर १० मई १६३७ को सब बन्धनों से मुक्त कर दिये गये और वह फिर अपनी इच्छानुसार कार्य करने लगे।

जब स्वतन्त्र वीर को स्वतन्त्रता मिली तो देश के नेत्र इस क्रान्तिकारी नेता की ओर लग गये। कॉंग्रेस के नेता उनका स्वागत करने को तैयार बैठे थे और यह भी मानी हुई बात है कि यदि वह कॉंग्रेस में चले जाते तो आज कॉंग्रेस के सभापति के आसन पर होते, मगर 'हिन्दू-पति' के लिये तो 'हिन्दुत्व' ही सब कुछ है। बिना 'हिन्दुत्व' के वह स्वतन्त्रता भी तो नहीं चाहते थे। फिर भला वह कॉंग्रेस में कैसे जा सकते थे। जहाँ 'हिन्दुत्व' का खून किया जाता है और जहाँ हिन्दू कहलाना पाप समझा जाता है। राष्ट्रपतिजी ने अपने स्वार्थ, सम्मान तथा व्यक्तिगत लाभ

का कुछ भी ध्यान न किया उन्होंने अपना मुख्य कर्तव्य 'हिन्दुत्व' की सेवा करना समझा और यह विचार कर संगठन करने लगे। हिन्दू-जगत ने भी ऐसा अनमोल माँझी पाकर सब कुछ उनके हाथों सौंप दिया। दिसम्बर मास १६३७ में 'अखिल-भारतीय हिन्दू-महासभा' का उन्नीसवाँ अधिवेशन अहमदाबाद में होनेवाला था। स्वतन्त्र वीर सावरकर सर्व सम्मति से प्रधान चुने गए और हिन्दू-जगत उनकी अथक सेवाओं से इतना सन्तुष्ट हुआ कि १६३७ से बराबर वह राष्ट्रपति चुने जाते हैं। आप १६३८ में नागपुर, १६३६ में कलकत्ता, १६४० मं मदुरा और १६४१ में भागलपुर अधिवेशनों के सभापति चुने गए हैं। आशा की जाती है कि भविष्य में भी वह इस कार्य को चिरकाल तक करते रहेंगे। हिन्दू-जगत को वीर सावरकर-जैसे नेताओं की आवश्यकता थी और है और सावरकरजी हिन्दू-जाति के गर्व हैं। परमात्मा आपका स्वास्थ ठीक रखे और चिरायु दे।

राष्ट्रपति वीर सावरकर की प्रथम गर्जना
(अहमदाबाद १६३७)

ऊपर लिखा जा चुका है कि 'अखिल भारतीय हिन्दू-महासभा' का उन्नीसवाँ अधिवेशन दिसम्बर १६३७ में 'कर्णावती नगर' (अहमदाबाद) में हुआ और इसके

प्रधान स्वतन्त्र वीर सावरकर चुने गए। राष्ट्रपति ने जो इस समय जो भाषण दिया वह चिरकाल तक स्मरणीय रहेगा और हिन्दू-जाति के मुर्दा-ढाँचे में सदैव नया जीवन भरता रहेगा, किसी ने अभिभाषण को गीता का उपदेश कहा, किसी ने इसे हिन्दुओं की बाईबल के नाम से पुकारा। सारॉश यह है कि सारा भाषण पढ़ने योग्य है। हम केवल इसके कुछ अंश नीचे देते हैं। धन्यवाद-आदि देने और महाराजा नैपाल को श्रद्धाञ्जलि अर्पित करने के पश्चात् राष्ट्रपति ने भारत की अखण्डता की इस प्रकार घोषणा की—"हमें अपना ध्येय समझकर इस बात को निश्चित रूप से घोषित कर देना चाहिये कि कल का हिन्दुस्थान काश्मीर से लेकर रामेश्वर तक और सिन्ध से लेकर आसाम तक केवल संकुचित होने के नाते ही नहीं, किन्तु अभिन्न राष्ट्र के नाते से अविभाज्य ही रहना चाहिए।" अब तक महासभा के नियमों के अनुसार 'हिन्दू' उसको कहा जाता था जो भारत में उत्पन्न किसी धर्म को मानता हो। इस व्याख्या से जापान, चीन-आदि देशों में रहनेवाले भी हिन्दू हो सकते हैं, पर सावरकरजी ने 'हिन्दू' शब्द की इस व्याख्या को उचित न समझा और इसकी व्याख्या इस प्रकार की—"जो कोई व्यक्ति सिन्ध से लेकर समुद्र तक फैली हुई पुण्य भारत-भूमि को अपनी जन्म-भूमि मानता है वह अधिकृत रूप से यह कह सकता है कि 'मै 'हिन्दू' हूँ' । इसी प्रकार

भारत के सनातनी, आर्यसमाजी, सिख, जैन, बौद्ध, ब्रह्म-समाजी, भील-आदि सब हिन्दू हैं। आगे चलकर राष्ट्रपति ने बताया कि कुछ लोगों को भ्रम हो गया है कि 'हिन्दू' शब्द विदेशियों-द्वारा तिरस्कार की दृष्टि से देखा जाता है, यह बात सत्य नहीं है। 'हिन्दू' शब्द वैदिक शब्द 'सप्त-सिन्धु' से निकला है और वह इतना ही पुराना है जितने कि वेद हैं। पारसियों की धर्म-पुस्तक 'जिन्दा अवस्था में' यूनानियों, चीनियों, रूमियों-आदि की पुस्तकों में हमारा नाम 'हिन्दू' आता है, यह जातियाँ मुसल्मानों से कहीं पहले जन्म ले चुकी हैं। फिर हमारे कवि भी 'हिन्दू' शब्द को बड़े अभिमान के साथ गाते आये हैं। 'हिन्दू-पति' की उपाधि पृथ्वीराज, महाराणा प्रताप, छत्रपति शिवाजी-आदि के लिये बड़े गौरव तथा मान की वस्तु थी। 'हिन्दू महा-सभा' के सम्बन्ध में आपने बताया कि यह एक राष्ट्रीय-संस्था है और 'हिन्दू' स्वयं एक राष्ट्र है। 'हिन्दू-समाज' को यदि एक स्वतन्त्र लोक-समाज की दृष्टि से देखा जाय तो वह पृथ्वी-तल के अन्य किसी भी लोक-समाज से बहुत श्रेष्ठ है। एक देश, एक वंश, एक धर्म, एक भाषा इनमें से किसी भी कसौटी पर कसने पर कोई भी समाज राष्ट्र बनने का पात्र समझा जाता है। वह सारी कसौटियाँ हिन्दू-जाति को एक राष्ट्र बनाती हैं। इस दशा में वह हिन्दू-राष्ट्र की प्रतिनिधि बन-कर एक राष्ट्रीय-संस्था ही अमर रूप से कार्य कर सकती है।

'हिन्दू-महासभा' सच्चे अर्थों में राष्ट्रीय-संस्था है। जब कि सहस्रों मुसल्मान भारत में रहते हुए भी तुर्की व अफ़-ग़ानिस्तान के साथ षड्यन्त्र करते रहते हैं कि भारत में मुसल्मानों का राज्य स्थापित हो जाये, किन्तु इसके विपरीत हिन्दुओं के सामने भारत के अतिरिक्त और कोई अपना नहीं। स्वतन्त्रता की इस लड़ाई में सैकड़ों नव-युवक फाँसी पर लटक गये, सहस्रों अण्डमान भेजे गये, कितने ही अन्य जेलों में सड़े, उनमें से अधिकांश हिन्दू ही थे।

सावरकरजी ने कहा, 'केवल भू-मण्डल पर स्थित हिन्दु-स्तान-नामक एक खण्ड की स्वाधीनता ही 'स्वराज्य' शब्द का वास्तविक अर्थ नहीं। हिन्दुओं के लिये तो 'हिन्दुत्व' धार्मिक तथा सांस्कृतिक-एकता की रक्षा ही 'स्वराज्य' है। यदि हिन्दुत्व का बलिदान देकर 'स्वराज्य' प्राप्त होता है तो इस प्रकार के स्वराज्य के लिये हम मर-मिटने को तैयार नहीं।'

'किसी भी विशेष-जाति या पंथ, वंश या धर्म की ओर ध्यान न देते हुए 'एक मनुष्य, एक मत' इस प्रकार का सर्व-साधारण नियम बनाने से ही शुद्ध राष्ट्र-निर्माण हो सकता है। 'हिन्दू-महासभा' की नीति अवश्य ही कॉङ्ग्रेस की नीति के समान ही राष्ट्रीय है। हम एक हिन्दू-नागरिक के अधिकार माँगते हैं। क्या मुसल्मान जो हर बार विशेष माँगें पेश करते हैं, इस प्रकार के राष्ट्रीय राज्य में सम्मिलित होने को तत्पर हैं?'

यहाँ पर साम्प्रदायिक-निर्णय व संक्षिप्त राज्य-विधान के सम्बन्ध में मुसलमानों की मनोवृत्ति की व्याख्या करने की आवश्यकता नहीं, वह तो हिन्दुओं को पूर्ण रूप से झुका देना चाहते हैं। इतना ही विवरण देना पर्याप्त होगा कि काश्मीर, पंजाब, सीमाप्रान्त तथा सिन्ध–आदि प्रान्तों को मिलाकर 'पाकिस्तान'-नामक एक पृथक् मुसल्मानी देश बनाने का उद्देश हमारी मातृभूमि को दो भागों में विभाजित कर देना है। हिन्दू-मुस्लिम-एकता के विषय में आपने कहा, 'स्वराज्य-संग्राम सरकारों के बदल देने के लिए हम इसलिए लड़ते हैं कि हम तो अपने घर के आप भी मालिक नहीं। आत्म-समर्पण-द्वारा या हिन्दुत्व गँवाकर प्राप्त किया हुआ स्वराज्य तो हिन्दुओं के लिये आत्महत्या के समान है। एक समय आयेगा जब मुसल्मान अपनी भलाई के लिये एकता करेंगे। वह एकता स्थायी होगी।

इस समय हमको एक ऐसे राष्ट्र का निर्माण करना है, जिसमें किसी को भी विशेष अधिकार या विशेष मताधिक्य प्राप्त न हो और किसी को भी राज्य ख़रीदना न पड़े। हिन्दू एक राष्ट्र होने के नाते अपना कर्तव्य-पालन करने को तैयार है, पर यदि मुसल्मान हिन्दुओं के साथ जातीय झगड़े उत्पन्न करते हैं और हिन्दुस्थान में मुस्लिम राज्य स्थापित करने के स्वप्न देखते हैं, तो हिन्दुओं को चाहिए कि वह उनको पृथक् ही रहने दें और स्वयं जागें।

कितने खेद की बात है कि कुछ लोगों को यह कहने में लाज आती है कि वह हिन्दू हैं। क्या श्रीराम तथा श्रीकृष्ण, शिवाजी, प्रताप तथा गुरु गोविन्दसिंह की परम्परा में जन्म धारण करना महान कलंक है? चुनाव के समय आप अपनी राय केवल उस व्यक्ति को दें, जिसे अपने-आपको 'हिन्दू' कहलाने में लाज नहीं आती हो।

"मेरे हिन्दू-बन्धुओ, मैं आपसे निश्चिन्त रूप से कहता हूँ कि आत्म-विश्वास-द्वारा ही हिन्दू-जाति ने पहले भी अनेकों आपदाओं का सामना किया है। प्रत्येक राष्ट्र के जीवन में उतार-चढ़ाव तो होते ही हैं। सर्वदा ही से यूनानी, हूण, शक तथा अन्य विदेशियों का हिन्दुओं ने सामना किया, लेकिन उनका नाम भी शेप नहीं है, परन्तु हिन्दू-जाति अभी जीवित है और सदा जीवित रहे.ी। विदेशी जातियों का दाँत ही से भारत पर लगा रहा है, लेकिन क्या भारत-माता के सपूत हिन्दुओं ने उनका विरोध नहीं किया? जब तक हमारी रगों में हिन्दुत्व है हम हिन्दू राष्ट्र-निर्माण करते रहेंगे। सावरकरजी के इस भाषण ने हिन्दुओं में पुनर्जीवन दिया। उर्दू, हिन्दी, महाराष्ट्री, अँग्रेजी-आदि में इसके कई एडिशन छापकर बाँटे गये।

प्रस्ताव

अहमदाबाद-अधिवेशन में कई महत्वपूर्ण प्रस्ताव पास हुए। एक प्रस्ताव-द्वारा गवर्नमेंट ऑफ इण्डिया एक्ट १९३५

को असन्तोपजनक तथा अपूर्ण घोषित किया गया। दूसरे प्रस्ताव-द्वारा निजाम व भूपाल के मुसल्मान सरकारों को चेतावनी दी कि उनके राज्यों में हिन्दुओं के साथ अन्याय होता है। अतः उनको चाहिये कि वह इसका उचित प्रबन्ध करें। बंगाल की मुस्लिम सरकार वहाँ खुल्लमखुल्ला हिन्दुओं से विरोध कर रही थी उसको भी सावधान रहने की चेतावनी दी और वहाँ के हिन्दुओं को संगठित होने की आज्ञा दीं। सरकार एक हिन्दू-प्रान्त आसाम को मुस्लिम-प्रान्त बनाने पर तुली हुई थी उसकी भी निन्दा की गई और हि दुओं को उसका सामना करने को कहा गया। एक और प्रस्ताव-द्वारा सरकार से कहा गया कि वह कोई ऐसा क़ानून बनाये कि जिससे हिन्दू-सभाओं को अधिकार हो कि वह हिन्दुओं से दान लेनेवाली संस्थाओं का हिसाब कमेटी-द्वारा जाँच करा सकें।

'महासभा' के उद्देश्य में परिवर्तन

करनावति (अहमदाबाद) अधिवेशन पर सावरकरजी के आदेशानुसार 'महासभा' के उद्देश्य में कुछ परिवर्तन हुआ। 'हिन्दू-महासभा' का उद्देश्य अब से पूर्ण स्वराज्य-प्राप्ति रखा गया। इसके शब्द यह हैं, 'हिन्दू-महासभा' का उद्देश्य हिन्दू-जाति, हिन्दू-संस्कृति, हिन्दू-नीति—जिसका लक्ष्य पूर्ण स्वराज्य-प्राप्ति अर्थात् हिन्दुस्थान को उपयुक्त एवं आर्य-धर्म-संगत, सुनियमित उपायों से पूर्ण स्वराज्य अथवा

उसके पूर्ण राजनैतिक अधिकार एवं स्वतन्त्रता प्राप्त कराना तथा सब सामग्री की, जो हिन्दू-राष्ट्र के अभ्युत्थान, शक्ति और गौरव-वृद्धि का हेतु है, रक्षा और उन्नति करना है।

दौरा

रत्नागिरि से मुक्त होते ही वीर सावरकर ने महाराष्ट्र में दौरे लगाने आरम्भ किये। अहमदाबाद-अधिवेशन की समाप्ति पर उन्होंने समस्त भारतवर्ष का दौरा लगाना प्रारम्भ किया और बड़े-बड़े नगरों में जाकर विशाल सभाएँ कीं। 'हिन्दू-महासभा' का सन्देश हिन्दुओं तक स्वयं पहुँचाया। वह जिस स्थान पर गए सहस्रों-लाखों हिन्दुओं ने उन्हें सिर आँखों पर लिया। ऐसे शानदार स्वागत हुए और जलूस निकले कि काँग्रेस-आदि के बड़े-बड़े नेताओं के भी न निकले होंगे। सब स्थानों पर हिन्दू-जनता में उत्साह की तरंग दौड़ गई और मरती हुई हिन्दू-ज़ाति अपने में फिर नवीन शक्ति का अनुभव करने लगी। सावरकरजी के दौरों के तीन अभिप्राय थे। (१) हिन्दू संगठन का सन्देश लाखों करोड़ों हिन्दुओं तक पहुँचाना। (२) हिन्दुओं में क्षात्र-धर्म की जागृति तथा वृद्धि करना। (३) हिन्दुओं के अन्दर सामाजिक बुराइयों—जैसे कि अछूत-आदि को दूर करना और शुद्धि-आदि का प्रचार करना। हिन्दू-जगत जानता है कि वीर सावरकर अपने इन उद्देश्यों में कहाँ तक सफल हुए हैं। कार्य अभी चालू है और इसी प्रकार चालू रहेगा।

जनवरी मास के अन्त में सावरकरजी "मरहठा-साहित्य-सम्मेलन" की प्रधानता करने बड़ौदा गए। २०००० हिन्दुओं को संगठन का सन्देश एक सार्वजनिक सभा में दिया। फिर कई गाँवों का दौरा किया और ७-२-३८ को 'कार्यकारिणी समिति की बैठक दिल्ली में रखी। राष्ट्रपति ६ फरवरी को प्रातः की गाड़ी से आये। भारत की राजधानी राष्ट्रपति का स्वागत करने को सज-धजकर दुलहिन बनी हुई थी। जुलूस में कम-से-कम एक लाख पुरुष होंगे, शाम को 'सार्वजनिक सभा' में ५०००० हिन्दुओं ने राष्ट्रपति का सन्देश सुना फिर कई स्थानों का दौरा किया, २ अप्रेल को कानपुर गये, फिर अयोध्या, बाराबंकी होते हुए ६ अप्रेल को लखनऊ जा पहुँचे और ७ को आगरा होते हुए बम्बई। १५ तारीख को वहाँ एक सभा में सावरकरजी ने कहा—"क़लमों को फेंक दो और बन्दूकें सँभाल लो।" १८ को शोलापुर गये और ३० को पूना। वहाँ २ मई तक रहे और 'आरम्ज़-एक्ट' (Arms Act) के विरुद्ध आन्दोलन जारी किया।

६ मई से १७ मई तक उन्होंने पंजाब का दौरा किया। अम्बाला, लुधियाना, जालन्धर, अमृतसर-आदि स्टेशनों पर उनका शान्दार स्वागत किया गया। ८ मई को लाहौर पहुँचे। १० मई को शेरे-पंजाब लाला लाजपतरायजी के बुत को सावरकरजी ने हार पहनाया और उनकी आत्मा के प्रति

श्रद्धाञ्जलि भेंट की। शहीदगंज के दर्शन किये, फिर अमृतसर आये और दरबार साहब व 'दुर्ग्याना मन्दिर' के दर्शन किये। लाहौर तथा अमृतसर में हजारों हिन्दुओं को महा-सभा का सन्देश दिया। फिर होशियारपुर होते हुए १५ मई को एक दिन हेड ऑफ़िस दिल्ली में विश्राम किया। १६ मई को अजमेर गये और वहाँ की जनता को जाग्रत किया। २० मई को नासिक में कार्यकारिणी की बैठक की और १६ जून को ग्वालियर गए। वहाँ झाँसी की प्रसिद्ध रानी लक्ष्मीबाई की छत्री के दर्शन किये और जनता को १८५७ के स्वतन्त्रता युद्ध की याद दिलाई। फिर बम्बई वापिस चले गए और हैदराबाद के हिन्दुओं की सहायता के लिये फण्ड खोला। १७ जुलाई को नासिक में '१८५७' पर व्याख्यान दिया और १ अगस्त को लोकमान्य तिलक की बरसी मनाई। ३० अगस्त को जोधपुर गये और सितम्बर मास में सिंध का दौरा आरम्भ किया। हैदराबाद, करॉची, सक्खर, शिकारपुर-आदि का दौरा कर, १० सितम्बर को वापस बम्बई पहुँच गये। सिंध का दौरा बड़ा सफल रहा और मुसल्मानों से भयभीत हिन्दुओं के अन्दर पुनर्जीवन उत्पन्न हो गया। २८ सितम्बर को फिरोज़पुर गये, और ३ अक्तूबर को दिल्ली आगये। वहाँ शिव-मन्दिर-आन्दोलन-कमेटी' के मेम्बरों से बातचीत की, और 'बाल्मीकि-सभा' में अछूत कहलानेवाले भाइयों के साथ भोज किया।

"इंटरनेशनल आर्यनलीग" के मेम्बरों से 'हैदराबाद' के सम्बन्ध में बातचीत की और 'सार्वजनिक सभा' में भाषण दिया। ११ अक्तूबर को फिर पूना जा पहुँचे। वहाँ के कुछ हिन्दुओं ने हैदराबाद का मोर्चा शुरू कर रखा था। सावरकरजी ने इसके सम्बन्ध में मुख्य कार्य-कर्त्ताओं से परामर्श किया और फिर कई स्थानों में प्रचार करते हुए १५ अक्तूबर को नन्दगाँव जा पहुँचे। यह स्थान हैदराबाद के सीमा पर है। वहाँ 'ज़िला हिन्दू-कॉन्फ्रेन्स' की गई। हैदराबाद के बहुत से हिन्दू इसमें आये थे। वहाँ से फिर वापिस बम्बई चले गये और पहली नवम्बर को 'हैदराबाद-दिवस' मनाया। फिर कई सभायें कर और हरिजनों के घर जाकर उनको प्रेम-सन्देश सुनाया। हैदराबाद-रियासत के हिन्दू-विशेषकर आर्य-समाजियों के विरुद्ध जो अत्याचार हो रहे थे, उनके सम्बन्ध में दिसम्बर मास में शौलापुर में एक 'ऐतिहासिक आर्यन् कॉन्फ्रेन्स' हुई। बापूजी अणे इसके प्रधान थे और महात्मा नारायण स्वामी इसके मुख्य कार्य-कर्त्ता। २५-२६ दिसम्बर को सावरकरजी भी वहाँ गये और भाषण हुए। सावरकरजी ने 'हिन्दू-महासभा' की ओर से आर्य-समाजियों के नेताओं को विश्वास दिलाया कि यदि वह निज़ाम सरकार के अत्याचारों के विरुद्ध कोई क़दम उठायेंगे तो 'हिन्दू-महासभा' उनका साथ देगी। शौलापुर कॉन्फ्रेन्स में निज़ाम सरकार को चेतावनी दी गई और

फिर अवधि समाप्त होने पर धर्म-युद्ध आरम्भ हुआ, जिसमें 'हिन्दू सभा' तथा 'आर्यन् लीग' के सैकड़ों सदस्य निज़ाम की जेलों में ठूँस दिये गये। इस धर्म-युद्ध का हाल हम विस्तार से आगे लिखेंगे। इस स्थान पर इतना लिखना काफ़ी है कि वहाँ जो सफलता हुई वह दोनों संस्थाओं के सहयोग से हुई! अब 'हिन्दू महासभा' का बीसवाँ अधिवेशन नागपुर में होनेवाला था। राष्ट्रपति वीर सावरकर फिर सभापति चुने गये। अतः वह शोलापुर से नागपुर को चले गये।

'अखिल-भारतीय-हिन्दू-महासभा' का बीसवाँ अधिवेशन (नागपुर १९३८)

राष्ट्रपति सावरकर २८-१२-३८ को प्रातः की गाड़ी से नागपुर पहुँचे। सहस्रों स्त्री-पुरुष स्वागत के लिये रेलवे-स्टेशन पर उपस्थित थे। डॉक्टर मुंजे, डॉक्टर खरे, मि० केदार-आदि हिन्दू-नेता सब उपस्थित थे। स्वयं-सेवकों की संस्थाओं का कोई शुमार न था। जब गाड़ी स्टेशन पर पहुँची तो सारा वायु-मण्डल 'हिन्दू-धर्म की जय', 'वीर सावरकर की जय', 'हिन्दुस्तान हिन्दुओं का'-आदि नारों से गूँज उठा। जुलूस में ७०००० के लगभग नर - नारियों की भीड़ थी एक वायुयान राष्ट्रपति के सिर पर पुष्प-वर्षा करता जा रहा था। जुलूस निकलने में ५ घण्टे लग गये।

'महासभा' का अधिवेशन एक बड़े पण्डाल में हुआ, जिसमें रोज़ ३०-४० सहस्र पुरुष आते थे। गत वर्ष की भाँति इस बार भी सभापति का भाषण बड़ा लम्बा-चौड़ा, जोशीला व रोचक था। अधिवेशन में कई प्रस्ताव पास हुए। पर इन सब में महत्वपूर्ण प्रस्ताव निज़ाम-सरकार के विरुद्ध धर्म-युद्ध की घोषणा थी; क्योंकि हैदराबाद रियासत में हिन्दू-हितों व अधिकारों को सब उपायों से कुचला जा रहा था और चेतावनी-पर-चेतावनी देने पर भी निज़ाम-सरकार मनमानी तबलीग़-आदि से हिन्दुओं को मुसल्मान बना रही थी। शोलापुर में 'आर्यन् लीग' ने भी धर्म-युद्ध की घोषणा कर दी थी। अब नागपुर में 'हिन्दू-सभा' के इतिहास में १९३९ का वर्ष 'हैदराबाद-धर्म-युद्ध' के लिये सदा स्मरण रहेगा।

सभापतिजी का अभिभाषण

हिन्दू-राष्ट्र क्या है और इसकी वृद्धि कैसे हुई ? राष्ट्रपति जी कहते हैं—"पिछले कहे हुए इतिहास से यह स्पष्ट है कि हमारे पूर्वज वैदिक काल से ही हमें धार्मिक, राजनीतिक-आदि जीवन-यत्नों से संगठित कर, एक राष्ट्र बना रहे थे, जो आज 'हिन्दू-राष्ट्र' के नाम से समस्त भारत में फैला हुआ है और सब लोग भारतवर्ष को अपनी पितृ-भू व पुण्य-भू मानते हैं। चीन को छोड़कर संसार का कोई भी देश इतने अधिक समय के राष्ट्-जीवन का दावा नहीं कर सकता।

हिन्दू-राष्ट्र सन्धि-आदि करके नहीं बनाया गया इसकी वृद्धि कुकुरमुत्ता के समान नहीं हुई। यह कोई कागज के टुकड़े रखकर नहीं बनाया गया। यह शांत बैठे रहने को राष्ट्र नहीं बनाया गया। यह कोई विदेशियों का नया राष्ट्र नहीं है। यह इसी देश की भूमि में बढ़ा है, इसकी जड़ें बहुत गहरी और दूर-दूर तक फैली हुई हैं। हिन्दू-राष्ट्र की यह कथा हिमालय की भाँति विशाल व ठोस सत्य है। कुछ लोग कहा करते हैं कि हिन्दुओं के अन्दर बहुत से साम्प्रदाय और विभाग हैं। वह राष्ट्र कैसे हो सकता है इसका उत्तर राष्ट्रपतिजी ऐसे देते हैं 'क्या कोई राष्ट्र विभागों से बना है ? हिन्दुओं की पितृ भू व पुण्य-भू एक ही है और इनका एक ही रूप है ? हिन्दू-जनता परस्पर अपने धार्मिक-सांस्कृतिक, राजनैतिक और देश-भक्ति की भावना को एक ही राष्ट्र के रूप में बना रखने के लिये बड़ी सजग रहती है। मरहठा-साम्राज्य के पतन होने तक हमारे देश-वासी हिन्दू राजा, देश-भक्त कवि, विख्यात और राजनीतिज्ञ थे। यह सारे महान् व्यक्ति राष्ट्रीय-भावना को बनाते और बढ़ाते रहते थे, अपनी सारी शक्तियो से हिन्दू-साम्राज्य या हिन्दुओं की राष्ट्रीय-भावना को दृढ़ बनाने का प्रयत्न किया करते थे। जब अँग्रेजों का शासन भारत में होगया तो मैकाले के शिक्षा-विधान का चक्र चला और अँग्रेजी पढ़कर हिन्दू-नव-युवक हिन्दुत्व को भूलकर अँग्रेजी की झूठी नकल करने लग गये। कॉंग्रेस

का जन्म हुआ और उसके नेताओं के दिमाग़ में 'इण्डियन नेशनल' बनाने की धुन सवार हुई । वह कहने लगे—'भारत में रहनेवाले सब लोग हिन्दू, मुसल्मान, ईसाई, पारसी-आदि हैं और कई शताब्दियों से भारत में साथ-साथ रहते आये हैं। वह सब ही एक हो जाएँ भले ही यह लोग अपने धर्म, भाषा संस्कृति तथा ऐतिहासिक प्रगति में एक-दूसरे से भिन्न ही क्यों न हों ? राष्ट्रीयता के साथ इन सब बातों का कोई सम्बन्ध नहीं। परस्पर राष्ट्रीयता स्थापित करने के लिये केवल एक देश का होना ही एक-मात्र आवश्यक है।' इस प्रकार अँग्रेजी-शिक्षित लोग जो बहुधा हिन्दू ही थे और हैं, उन्होंने अपने-आपको हिन्दू समझना बन्द कर दिया और अपने-आपको केवल हिन्दुस्तानी-मात्र समझने लगे। कोई उनको हिन्दू कहें तो वह उसे अपनी प्रतिष्ठा के विपरीत समझने लगे । एक रात ही में वह हिन्दू से 'हिन्दुस्तानी देश-भक्त' बन गये, परन्तु उनकी बड़ी भूल यह हुई कि उन्होंने समझा कि हिन्दुओं की भाँति मुसल्मान भी अपने मुस्लिम-पन को त्यागकर अपने-आपको हिन्दुस्तानी बना लेंगे। इन देश-भक्त हिन्दुओं की दृष्टि में 'हिन्दुस्तानी-राष्ट्र' इसी प्रकार बन चुका था, जिस प्रकार प्रादेशिक भारत।

राष्ट्रपतिजी एक स्थान पर कहते हैं—"यद्यपि हिन्दू-जनता कॉङ्ग्रेस के झण्डे के नीचे बिना शंका व बड़े उत्साह

से प्रादेशिक-राष्ट्रीयता को बड़ी भक्ति-भाव से मानती गई, परन्तु प्रादेशिक-राष्ट्रीयता का सिद्धान्त हिन्दुस्तान के मुसल्मानों पर कुछ भी प्रभाव न डाल सका और वहाँ बिल्कुल विफल हुआ। हिन्दुस्तानी मुसल्मान कॉंग्रेस से आरम्भ से ही पृथक् रहे और धीरे-धीरे कॉंग्रेस पर अपना क्रोध प्रकट करते गये। कॉंग्रेस-जनता अधिक इस बात पर ज़ोर देती गई कि सब लोग अपना जातीय तथा धार्मिक भेद-भाव त्यागकर एक हिन्दुस्तानी राष्ट्र के रूप से 'एक हो जायें, इतना ही मुसल्मानों का अविश्वास और क्रोध बढ़ता गया। ब्रिटिश-सरकार ने भी अपने लाभ के लिये मुसल्मानों को कॉंग्रेस-विरोधी भावना में उत्साहित किया। हिन्दू देश-भक्तों के कठोर प्रयत्नों से धीरे-धीरे कॉंग्रेस का राजनीतिक महत्व बढ़ता गया। वह मुसल्मानों को अपने साथ मिलाने का भरसक प्रयत्न करते रहे, पर मुसल्मानों का विरोध भी अधिक-अधिक स्पष्ट रूप धारण करता गया और ब्रिटिश सरकार उन्हें इस विरोध में उत्साह तथा चुपचाप सहायता दिया करती थी।" हमारे कॉंग्रेसी हिन्दू-नेताओं ने मुस्लिम मनोवृत्ति को बिल्कुल समझा ही नहीं, और वह अब भी भ्रम में पड़े हुए हैं। राष्ट्रपतिजी कहते हैं—"मुसल्मान सर्व-प्रथम मुसल्मान है और अन्त में भी मुसल्मान ही रहेगा; वह हिन्दुस्तानी कभी नहीं बन सकता। जब तक हिन्दू अपने लाखों आदमियों को जेलों में भेज-

कर और सैंकड़ों को फाँसी पर चढ़वाकर राजनीतिक अधिकारों के लिये ब्रिटिश सरकार से लड़ते रहते हैं, तब तक चुपचाप मुसल्मान बैठे देखते रहेंगे। हिन्दुओं के इन बलिदानों और प्रयत्नों का जब कुछ प्रभाव सरकार पर पड़ा और भारतीयों को कुछ अधिकार देने का समय आया तो मुसल्मान झट-से आ धमके और बोले—'हम भी भारतीय हैं, हमें भी हमारा भाग मिलना चाहिये।' अब बात यहाँ तक बढ़ गई कि भारत को दो भागों में विभाजित करने की माँग हो रही है और मुसल्मान अहिन्दू मुस्लिम-राष्ट्रों से मिल जायेंगे।" अब हिन्दुओं का कर्त्तव्य क्या है? राष्ट्रपतिजी कहते हैं—"हम हिन्दुओं को चाहिये कि जहाँ से मरहठा व सिख हिन्दू-समाज का पतन हुआ था वहाँ से हम राष्ट्रीय-जीवन का सूत्र-पात करें। हिन्दू-राष्ट्र में फिर-से नव-जीवन फूँकना है, इसलिये हमें बड़ी दृढ़ता से घोषित कर देना चाहिये कि सिन्धु से दक्षिण-महासागर तक सारा देश हिन्दुओं का है और वह हिन्दुओं का एक राष्ट्र है। हम ही इसके मालिक हैं। जिस प्रकार जर्मनी में जर्मन लोग वहाँ के राष्ट्र हैं और यहूदियों की अल्प-संख्यक जाति है, तुर्की में तुर्क लोग वहाँ के राष्ट्र हैं और अरब वहाँ की अल्प-संख्यक जाति है, इसी प्रकार हिन्दुस्तान में हिन्दू लोग राष्ट्र हैं और मुसल्मान अल्प-संख्यक जाति के रूप में हैं। अपने भाषण को जारी रखते हुए

राष्ट्रपतिजी ने हिन्दुओं को संगठित होने तथा अपने अन्दर से अछूत-आदि की बुराइयों को निकालने की सम्मति दी। शुद्धि को अपनाना हर हिन्दू का परम धर्म है।" बृटिश सरकार को राष्ट्रपतिजी ने चेतावनी इस प्रकार दी—"मैं चाहता हूँ कि बृटिश सरकार मुसल्मानों को हिन्दू-विरोधी भावनाओं से भरने तथा हिन्दुओं के विरुद्ध कार्रवाई करने की नीति को त्याग दे। 'मुस्लिम-लीग' ने खुल्लमखुल्ला घोषित किया है कि भारत के दो भाग कर दिये जायें। भारत में स्वतन्त्र मुसल्मान-राज्य स्थापित करने के लिये मुस्लिम लीग भारत के बाहिरी मुस्लिम देशों को आमन्त्रित कर रही है। हिन्दुओं को दुर्बल बनाने के लिये बृटिश सरकार अपनी लाड़ली बीवी का अधिक विश्वास कर रही है। मुसल्मानों के हरकतों की पेचीदगियां इतिहास में प्रसिद्ध हैं, पर यह कार्य सरकार का है। हम हिन्दुओं को निश्चय कर लेना चाहिये कि न तो हम बृटिश सरकार के दास बनें और न मुसल्मानों के। हम अपने घर में, हिन्दुओं के देश, हिन्दुस्तान के स्वयं स्वामी बनेंगे।" परन्तु इस समय हिन्दुओं की दशा बड़ी शोचनीय है। मुसल्मान जिन प्रान्तों में बहु-संख्यक हैं, वहाँ वह मुस्लिम हितों की रक्षा कर रहे है। मुस्लिम मन्त्री 'मुस्लिम लीग' के सदस्य होते हैं, परन्तु हिन्दू जिन्होंने गत पचास वर्ष लड़कर तथा बलिदान करके यह अधिकार प्राप्त किये हैं, अब मारे-मारे फिरते हैं।

भागलपुर का मोर्चा

बिहार के पण्डित भरत मिश्र तथा कुछ अन्य सत्याग्रही
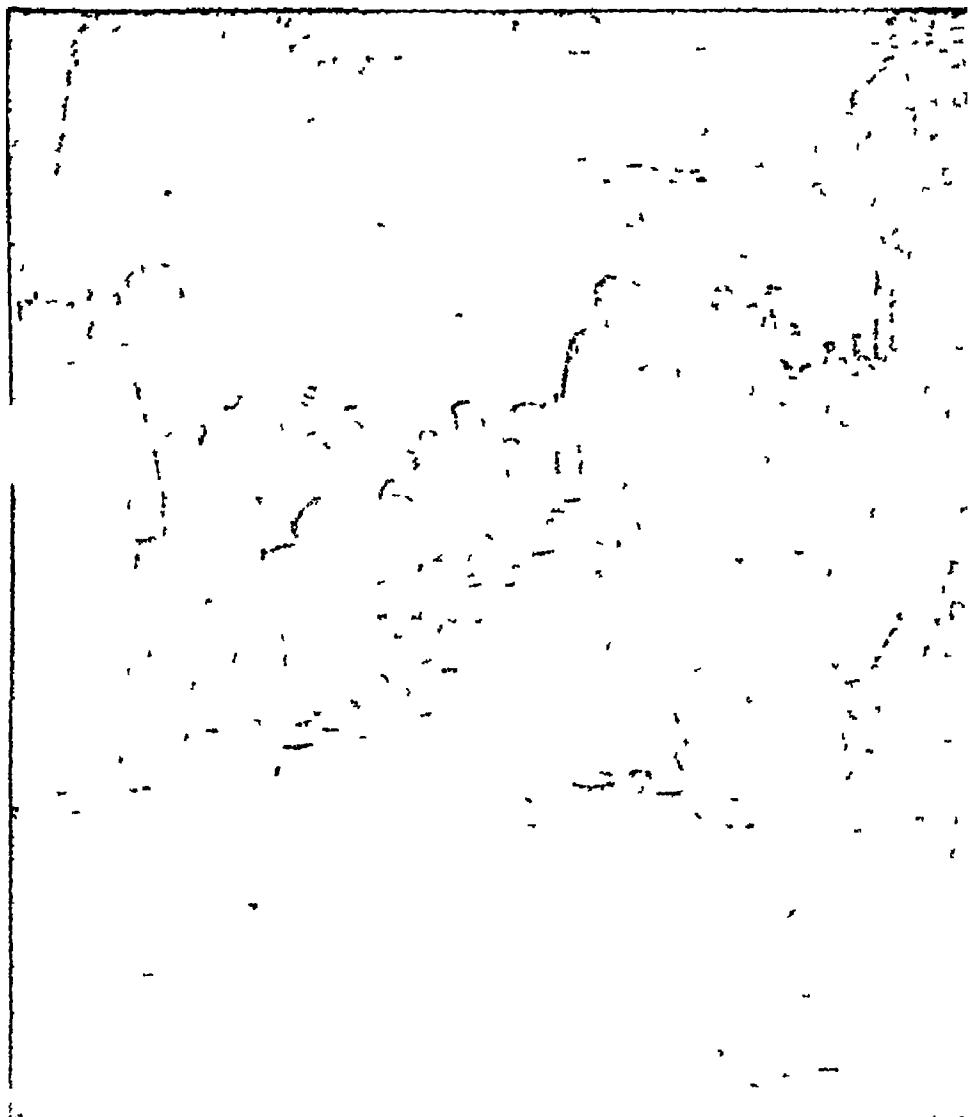
सहभोज

सत्याग्रही लोग सैकड़ों की संख्या में एक-साथ भोजन करते थे

भागलपुर का मोर्चा

डॉ० बी० एस्० मुञ्जे
मध्य-प्रान्तीय सेनानियों के साथ

भागलपुर का मोर्चा

'महासभा' के तत्कालीन महामन्त्री डा० पीनायडू
अपने मद्रासी वीरों के साथ।

पर इसका इलाज क्या है? इसका इलाज ठोस हिन्दू राष्ट्रीय-दल की स्थापना है। राष्ट्रपतिजी कहते हैं—"कॉंग्रेस की इस हिन्दू-विरोधी और राष्ट्रीय विरोधी भावना का सामना हिन्दू राष्ट्रीय दल की स्थापना से हो सकता है। देश के समस्त सनातनी, आर्यसमाजी, हिन्दू संगठनवादी और साधु-संन्यासी संगठन करके यह निश्चय कर लें कि हम कॉंग्रेस के टिकटवाले उम्मीदवार को अपना वोट नहीं देंगे, तो आगामी चुनाव में 'हिन्दू-सभा' का बहुमत हो जायेगा फिर सारा दृश्य ही परिवर्तित हो जायेगा। देश में हिन्दू-राष्ट्र का भी उदय होगा फिर प्रत्येक हिन्दू अपना सीना आगे करके चलेगा। हिन्दुओं के जुलूस और बाजे मस्जिद के सामने से निकलेंगे और वह उसे इसी प्रकार सहन करेंगे, जिस प्रकार सरकारी सेना के बाजों को सहन करते हैं। किसान और मज़दूरों को उनके भाग का सब कुछ मिलेगा। हिन्दुओं का धर्म तथा भाषा सुरक्षित रहेंगे। मुसलमानों से एकता के लिये भीख न माँगी जायेगी। हिन्दू-जनता को अपने ऊपर विश्वास है। वह हिन्दुस्तान की स्वाधीनता अपने त्याग तथा तपस्या से प्राप्त करेगी। इस मार्ग में जो भी अहिन्दू शक्ति आवेगी, उसका दृढ़ता से सामना करेगी और हिन्दुस्तान की स्वतन्त्रता के विरुद्ध हिन्दुओं पर जो आक्रमण होंगे, उनसे वह मोर्चा लेगी। यदि मुसल्मान बंगाल में यह कानून बना दें कि राज्य की ६० प्रति-शत

नौकरियाँ मुसल्मानों के लिये सुरक्षित रहेंगी तो हिन्दू अपने प्रान्त में क़ानून बनावेंगे कि ६० प्रति-शत नौकरियाँ हिन्दुओं के लिये सुरक्षित रहेंगी; चाहे उस प्रान्त में हिन्दुओं की संख्या ८० प्रति-शत ही क्यों न हो। जिन प्रान्तों में हमारा बहु-मत है, केवल उन्हीं में हम हिन्दू-हितों की रक्षा न करेंगे, बल्कि उनके अतिरिक्त अन्य प्रान्तों में भी करेंगे।" अन्त में राष्ट्रपतिजी ने निम्न-लिखित करुणामय शब्दों में हिन्दुओं से अपील की—'हिन्दुओ याद रक्खो, आप हिन्दू-राष्ट्र-दल का झण्डा ऊँचा कर, केवल अपने बताये उचित अधिकारों का उपयोग करें। प्रत्येक हिन्द अपने मत को किसी भी व्यक्ति को दे सकता है। यदि प्रत्येक हिन्दू वोट केवल हिन्दू राष्ट्रवादी को देने का संकल्प कर ले तो हिन्दुओं की सहज ही रक्षा हो सकती है। यदि हिन्दू इतना भी नहीं कर सकते और राष्ट्र-विरोधी कॉङ्ग्रेस को ही अपना वोट दें तो स्वयं ब्रह्मा भी उनकी रक्षा नहीं कर सकते।'

भाषण पढ़े जाने के पश्चात पण्डाल में नया जीवन दिखाई देने लगा। वहाँ हिन्दू-राष्ट्र की लहर प्रत्यक्ष रूप में उछलती दिखाई देती थी। सारा पण्डाल 'बन्देमातरम्' 'हिन्दू-राष्ट्र की जय', 'हिन्दुस्थान हिन्दुओं का'-आदि नारों से गूँज उठा।

'राष्ट्रीय स्वयं सेवक सङ्घ'

नागपुर-अधिवेशन के अवसर पर ३० दिसम्बर, १६३८ को नागपुर की प्रसिद्ध हिन्दू संस्था 'राष्ट्रीय स्वयं सेवक-सङ्घ' के २००० स्वयं सेवकों ने राष्ट्रपतिजी को अपनी संस्था का प्रदर्शन २०००० जन-समूह के आगे दिया। वीर सावरकर इसको देख-कर बहुत प्रसन्न हुए और उनकी संस्था को भाषण-द्वारा बहुत सराहा। इस समय यह संघ अखिल-भारतीय बन चुका है। १६२५ में विजय दशमी के पवित्र दिन इसकी स्थापना स्वर्गीय श्री डॉक्टर हेडगेवर-द्वारा हुई थी। संघ का मुख्य उद्देश हिन्दू-नव-युवकों के अन्दर संगठन तथा हिन्दुत्व-प्रेम उत्पन्न करना तथा हिन्दुओं की शारीरिक दुर्बलता को हटाकर उनको बलवान् बनाना है। इस समय संघ की शाखायें भारत के समस्त मुख्य नगरों में स्थापित हो चुकी हैं और संघ का कार्य दिन-प्रति-दिन उन्नति करता जाता है। इस समय संघ, सी० पी०, बरार, पञ्जाब, देहली, यू० पी० आदि प्रान्तों में जोर से कार्य कर रहा है। ५०० से अधिक इसकी शाखायें स्थापित हो चुकी हैं और इसके मेम्बरों की संख्या सवा लाख तक पहुँच चुकी है। प्रातः सायं हर रोज़ संघ के स्वयं सेवकों की ड्रिल कराई जाती है और भी कई खेल होते हैं। लाठी-आदि भी सिखाई जाती हैं, और फिर व्याख्यान भी दिये जाते हैं। साल में एक बार नागपुर, पूना, लाहौर, दिल्ली-

जैसे नगरों में ट्रेनिङ्ग कैम्प लगते हैं। और इसी प्रकार कार्य चलाने के लिये आदमी तय्यार किये जाते हैं। विशेष त्योहारों पर जैसे गुरु पूर्णिमा, रक्षा-बन्धन विजय दशमी, मकर संक्रान्ति-आदि को विशेष सभायें की जाती हैं और ड्रिल लाठी-आदि का प्रदर्शन होता है और हिन्दू-नव-युवकों के अन्दर उत्साह, आत्मविश्वास सैनिक जीवन-आदि गुण भरे जाते हैं। संघ के आदर्श पुरुष शिवाजी, प्रताप, गुरु गोविन्दसिंह-आदि हैं। 'महासभा' ने अपने दिल्ली के अधिवेशन (१६३२) पर एक प्रस्ताव-द्वारा इस संघ के कार्य की बड़ी प्रसन्नता की और इस संस्था के संस्थापक डॉक्टर हेडगेवर को धन्यवाद दिया तथा इच्छा प्रकट की कि उनका नागपुर में लगाया हुआ यह पौदा समस्त भारत में फैलकर विशाल-वृक्ष बन जाये। आज डॉक्टर साहिब इस संसार में नहीं हैं, पर उनका लगाया हुआ वृक्ष अपनी शाखें दूर-दूर तक फैला रहा है। संघ के वर्तमान कार्यकर्ताओं में बड़े उत्साही पुरुष हैं और आशा है कि इनकी देख-भाल में यह संघ सदा उन्नति करता रहेगा।

दिसम्बर १६३६ में 'महासभा' का इक्कीसवाँ अधिवेशन कलकत्ता में बड़ी धूम-धाम से हुआ और इसके प्रधान भी वीर सावरकर ही चुने गये। इसी प्रकार १६४० में मदुरा अधिवेशन पर फिर सावरकरजी प्रधान चुने गये यद्यपि वह बीमार थे और स्ट्रेचर पर उठाकर लाये जाते थे।

उनकी अरोग्यता का ध्यान करते हुए उनकी सहायता के लिये कलकत्ता के प्रसिद्ध नेता डॉक्टर श्यामाप्रसाद मुकर्जी प्रधान कार्यकर्ता चुने गये। १६४१ के दिसम्बर मास में 'महासभा' का तेईसवाँ अधिवेशन भागलपुर में अपने अनोखे ढङ्ग से हुआ। राष्ट्रपति वीर सावरकर पाँचवीं बार फिर प्रधान चुने गये। पर बिहार-सरकार ने अधिवेशन पर प्रतिबन्ध लगाकर उसको रोक दिया। सावरकरजी को गयाजी ही में गिरफ्तार कर लिया गया। 'हिन्दू-महासभा' के लगभग सभी मुख्य नेता और कई कार्यकर्ता जेलों में ठूँस दिये गये। पर अधिवेशन फिर भी हुआ और बड़ी शान से जेल के अन्दर भी और बाहर भी हुआ। हम इन सब बातों का विस्तार के साथ वर्णन आगे करेंगे। यहाँ इतना लिख देना काफ़ी है कि 'सावरकर युग' अभी चल रहा है। सावरकरजी इस समय भी हमारे राष्ट्रपति हैं और अब उन्होंने 'हिन्दू महासभा' को बहुत ऊँचा कर दिया है १६३६-४० में वॉयसरॉय ने उनको 'महासभा' के प्रधान के नाते से दो-तीन बार बुलाकर वर्तमान विश्व-व्यापी युद्ध तथा सुधारों-आदि पर परामर्श किया। १६३६ में धर्म-युद्ध कर हैदराबाद को नीचा दिखाया। १६४०, में मदुरा अधिवेशन पर 'डाइरेक्ट एक्शन' की चुनौती सरकार को दी और १६४१ में भागलपुर में बिहार-सरकार के विरुद्ध वह मोर्चा लिया कि 'हिन्दू महासभा' का सिर सदा के लिये ऊँचा हो

गया और जो लोग 'महासभा' पर लांछन लगाते थे कि यह सरकारी 'जी हुजूरों' की संस्था है, उनका मुख सदा के लिये बन्द हो गया। १६४२ के मार्च मास में जब बृटिश पार्लियामेंट के नेता सर स्टेफ़र्ड क्रिप्स ब्रिटिश सरकार की योजना लेकर दिल्ली आये तो वीर सावरकर को भी अन्य नेताओं के साथ-परामर्श के लिये बुलाया। इस योजना में भारत के टुकड़े करने की व्यवस्था थी। इस लिये सावरकर जी ने इसको ठुकरा दिया और उनकी आज्ञा से १० मई को समस्त देश में हिन्दू-सिख-आदि की ओर से 'अखण्ड भारत व स्वतन्त्रता दिवस' मनाया गया। आशा है, यह 'सावरकर युग' दीर्घ काल तक चलता रहेगा और इस युग में हिन्दू-जाति अपने खोये हुए अधिकारों को पुनः प्राप्त कर, फिर पहली-सी शान व मान के साथ भारतवर्ष में अपना स्वराज्य स्थपित करेगी, जिसमें सभी भारतवासी सुख से रह सकेंगे।

हैदराबाद धर्म-युद्ध के पश्चात् विश्वव्यापी योरोपीय युद्ध

सितम्बर, १६३६ में यूरोप में युद्ध आरम्भ हो गया जो बढ़ते-बढ़ते अब विश्व-व्यापी बन गया है आज जिसकी लिपटे भारत तक पहुँच गई हैं। प्रधानजी ने युद्ध आरम्भ होते ही 'महासभा' की कार्य-कारिणी की बैठक १६ सितम्बर, १६३६ में बम्बई में की। कार्यकारिणी समिति की इस बैठक ने सरकार से अनुरोध किया कि

साम्प्रदायिक निर्णय - द्वारा हिन्दुओं के साथ जो अन्याय हुआ है, उसको हटाया जाय। फौज की भर्ती में लड़नेवाली और न लड़नेवाली जातियों का भेद मिटा-कर सब को सेना में सम्मिलित होने का अवसर दिया जाये, और भारतीय फ़ौजों को वास्तविक रूप में भारतीय बनाया जाए, ताकि उनके दिल में अपने देश व जाति की रक्षा का भाव उत्पन्न हो सके। 'आर्म्ज एक्ट' (Arms Act) रद्द कर दिया जाये और कॉलिजो-आदि में लड़कों को फ़ौजी शिक्षा दी जाये। कमेटी ने हिन्दुओं से अनुरोध किया कि वह समस्त भारत में 'हिन्दू राष्ट्रीय सेनाएँ' स्थापित करें, ताकि वह समय आने पर हिन्दुओं की रक्षा कर सकें।

कॉंग्रेस उन दिनों ब्रिटिश सरकार से फिर रूठ गई थी, इसके पूर्व इसने सात-आठ प्रान्तों में अपनी सरकार बना, तीन साल तक शासन किया, पर जब इसकी .सभी बातें न मानी गईं, तो कॉंग्रेस ने अपने मन्त्रियों को आज्ञा दी कि वह अपने स्तीफे दाखिल करदें। इस प्रकार हिन्दू-प्रान्तों में तो ब्रिटिश सरकार का राज्य हो गया और मुसल्मान प्रान्तों में मुसल्मानों का। जब यूरोप में लड़ाई चली तो वॉयसरॉय ने परामर्श-आदि करने को भारत से कुछ जनता के प्रतिनिधि दिल्ली बुलाये। 'हिन्दू महासभा' के अध्यक्ष को निमन्त्रण मिला और उन्होंने हिन्दू-राष्ट्रपति के रूप में १ अक्तूबर को वॉयसरॉय से भेंट की और 'हिन्दू महासभा'

का दृष्टिकोण उनके सम्मुख रक्खा। यहाँ यह बात ध्यान रखने योग्य है कि यह प्रथम अवसर था, जबकि 'हिंदू-महासभा' के किसी प्रधान को प्रधान रूप से वॉयसरॉय ने बुलाया हो और उनसे भेंट की हो। अब 'हिन्दू महासभा' की पोजीशन वही थी, जो काँग्रेस या मुस्लिम लीग की थी। यह सब-कुछ सावरकरजी के प्रयत्नों से हुआ। मगर हमें इस पर अधिक प्रसन्न न होना चाहिये। यदि 'महासभा' में शक्ति होगी तो इसे सरकार भी बुलायेगी, काँग्रेस भी पूछेगी और मुस्लिम लीग भी पीछे फिरेगी। हिन्दुओं का कर्तव्य तो 'महासभा' की शक्ति को बढ़ाना है।

वॉयसरॉय की भेंट के पश्चात्, १ नवम्बर को कार्य कारिणी समिति की एक और बैठक हुई, इसमें पास किया कि इस युद्ध में हिन्दु-जगत् सरकार की उतनी सहायता करेगा, जितने कि इसे अपनी राष्ट्र की रक्षा और अधिकारों की रक्षा के लिये आवश्यक है। इससे अधिक सहायता देने के लिये हम तय्यार नहीं। 'सभा' ने यह भी पास किया कि यह कहना कि सरकार दुर्बल जातियों की रक्षा के लिये लड़ रही है, ठीक नहीं। युद्ध करनेवाली सभी जातियाँ अपना-अपना साम्राज्य बढ़ाने की फिक्र में हैं। 'सभा' ने भारत के वास्ते पूर्ण स्वतन्त्रता के ध्येय का स्मरण किया।

यदि युद्ध अभी जारी है। इसके पश्चात् भी कई अवसरों पर 'महासभा' ने इसके सम्बन्ध में कई प्रस्ताव

पास किये हैं और अपनी पोज़ीशन स्पष्ट करदी है। इस सम्बन्ध में राष्ट्रपतिजी को वॉयसरॉय से फिर भी एक-दो बार और भेंटे करनी पड़ीं। उनका हाल यथा-स्थान आगे लिख दिया जायेगा।

'महासभा' का २१वाँ अधिवेशन कलकत्ता, १६३६

गत वर्ष नागपुर में निर्णय हुआ था कि आगामी अधिवेशन बङ्गाल में किया जाये। इसके लिये बङ्गाल के हिन्दू-नेताओं ने बड़े ज़ोर-शोर से तैयारियाँ आरम्भ कर दीं और निश्चय किया, कि यह अधिवेशन ककलत्ता में ही हो। कलकत्ता के प्रसिद्ध हिन्दू-नेता सर मन्मथनाथ मुकर्जी को, जो कलकत्ता हाईकोर्ट के चीफ जस्टिस भी रह चुके हैं, स्वागत-कारिणी के प्रधान चुने गये और वर्तमान-काल में 'महासभा' के कार्यकर्ता प्रधान डॉक्टर श्यामाप्रसाद मुकर्जी, मिस्टर एन० सी० चटर्जी, बाबू पद्मराज जैन-आदि हिन्दू-नेता इस अधिवेशन को सफल बनाने में रात-दिन लगे रहने लगे। समस्त प्रान्त का दौरा कर, 'हिन्दू-सभा' का सन्देश बङ्गाल के कोने-कोने में पहुँचा दिया; और ऐसी जागृति हुई कि 'महा-सभा' का अधिनेशन बड़ी सफलता के साथ कलकत्ता में समाप्त हुआ।

इस बार फिर सावरकरजी को ही तीसरी बार राष्ट्रपति चुना गया। जब हॉवड़ा-रेलवे-स्टेशन पर १७ दिसम्बर को वह पहुँचे, तो वहाँ इतनी भीड़ थी कि राष्ट्रपतिजी को बाहर

निकलने में एक घण्टा लग गया। उनको पुष्पहार से लाद दिया गया और 'जय-जय' की ध्वनि से सारा स्टेशन गूँज उठा। उनके जुलूस में एक लाख के लगभग आदमी रहे होंगे। सब से आगे-आगे एक ऊँचे हाथी पर 'महा-सभा' का झण्डा लहरा रहा था और सिख-बीर तलवार लिये घोड़ों पर सवार जुलूस की रक्षा कर रहे थे। मार्ग में कोई २०० स्थानो पर सभापतिजी का सम्मान किया गया। जुलूस सभी बड़े-बड़े बाजारों में-से होता हुआ पूरे चार घण्टे के पश्चात् विलिङ्गटन पार्क में जाकर समाप्त हुआ; जिस स्थान पर कि अधिवेशन भी होना था। 'वीर सावरकर की जै' 'हिन्दुस्तान हिन्दुओं का' 'हिन्दू-धर्म की जै'-आदि नारों से आकाश गूँज उठा। २६ दिसम्बर को 'महा-सभा' का इक्कीसवाँ अधिवेशन आरम्भ हुआ और राष्ट्रपति सावरकर ने सदा की भाँति लम्बा-चौड़ा भाषण पढ़कर सुनाया।

प्रस्ताव

कलकत्ता-अधिवेशन में भी कई महत्वपूर्ण प्रस्ताव पास हुए। इनमें से कुछ निम्न-लिखित हैं:—

'अखिल-भारतीय-हिन्दू-महासभा' माँग करती है कि हिन्दुओं के समस्त मन्दिर और धर्मशाला जो तोड़-फोड़े जाकर या मस्जिद बना लिये गये हैं या किसी अन्य-कार्य में लाये जाते हों, वह सब हिन्दुओं को वापिस मिल जाने चाहिये। प्रान्तीय हिन्दू-सभाये अपने क्षेत्र के ऐसे सब

मन्दिरों व धर्म-स्थानों की सूची बनाकर सरकार से उनकी माँग करें।

'महासभा' ने इस सम्बन्ध में एक जाँच-कमेटी बनाई और सिन्ध के हिन्दुओं के लिये फण्ड भी खोला। साम्प्रदायिक-निर्णय के विरुद्ध भी एक प्रस्ताव पास किया गया।

बङ्गाल के हिन्दुओं से अनुरोध किया कि वे अपने अधिकारों-आदि की रक्षा के लिये 'महा-सभा' के झण्डे के नीचे आकर संगठित-रूप के कार्य करें। एक दूसरे प्रस्ताव में बताया गया था कि संगठन व शुद्धि इस समय हिन्दू-संसार की रक्षा के लिये अति आवश्यक है और १६ वर्ष से ४५ वर्ष के समस्त हिन्दुओं से अपील की कि वह इसमें भरती हो जावें। हिन्दू-स्वयं-सेवक-दल को 'महा-सभा' के झण्डे के नीचे आकर 'हिन्दू-क्षेत्र' में मिल जाना चाहिये, जिसके लिये एक कमेटी बना दी गई है।

वर्तमान-युद्ध के सम्बन्ध में 'महासभा' ने यह घोषणा की कि भारत की रक्षा का भार भारत तथा ब्रिटिश दोनों पर है और भारतीय अपनी रक्षा करने में समर्थ हैं, इसलिये भारत तथा समस्त अंग्रेजों में बहुत सहयोग होना चाहिये। यदि (१) सरकार भारत में उत्तर-दायित्व सरकार बना दे। (२) साम्प्रदायिक-निर्णय मिटा दे। (३) सेना-आदि में जाति का भेद-भाव मिटाकर और समस्त सेनाओं को राष्ट्रीय-रूप देकर भारतीयों को भारत की रक्षा के लिये

तैयार करे। (४) (Aams Act) में उचित परिवर्तन किया जाये। (५ यूनिवर्सिटी के लड़कों को सैनिक-शिक्षा दी जाय।

श्री महाराजा नैपाल

'महासभा' के इस अधिवेशन-द्वारा बङ्गाल के हिन्दुओं में नवीन-जगृति हुई। क्योंकि बङ्गाली-हिन्दू-भाइयों को पता होगया कि वह अकेले नहीं हैं, पर समस्त 'हिन्दू-संसार' इस समय उनके साथ है। अधिवेशन के शुभ अवसर पर हिन्दुओं के सौभाग्य से 'हिज़ हाईनेस श्री महाराजा युद्ध समशेर जङ्ग बहादुर ऑफ नैपाल' कलकत्ता में हिज़ एक्सीलेंसी दी वॉयसरॉय से भेंट करने आये, तो उनकी स्पेशल पर हिन्दू-नेताओं ने उनका स्वागत किया। महाराजा साहिब ने बहुत प्रसन्न होकर कहा—'मैं भी तुम्हारा हिन्दू भाई हूँ।' हिन्दुओं के एक-मात्र स्वतन्त्र राज्य के महाराजा के मुख से य; सहानुभूति के वचन, सुन सब का हृदय गद्गद् होगया और 'स्वतन्त्र हिन्दू-राज्य नैपाल की जै' 'महाराजा नैपाल की जै', 'हिन्दू-राष्ट्र की जै'-आदि नारों से स्टेशन गूँज उठा। ३० दिसम्बर को मि० एन० सी० चटर्जी बैरिस्टर मन्त्री स्वागत कारिणी समिति 'हिन्दू-सभा' की ओर से श्री महाराजा नैपाल को एक पार्टी दी गई, जिसमें 'हिन्दू-सभा' के सभी नेता उपस्थित थे, जो महाराजा साहब से मिलकर बड़े प्रसन्न हुए। सावरकरजी

बीमारी के कारण न आ सके तो महाराजा स्वयं उनके कमरे में गये और उनका हाल पूछा, महाराजा नैपाल ने प्रधानजी-द्वारा हिन्दू-जगत की सेवा की सराहना की, कलकत्ता-अधिवेशन के सफलतापूर्वक समाप्त होने की बधाई दी।

बङ्गाल केसरी डॉक्टर श्यामप्रसाद मुकर्जी

डॉक्टर श्यामप्रसाद मुकर्जी ने बङ्गाल के हिन्दुओं की जो सेवायें की हैं वह स्पष्ट हैं।

डॉक्टर साहब कलकत्ता के प्रसिद्ध नेता व कलकत्ता हाई कोर्ट के जज व कलकत्ता विश्व-विद्यालय के वॉयस चांसलर स्वर्गीय सर आसुतोष मुकर्जी के सुपुत्र हैं। सर आसुतोष का नाम बङ्गाल का बच्चा-बच्चा जानता है। अपने अधिकारों के लिये लड़ना, न्यायाधीश की कुर्सी पर बैठकर न्याय करना और विद्यार्थियों के प्रति सहानुभूति कर आदि गुणों के कारण वह बङ्गाल में ही नहीं, भारत-भर में बड़े सम्मान व आदर की दृष्टि से देखे जाते थे। अपने योग्य पिता के योग्य पुत्र होने के नाते डॉक्टर श्यामाप्रसाद मुकर्जी आपने पिता के समान बुद्धिमान हैं। वह भी अपने पिता के समान कलकत्ता विश्व-विद्यालय के चान्सलर रह चुके हैं और बङ्गाल के विद्यार्थी तो इनकी पूजा करते हैं। बङ्गाली हिन्दुओं के दिलों से झूँठी राष्ट्रीयता निकालकर उनमें हिन्दुत्व का प्रेम भरना अपका ही

काम था। कलकत्ता-अधिवेशन से पूर्व आपने बङ्गाल के कोने-कोने में दौरा कर महासभा का सन्देश समस्त हिन्दुओं तक पहुँचा दिया और उनको सङ्गठित कर उनमें नया जीवन भर दिया।

मदुरा-अधिवेशन पर वीर सावरकरजी की बीमारी के कारण तो आप अखिल भारतीय हिन्दू-महासभा के प्रधान कार्यकर्ता चुने गये और अब तक इस पद पर सुशोभित हैं। १६४१ में भागलपुर अधिवेशन पर जब प्रधान जी को बन्दी बना लिया गया तो आप तुरन्त भागलपुर की ओर चल पड़े, पर मार्ग में ही रोक लिये गये।

इस समय डॉक्टर मुकर्जी बङ्गाल-मन्त्रि-मण्डल के एक योग्य मन्त्री हैं ढाका-दंगे में आप वहाँ गये और वहाँ जाकर, मुसल्मानों-द्वारा लुटे और पिटे भयभीत हिन्दुओं को ढाढ़स बँधाया, हिन्दुओं की सहायता के लिये फण्ड खोले और स्वयं दिन-रात कार्य करते रहे। हिन्दू-जगत को डॉक्टर मुकर्जी से बहुत आशायें हैं।

मदुरा-अधिवेशन तथा 'डाइरैक्ट-एक्शन'

कलकत्ता अधिवेशन के अन्त में जब मद्रास प्रान्तीय हिन्दू-सभा के प्रधान श्री डॉक्टर नायडू ने आगामी महासभा के अधिवेशन को मद्रास में करने का निमन्त्रण दिया तो डॉक्टर साहब को नेताओं ने सलाह दी कि कुछ काल तक मद्रास में हिन्दू-संगठन का प्रचार कर फिर महा-सभा

का अधिवेशन करें, लेकिन डॉक्टर साहब ने निमन्त्रण स्वीकार कर लिया। और निश्चय किया कि महासभा का बाईसवाँ अधिवेशन तामिलनड के प्राचीन नगर मदुरा में होगा।

मद्रास के सोते हिन्दुओं को जगाना ज़रा टेढ़ी खीर थी। पर डॉक्टर नायडू दिन-रात न देखकर इसमें लग गये। कुछ अन्य मद्रासी सज्जनों ने भी इनका साथ दिया। नेताओं ने प्रान्त-प्रान्त के दौरे करने आरम्भ कर दिये। दो बार सावरकरजी भी वहाँ गये। 'हिन्दू सभा' के अन्य नेता भी मद्रास जाते रहे। इन सब का परिणाम यह हुआ कि मद्रास-प्रान्त में हिन्दू-संगठन के प्रचार की लहर दौड़ गई और मद्रास के हिन्दू हर प्रकार से मदुरा-अधिवेशन को सफल बनाने में लग गये।

वॉयसरॉय से दूसरी भेंट

महायुद्ध के कारण उस समय देश की अवस्था सन्तोष-जनक न थी। सरकार चाहती थी कि शत्रु का सामना करने के लिये भारतवासियों का पूरा सहयोग प्राप्त हो। इस सम्बन्ध में गाँधीजी व कॉंग्रेस के अन्य नेता वॉयसराय से कई बार भेंट कर चुके थे मुस्लिम लीग के नेता मिस्टर जिन्ना भी वॉयसरॉय से मिल रहे थे। 'हिन्दू-महासभा' के प्रधान वीर सरकार भी दिल्ली में प्रथम बार वॉयसरॉय से मिले और दुबारा शिमला में भेंट की, लौटते समय कालका-

रेलवे स्टेशन पर पञ्जाब के प्रधान मन्त्री सर सिकन्दरहयात् से उनकी अचानक भेंट हुई और दोनों नेताओं में बड़ी देर तक बात-चीत हुई। वापसी में प्रधानजी ने और भी कई स्थानों के दौरे किये।

नागपुर १० अगस्त को कार्यकारिणी की बैठक में सावरकरजी बीमारी के कारण न जा सके और उनके स्थान पर डॉक्टर मुंजे ने प्रधान बनकर सभा का कार्य किया। बम्बई में कार्यकारिणी की बैठक पर भी ऐसा ही हुआ जब डॉक्टर साहब को 'हिन्दू महासभा' का प्रधान कार्यकर्ता चुन लिया गया। २१ नवम्बर की बैठक में भी वही प्रधान बने सावरकरजी की बीमारी के कारण डॉक्टर मुंजे ने वॉयसरॉय से भेंट की।

गत वर्ष जो सिन्ध में लूट हुई थी वह अभी जारी थी, कई हिन्दू लूटे गये, कइयों के घर जला डाले गये और कई जान से मार डाले गये पर न मुसलमान नेताओं और न ही मुस्लिम जनता के दिल में ज़रा दया आई! सीमा में हिन्दुओं को दिन-रात लूटने और उनको बर्बस उठाकर ले जाने का कार्य जारी था और पूर्वी बङ्गाल के मुसलमान सदा की नाई हिन्दुओं को सता रहे थे। देश की यह अवस्था विषम थी, तभी 'महासभा' के मदुरा-अधिवेशन का समय भी निकट आगया। वीर सावरकर अभी बीमारी से न उठे थे और सभा का कार्य करने में असमर्थ थे, लेकिन फिर

उन्हीं को प्रधान चुना गया। वीर सावरकर इस्तीफ़ा देना चाहते थे, विवश होकर उन्होंने मदुरा में प्रधान बनना स्वीकार कर लिया और महाराष्ट्र के प्रतिनिधियों को साथ ले, मदुरा पहुँचे। सहस्रों नर-नारी स्वागत के लिये स्टेशन पर उपस्थित थे। सारा वायु-मण्डल 'वीर सावरकर की जय' 'हिन्दू महा-सभा की जै'-आदि नारो से गूँज उठा। सभापतिजी बीमारी के कारण उठ न सकते थे इसलिये उनको एक कुर्सी-द्वारा रथ पर बिठाकर उनका जलूस निकाला गया।

प्रस्ताव

मदुरा में भी कितने ही प्रस्ताव पास हुए। साम्प्रदायिक निर्णय के विरुद्ध फिर एक प्रस्ताव पास हुआ। दूसरे प्रस्ताव में पास किया गया कि निज़ाम को और कोई बृटिश क्षेत्र न दिया जाय। यह भी पास हुआ कि सरकार को चाहिये कि खूब योग्य पुरुषों के लिये सेना-द्वार खोलदे। हिन्दू बालकों को हिन्दू-धर्म-संस्कृति तथा इतिहास-आदि की शिक्षा देने के लिये 'महासभा' ने पास किया कि हर प्रान्त में हिन्दू-शिक्षा-बोर्ड बनाये जायें, जो इस कार्य की देख-भाल करें।

एक अन्य प्रस्ताव-द्वारा हिन्दुओं से यह अपील की गई कि वह छूत-छात का अन्त करें क्योंकि यह प्रथा हिन्दू-धर्म के पतन का एक कारण है। एक प्रस्ताव-द्वारा माननीय सभाओं से कहा गया कि जहाँ तक हो सके, प्रत्येक प्रान्त

में समुद्री, हवाई और फ़ौजी स्कूल खोले जाएँ ताकि अधिक-से-अधिक हिन्दू-युवक सैनिक बन सकें।

सभापतिजी की बीमारी के कारण डॉक्टर श्यामाप्रसाद मुकर्जी को ही आगामी वर्ष के लिये प्रधान कार्यकर्ता चुना गया।

'डाइरेक्ट एक्शन'

मदुरा-अधिवेशन सदा के लिये स्मरण रहेगा। यह प्रस्ताव इस प्रकार है—पहले तो महासभा ने इस बात पर संतोष किया कि वॉयसरॉय और भारत-मन्त्री दोनों ने यह स्वीकार कर लिया है कि देश की राजनैतिक अवस्था बिना 'हिन्दू-महासभा' के सहयोग के हल नहीं हो सकती। फिर इसी को दुहराया भी गया कि 'हिन्दू-महासभा' का ध्येय तो पूर्ण स्वतन्त्रता है और रहेगा, पर यदि तुरन्त ही भारत को वेस्ट मिनिस्टर के समान 'डोमीनियन-स्टेट्स' दे दिया जाये, तो वह उसको स्वीकार करने को तैयार है। 'महासभा' बृटिश-सरकार से अनुरोध करती है कि वह स्पष्ट शब्दों में घोषणा करदें कि वर्तमान युद्ध समाप्त होने पर भारत को 'डोमीनियम स्टेट्स' दे दिया जायेगा और इससे भारत की अखण्डता न टूटने ही पाती है और न हिन्दू-राष्ट्र के हितो तथा अधिकारों को कोई हानि ही पहुँचती है।

'महासभा' बृटिश-सरकार की इसलिये घोर निन्दा करती है कि उसने अभी तक 'पाकिस्तान'-स्कीम के विरुद्ध

कोई स्पष्ट घोषणा नहीं की है। वह सरकार से बल-पूर्वक अनुरोध करती है कि वह शीघ्र ही स्पष्ट घोषणा कर दे कि वह किसी भी अवस्था तथा रूप में 'पाकिस्तान'-स्कीम को न मानेगी। इसके पश्चात् इसी प्रस्ताव में सिन्ध, बङ्गाल व पञ्जाब-आदि में हिन्दुओं की शोचनीय दशा के उल्लेख कर, सरकार से अनुरोध किया कि वह हिन्दुओं को हर प्रकार की फ़ौजों में अधिक-से-अधिक संख्या में भरती करे। भारतीय नव-युवकों के लिये सैनिक शिक्षा आवश्यक बना दे और युद्ध-सम्बन्धी हर प्रकार के धन्धों को भारत में ही अधिक-से अधिक संख्या में बनाकर उनको बढ़ावे। प्रस्ताव के अन्त में कहा गया कि यदि बृटिश-सरकार उपरोक्त माँगों को (युद्ध बन्द होने के एक साल के अन्दर डोमेनियन स्टेट्स का दर्जा-आदि) ३१ मार्च सन् १६४१ तक स्वीकार न कर लेगी और अपनी स्वीकृति सन्तोषजनक घोषणा-द्वारा प्रकाशित न करेगी, तो 'महासभा' सरकार से सीधी टक्कर लेने का आन्दोलन जारी कर देगी।

हमारा आगामी कार्य-क्रम

उपरोक्त प्रस्ताव पास होने के पश्चात ही 'सभापतिजी' की ओर से एक और प्रस्ताव पेश हुआ, जिसमें हिन्दू-सभाओं के आगामी कार्य-क्रम का उल्लेख किया गया है। इस प्रस्ताव का पहले से घनिष्ट सम्बन्ध है और इन दोनों प्रस्तावों पर ही बहुत काल तक वाद-विवाद होता रहा।

यह प्रस्ताव इस प्रकार है—निकट-काल (आगामी वर्ष) के लिये हिन्दू-सभाओं का यह कार्य-क्रम होगा कि वह अधिक-से-अधिक संख्या मे हिन्दुओं को जल-वायु तथा पृथ्वी-सेना में भर्ती करायें, वह चेष्टा करे कि हिन्दुओं को मिलिट्री-मैशीनों के कल-पुर्जे बनाने व जोड़ने के कार्य तथा हर प्रकार के सामान बनाने को सिखाने के लिए चेष्टा करे कि वह स्कूलों में सैनिक शिक्षा की ट्रेनिङ्ग दिलवाएँ शहर व गाँवों में राम-सेना स्थापित करें, हिन्दू नव-युवकों को सेना में भर्ती करायें, ताकि वे समय पर अपने देश की रक्षा कर सकें और गुण्डों के विद्रोह से अपने भाइयों की रक्षा कर सकें। यह शर्त होनी चाहिये कि सिविल गार्डज़ हिन्दू या किसी और देश-भक्ति के आन्दोलन के विरुद्ध न करते जायें, विदेशी वस्तुओं का बाईकाट करें और देशी धन्धे चलाकर व्यापार को उन्नति दें और फिर सब से बड़ा प्रोग्राम यह है कि १६४१ में होनेवाली जन-संख्या में हिन्दुओं की जन-संख्या को ठीक-ठीक लिखा दें। पहाड़ व जङ्गल-आदि में रहनेवाले और बहु-प्रकार के मत-मतान्तरों वाले और दलित कहलानेवाले हिन्दुओं को 'हिन्दू' ही दिखा दें।

यह दोनों प्रस्ताव (१) डारेक्ट एक्शन और (२) हमारा आगामी कार्यक्रमवाले प्रस्ताव मदुरा-अधिवेशन के मुख्य प्रस्ताव हैं और यदि ऊपरी दृष्टि से देखा जाय तो यह एक

दूसरे के विरोधी भी प्रतीत होते हैं। क्योंकि यदि ३१-३-४१ तक 'महासभा' की माँगे सरकार न मानती, तो इसको सरकार के विरुद्ध सीधी टक्कर लेनी पड़ती, पर दूसरे प्रस्ताव के अनुकूल हिन्दू-सभाओं का कार्यक्रम सेना-आदि में भरती होकर युद्ध-सामग्री के बनाने में सहयोग करना है। एक दूसरे के प्रतिकूल कार्य कैसे कर सकती है, इस बात पर पत्रों तथा अन्य संस्थाओं में वाद-विवाद भी चला—जैसा कि विपक्षीय संस्थाओं मे हुआ करता है।

स्वयं राष्ट्रपति सावरकरजी ने इन दोनों प्रस्तावो की व्याख्या अपने ५-१-४१ के वक्तव्य में इस प्रकार की है—'डाइरेक्ट एकशन' के प्रस्ताव में 'महासभा' ने कुछ माँगें की हैं, जिनका यदि सन्तोष जनक उत्तर ३१ मार्च तक न मिला, तो 'महसभा' उनको पूरा कराने के लिये सरकार से सीधी टक्कर लेगी। यह माँगे सिधी टक्कर का रूप धारण करेगी और इसका उत्तर कार्य-कारिणी समिति या अखिल-भारतीय कमेटी इस तारीख के पश्चात् देगी। परन्तु सीधी टक्कर का चाहे जो रूप हो, यह निश्चय है कि दूसरे प्रस्ताव में पास किये हुए प्रोग्राम के विरुद्ध कदापि नहीं हो सकता। 'महासभा' की नीति तो यह है कि हिन्दू युद्ध के अवसर से लाभ उठायें और अपने-आपको फौजीकरण तथा औद्योगीकरण के कार्यों में लगा दे।

वॉयसरॉय से पत्र-व्यवहार

मदुरा-अधिवेशन के पश्चात् प्रधानजी ने वॉयसरॉय-हिन्द से पत्र-व्यवहार 'डाइरेक्ट एक्शन' प्रस्ताव तथा 'महासभा' की अन्य माँगों के सम्बन्ध में आरम्भ कर दिया। इसके कुछ परिणाम नीचे दिये जाते हैं—

(१) 'महासभा' की माँग (डोमीनियन स्टेटूस) की थी। यह माँग भारत-मन्त्री, वॉयसरॉय तथा पार्लियामेण्ट ने भी स्वीकार करली और इसकी दो घोषणायें हो चुकी थीं।

(२) दूसरी माँग यह थी कि (डोमीमियन स्टेटूस) युद्ध बन्द होने के एक वर्ष के अन्दर स्थापित किया जाय। इसका उत्तर वॉयसरॉय की ओर से यह था कि बृटिश-सरकार युद्ध के बाद शीघ्रातिशीघ्र भारत में (डोमिनियन-स्टेटूस स्थापितकर देगी—इसमें कोई संदेह न करना चाहिये।

(३) तीसरी माँग भारत की अखण्डता रखने की थी, इसका उत्तर यह दिया गया कि अब भारत-मन्त्री ने भी इसको स्वीकार कर लिया है। सिंध के गवर्नर व बम्बई के प्रसिद्ध अर्ध-सरकारी-पत्र 'टाइम्स ऑफ इण्डिया' ने भी इसके विरुद्ध लिखा है। इसलिये समझना चाहिये कि सरकार 'पाकिस्तान' के विरुद्ध है।

(४) सरकार ने 'महासभा' की बात मानकर सैनिक व ग़ैर-सैनिक जमायतों के भेद भुलाकर सेना के दरवाज़े सब के लिये खोल दिये हैं। एक लाख की नई फ़ौज में साठ

हज़ार हिन्दू भरती किये गये हैं और उनको सब प्रकार की शिक्षा दी जाती है। स्कूलों व कॉलेजों में सैनिक-शिक्षा बताने के पक्ष को सरकार सोच रही है। वॉयसरॉय ने सीमा, सिन्ध, पंजाब, बंगाल-आदि में हिन्दुओं की अल्प-संख्या का वचन दिया है और मुसल्मानों की बहुत-सी माँगें, जो हिन्दुओं के लिये घातक व अनुचित थीं—को भी ठुकरा दिया है और मुस्लिम लीग की ५० प्रति-शत की माँग को भी अस्वीकार कर दिया है। युद्ध-सामग्री बनाने व युद्ध-सम्बन्धी सैनिक-कारखानों में हिन्दुओं को उचित संख्या में लिया जा रहा है।

कार्य-कारिणी व अखिल भारतीय महा-समिति की बैठक

'डाइरेक्ट एक्शन'-प्रस्ताव स्थगित

'डाइरेक्ट एक्शन' प्रस्ताव पर विचार करने के लिये हिन्दू 'महासभा' की कायकारिणी की एक बैठक नागपुर में १०-३-४१ को हुई, पर तब तक वॉयसरॉय का उत्तर न आया था, इसलिये ११-३-४१ को दूसरी बैठक बम्बई में हुई, उस दिन वॉयसरॉय का उत्तर आगया था, उसमें पास किया गया कि अभी अवधि ३१ मार्च तक है, उस समय तक प्रतीक्षा की जावे और इस समय जैसी परिस्थिति हो किया जावे। ३१ मार्च की अवधि समाप्त होने पर १३-४-४१ को नागपुर में कार्य कारिणी की बैठक हुई। प्रधानजी ने

वॉयसरॉय के पत्र सुनाये और माँग की कि इस महत्वपूर्ण प्रश्न का निर्णय अखिल भारतीय कमेटी पर छोड़ दिया जाये। कमेटी ने यह राय मान ली और १४ जून को कार्य कारिणी-कमेटी और १५ जून को अखिल भारतीय कमेटी की बैठक कलकत्ता में रखीं। अखिल भारतीय कमेटी ने बहु-सम्मति से पास किया कि वॉयसराय के उत्तरों को देखते हुए 'डाइरेक्ट एक्शन' को स्थगित किया जाय। प्रान्तीय हिन्दू-सभाओं को अखिल भारतीय कार्यकारिणी समिति की स्वीकृति लेकर अधिकार होगा कि वह अपने शहर या प्रान्त के किसी प्रश्न को लेकर सरकार से सीधी टक्कर ले सकती है। कलकत्ता में बैठक को आरम्भ करते समय सभापति वीर सावरकर ने कहा, 'इस समय योरोप में और संसार के अन्य भागों में घोर युद्ध हो रहा है और इससे भारत दोनों ओर से घिर गया है। भारत के अन्दर ढाका-आदि में फसाद हो रहा है. लोग कहते हैं कि सर्वदा आगे बढ़ना वीरता है। मैं भी इसको मानता हूँ, पर यदि पीछे हटने से लाभ हो तो हमें अवश्य पीछे हटना चाहिये। यह समय 'डाईरेक्ट एक्शन' का नहीं। हमें अपना लाभ देखना है, दूसरों को बातें करने दो। मदुरा-अधिवेशन से अब तक हाल बदल चुके हैं, जेल जाने से कोई लाभ न होगा। कॉग्रेस की ओर देखो, उसने इस समय जेल जाकर क्या लाभ उठाया?' 'डाईरेक्ट एक्शन' को स्थगित करने

के प्रस्ताव को डॉक्टर मुंजे ने पेश किया, जिसका समर्थन डा० श्यामप्रसादजी ने किया और अधिक वोटो से सरकार से अधिक टक्कर लेने का प्रस्ताव स्थगित्त किया गया।

सभापतिजी का वक्तव्य

२५–६–४१ को सभापति श्री सावरकरजी ने एक वक्तव्य-द्वारा 'डाईरेक्ट-एक्शन' स्थगित करने की व्याख्या इस प्रकार की, "बहुत से लोग 'डाईरेक्ट एक्शन'–स्थगित करने-वाले प्रस्ताव पर मन-माने विचार प्रकट कर रहे हैं और जनता को धोखे में डाल रहे हैं, इसलिये 'हिन्दू-सभाओं' को सच्चा मार्ग दिखाने के लिये मैं इस सम्बन्ध में बहुत ही बातें स्पष्ट कर देना चाहता हूँ।

(१) सब से प्रथम हमें निम्न-लिखित बातों का ध्यान रखना आवश्यक है। (a) कलकत्तावाला प्रस्ताव मदुरा-वाले प्रस्ताव को रद्द नहीं करता। (b) यह केवल सरकार से आगामी विधान के सम्बन्ध में सीधी टक्कर लेने को स्थगति करता है। (c) यदि आवश्यकता हो, तो किसी दूसरे विषय में अब भी सरकार से टक्कर ली जा सकती है। (d) प्रान्तीय सभाओं को अधिकार दे दिया गया है कि वह जहाँ-कही भी हिन्दू-हितों के लिये अवश्यक समझें, सीधी टक्कर ले सकती हैं।

(२) कॉग्रेसी विचारों के बहुत से आदमी कहते हैं कि 'हिन्दू-महासभा' के आदमी जेल जाने से डरते हैं। यह

बात बिल्कुल असत्य है। 'डाईरेक्ट एक्शन' का अर्थ केवल जेल जाना नहीं है। हिन्दू-हितों व अधिकारों के लिये हम सभी नियम काम में ले सकते हैं। हम गाँधीजी की अहिंसा को भी नहीं मानते। हमें तो केवल 'हिन्दू-हितों' की रक्षा करना है।

(३) हम तो शत्रु को अधिक-से-अधिक हानि पहुँचाने की नीति पर चलते हैं, हम कभी आगे बढ़ेंगे। कभी पीछे हटेंगे। जिसमें हिन्दुओं का हित होगा, वही करेंगे।

(४) हमने सरकार से माँग की थी कि युद्ध बन्द होने के साल के भीतर भारत को डोमेनियन स्टेटस दे दिया जाय। सरकार ने इतना तो मान लिया है कि युद्ध समाप्ति के बाद शीघ्र ही डोमेनियन स्टेटस दे दिया जायेगा। इसी आधार पर तथा युद्ध की परिस्थिति जो कि गवर्नमेण्ट के लिए भयंकर संकट है—को देखते हुए ही हमें अगला क़दम उठाना चाहिये।

(५) हिन्दू-हितों को सामने रखकर, अखिल भारतीय समिति ने कलकत्ता में वही प्रस्ताव पास किया जो हिन्दुओं के लिये अति लाभदायक था।

(६) इस पर भी यदि कोई प्रान्तीय या लोकल प्रश्न सामने आ जाये, तो हिन्दू-सभावाले पीछे हटने को तैयार नहीं। हैदराबाद-धर्म युद्ध में 'हन्दू-सभा' ने वह काम किया, जिसकी आज तक सब प्रशंसा कर रहे हैं। सिन्ध के दंगे

के समय 'हिन्दू-सभा' वालों ने अपनी जान की बाजी लगाकर हिन्दुओं की रक्षा की। जन-गणना में हिन्दू-सभाओं ने बड़ा उत्साह दिखाया। ढाका, अहमदाबाद, मदुरा, बिहार शरीफ़, बम्बई-आदि जहाँ-जहाँ भी मुसलमानों ने हिन्दुओं पर अत्याचार किये, वहीं 'हिन्दू-सभा' वालों ने उनकी सहायता की और काँग्रेस इन सभी मामलों में आनन्द से चुप बैठी तमाशा देखती रही।

(७) फिर यदि हम 'हिन्दू-संगठन' के प्रचारक अभी तक कोई बड़ी अखिल भारतीय तहरीक नहीं चला सके, तो इसके लिये 'हिन्दू-संगठनवादी' जुम्मेवार नहीं, क्योंकि वह तो जो उनसे बन पड़ता है, हिन्दुओं की रक्षा का उपाय कर रहे हैं।

यह मदुरा के 'डाइरेक्ट एक्शन' का ड्रापसीन है। हम अब इस पर अधिक लिखना नहीं चाहते, केवल इतना ही कहेंगे कि हिन्दू अपने योग्य नेता राष्ट्रपति पर पूरा-पूरा विश्वास रखते हैं और रखना चाहिये। हर मनुष्य किसी-न-किसी समय ग़लती कर ही बैठता है, यह मानकर जो सज्जन कलकत्तावाले प्रस्ताव से असन्तुष्ट हैं, उनको भी किसी नेता की योग्यता तथा ईमान्दारी पर सन्देह न करना चाहिये। इस समय 'हिन्दू-सभा' की बागडोर वीर सावरकर-जैसे अद्वितीय नेता के हाथ में है, उनका बलिदान, उनकी चतुरता, उनकी सूझ, उनका कार्य करने व

परिस्थिति समझने की शक्ति-आदि सभी बातें सराहनीय व अद्वितीय हैं। वह जो सम्मति देंगे, हिन्दुओं के लाभ के लिये ही देंगे, यह विश्वास कर हमें उनकी आज्ञा का पालन करना ही अपना परम कर्तव्य समझना चाहिये।

जन-गणना १६४१

हम ऊपर लिख आये हैं कि १६३१ की जन-गणना के समय काँग्रेस ने जनता को सलाह दी कि वह सरकार से जन-संख्या लिखवाने में सहयोग न करें। परिणाम यह हुआ कि बहुत से हिन्दुओं ने तो इस आज्ञा को मानकर अपनी गणना न कराई, पर मुसल्मान तो काँग्रेस की बात नही मानते, उन्होंने अपनी गणना बढ़ाकर लिखवाई। हिन्दू कुछ आगे ही कम हो रहे हैं और कुछ स्वयं ही घट गये। असेम्बली व कौन्सिलों-आदि में जब जन-संख्या-आदि के अनुकूल प्रतिनिधत्व मिला, तो हिन्दू घाटे में रहें। १६४१ में जन-गणना फरवरी मास से होनी थी। वीर सावरकर व हिन्दू-सभा के नेता चाहते थे कि १६३१ वाली गलती फिर न हो, इसलिये वह पहिले ही क्षेत्र में कूद पड़े। राष्ट्रपतिजी ने कई सर्कूलर निकाले। फरवरी मास का प्रथम सप्ताह सारे देश में 'जन-गणना'-सप्ताह मनाया गया। हिन्दुओं को उनका कर्त्तव्य बता दिया गया। पत्रों में लेख लिखे, सभायें-आदि की गई और 'हिन्दू-सभा' के कार्यकर्ता घर-घर जाकर हिन्दुओं की गणना लिखवाते, कई स्थानों

पर मुसल्मान-लेखकों ने इतनी चालाकियाँ कीं कि अनपढ़ों को बर्बस मुसल्मान लिख देते। किसी जगह कम संख्या लिखते या किसी जगह बिल्कुल ही न जाते। 'हिन्दू-सभा' वालों को जहाँ पता चलता, वहीं जाकर ठीक करवाते। सरकार ने भी बहुत से हिन्दुओं को ग़ैर हिन्दुओं में लिखने की प्रथा बनाई, पर वह ठीक कराई गई। हिन्दू-सभा, उस व्यक्ति को हिन्दू मानती है, जो समस्त भारत-भूमि को अपनी पितृ-भू और पुण्य-भू मानता है।

ढाका में हिन्दुओं पर मुसल्मानों का अत्याचार

'हक' मन्त्री-मण्डल के समय से ही मुसल्मानों ने बंगाल में घोषणा करनी आरम्भ कर दी कि बंगाल पर अब मुसल्मानों का राज्य हो गया है। मुस्लिम-सरकार और मुस्लिम-जनता ने हिन्दुओं पर कई अत्याचार किये। उनको कुचलने के लिये कड़े-से-कड़े क़ानून बनाये। नौकरियों से उनको निकालकर बाहर किया और उनको अपने धार्मिक त्यौहार मनाने में बाधा डाली गई। कई जगह तो मन्दिर भी गिरा दिये गये और मूर्तियाँ तोड़ दीं गईं। मुस्लिम-सरकार ने उनको रोकने की बजाय उत्साहित किया। जिसका प्रतिफल यह हुआ कि कुछ गुण्डे मुसल्मानों का जत्था 'पाकिस्तान जिन्दाबाद'-आदि के नारे लगाते थे, उनके साथ और मुसल्मान भी मिल गये और पाँच-पाँच, छः-छः हज़ार के जत्थे बनाकर, हिन्दुओं को गाँव-गाँव में

लूटने लग गये, कई मन्दिर तोड़ डाले गये। नारायणगञ्ज के क्षेत्र में कई हिन्दू मारे गये, उनके घर जलाये गये, स्त्रियों को बेइज्जत किया गया और सब-कुछ लूटकर उनको कंगाल कर दिया, कई बलात्कार मुसल्मान बना लिये गये, आस-पास सब मिलाकर २५००० हिन्दू बे घर-बार हो गये। दस हजार हिन्दू भागकर त्रिपुरा की शरण में पहुँचे। चार हजार सर संगड़ी और कई हजार ढाका, नारायणगञ्ज-आदि दूसरी जगहों में फिरने लगे। यह लूटमार एक मास से अधिक समय तक होती रही और ऐसा प्रतीत होता था कि अब अंग्रेजी राज्य का भय इस क्षेत्र में नहीं रहा। 'हिन्दू महासभा' के कार्यकर्ता प्रधान डॉक्टर श्यामप्रसाद मुकर्जी तुरन्त घटना-स्थल पर पहुँचे और शरणार्थियों की हर प्रकार से सेवा में लग गये, उनके साथ 'हिन्दू सभा' के और कार्यकर्ता भी वहाँ गये। उनकी सहायतार्थ फण्ड खोल दिये गये और दुखी हिन्दुओं को अपने घर बसाने में सहायता दी। जाँच-कमेटी बना दी गई, पर कॉंग्रेस सदा की भाँति चुप रही।

दंगे-फसादों की भरमार

ढाका का दङ्गा अभी शान्त भी न होने पाया था कि हिन्दू अपने दुखी भाइयों के दुखों से दुखी होकर, उनसे जो कुछ बन पड़ता था, उनकी सहायता कर रहे थे कि मुसल्मानों ने भारत की दूसरी जगहों पर भी आक्रमण

आरम्भ कर दिये। महात्मा गाँधी ने अहमदाबाद रहकर वहाँ अहिंसा का प्रचार ख़ूब किया था, मिल मालिकान तथा हज़ारों मज़दूर इनके भक्त थे। महात्माजी कहा करते हैं कि अहिंसा कायरों का नहीं, परन्तु शक्तिशाली पुरुषों का शस्त्र है, परन्तु साधारण जनता में तो यह कायरता ही फैलाती है। इसका प्रमाण यह है कि जब मई मास में मुसल्मानों ने अहमदाबाद में फ़साद कर हिन्दुओं को लूटना और मारना आरम्भ कर दिया, तो महात्मा गाँधी के अनुयायी हट्टे-कट्टे मिल-मज़दूर इतने वीर बने कि एक लाख के क़रीब शहर छोड़कर भाग गये। यदि वही मज़दूर आपस में संगठित होते, तो वह न-केवल अपनी ही जान बचाते, बल्कि दूसरों की रक्षा भी करते। हिन्दुओं की दूकानें लूट ली गईं, कई मारे गये और लाखों-करोड़ों की हानि हुई। अहमदाबाद के उपरान्त मुसल्मानों ने बम्बई, कानपुर, जब्बलपुर, बिहार-शरीफ़-आदि में दंगे किये और सदा की भाँति हिन्दुओं को लूटा और मारा। यदि कोई उनके सहायक थे, तो केवल 'हिन्दू-सभा' के कार्यकर्ता। काँग्रेस ने तो हिन्दुओं की सहायता करना अपना कर्तव्य ही नहीं समझा है।

बिहार-शरीफ में हिन्दुओंने मुसल्मान गुण्डों का सामना किया, तो मुसल्मान दौड़े-दौड़े महात्माजी के पास गये। महात्माजी, जो अब तक हिन्दुओं की दुर्दशा देखकर मौन

सादे बैठे हुऐ थे, पिघल गये। हिन्दुओं के नाम फ़रमान निकाल दिया कि 'उन्होंने बहुत बुरा किया, उन्हें अपने आप को पुलिस के हाथ सौंप देना चाहिये।' वास्तव में कॉंग्रेस की सब से बड़ी दुर्बलता हर बात में मुसल्मानों पर निर्भर रहना है। जो व्यक्ति या समाज अपने आप में आत्म-विश्वास नहीं रखते और सदा अपनी सहाता के लिये दूसरों का मुँह ताका करते हैं, वह कभी सफलता प्राप्त नहीं कर सकते। कायरता, झूठ, छल, कपट आलसी-आदि सभी दोष उनमें शीघ्र ही आ जाते हैं। यह प्रकृति का नियम है।

भागलपुर-अधिवेशन की तैयारी

अखिल भारतीय 'हिन्दू-महासभा' के विधानानुसार महासभा का वार्षिक अधिवेशन दिसम्बर, १९४० में मदुरा में हुआ, जिसमें निर्णय हुआ था कि आगामी 'महासभा' का तेईसवाँ अधिवेशन विहार-प्रान्त के किसी नगर में, जो स्वागत-कारिणी नियत करेगी, दिसम्बर, १९४१ की बड़े दिनों की छुट्टियों में होगा। ऐसा निर्णय हर वार्षिक अधिवेशन पर हर साल हुआ ही करता था, इसलिये जब आगामी अधिवेशन विहार में करने का निश्चय हुआ, तो किसी के ध्यान मे भी यह बात न आई कि आगामी अधिवेशन 'महासभा' के इतिहास में एक स्मृति-अधिवेशन रहेगा और बिहार में 'हन्दू-महासभा' एक कड़ी परीक्षा में उत्तीर्ण होकर अपना मस्तक सम्मान के साथ ऊँचा कर

सकेगी। ख़ैर, बिहार-प्रान्त में नियमानुसार स्वागत कारिणी समिति बनी और इसके नेताओं ने कई स्थान देखकर निश्चय किया कि आगामी अधिवेशन भागलपुर में बड़े दिनों की छुट्टियों में किया जाय और इसके लिये कार्य आरम्भ कर दिया।

भागलपुर में अधिवेशन होने की घोषणा के पश्चात् न-मालूम बिहार-सरकार के कार्यालयों में इसकी क्या खिचड़ी पकती रही और प्रान्त के विशेषकर भागलपुर के सहकारी अफ़सर न-मालूम इस पर क्या सोच-विचार करते रहे। हाँ हमें इतना ही ज्ञात हो सका कि बिहार-सरकार ने, १६ मई, १६४१ को कमिश्नर साहब भागलपुर को लिखा कि वह भागलपुर के हिन्दू-नेताओं से कहें कि बिहार-सरकार 'महासभा' के वार्षिक अधिवेशन को बड़े दिनों में भागलपुर में करने के विरुद्ध है, क्योंकि २१ दिसम्बर से मुसल्मानों की बकराईद होगी और डर है कि कहीं 'हिन्दू-मुस्लिम-' दंगा न हो जाय! मन्त्री स्वागत-कारिणि ने उत्तर दिया कि उनकी कमेटी को इस सम्बन्ध में निर्णय करने का कोई अधिकार नहीं है और उन्होंने यह सब मामला बिहार-प्रान्तीय 'हिन्दू-सभा' को सौंप दिया कि वह इसको 'अखिल भारतीय महासमिति' की बैठक में, जो जून मास में कलकत्ता होनेवाली है, रक्खें। यह मामला जब कलकत्ता में पेश हुआ तो वहाँ सर्व-सम्मति से पास हुआ

कि भागलपुर-अधिवेशन २५ दिम्बर से २७ दिसम्बर तक भागलपुर में ही कर दिया जाये। २६ सितम्बर को विहार-सरकार ने घोपित किया कि 'डिफेंस ऑफ इण्डिया रूल्ज़' के नियम ५६ के अनुसार विहार-सरकार ने निश्चय कर लिया है कि १ दिसम्बर, १६४१ से लेकर १० जनवरी, १६४२ तक 'अखिल भारतीय हिन्दू-महासभा' का अधिवेशन न भागलपुर और न ही मुँगेर, पटना, गया, शाहबाद, मुज़फ्फ़रपुर और छः अन्य जिलों के किसी भी स्थान पर करने की आज्ञा न दी जायेगी। कारण यह बताया गया कि बकराईद के दिन समीप होने से हिन्दू-मुस्लिम फ़साद का भय है। इससे पहले भी कई फ़साद हो चुके हैं और सरकार इस युद्ध के समय पर्याप्त पुलिस का प्रबन्ध करने में असमर्थ है। बिहार-सरकार की यह घोषणा पढ़कर लोग अचम्भे में रह गये, पर 'महासभा' के प्रधान वीर सावरकर निराश नहीं हुए और जैसा कि पाठकों को आगे विदित होगा, गवर्नर-बिहार से पत्र-व्यवहार करते रहे। अन्त में कार्य-कारिणि समिति की बैठक दिल्ली में अक्तूबर मास में हुई और इसमें सर्व-सम्मति से पास किया गया कि 'महासभा' का २३ वाँ अधिवेशन २४, २५, २६, २७ दिसम्बर, १६४१ को भागलपुर में ही किया जाय और इसकी सूचना बिहार-सरकार को देदी गई। 'महासभा' के नेताओं ने अनुभव किया कि यदि इसी

प्रकार 'महासभा' के कार्य में रोड़ा अटकाया जाने लगा, तो 'महासभा' एक मुर्दा-सी संस्था होगी। यदि पीछे हट गई, तो इसकी आवश्यकता ही क्या है? बिहार-सरकार की यह रोक सर्वथा अन्याय पर थी और यही रोक 'महासभा' के जीवन-मरण का प्रश्न बन गई। 'महासभा' के नेताओं ने इसका उचित उत्तर दिया और सहस्रों नेता व कार्यकर्ता हँसते-हँसते जेल चले गये। इनमें राजे तथा ज़मींदार, रायबहादुर और रायसाहब, सर की उपाधि पानेवाले नाईक, लेफ्टिनेएट, सरकार के मन्त्री, मैजिस्ट्रेट, बैरिस्टर, वकील, डॉक्टर, वैद्य, कौंसिलों तथा असेम्बलियों के मेम्बर, पत्रकार तथा साहूकार-हर प्रकार के मनुष्य थे। मदुरा-अधिवेशन के 'डाईरेक्ट एक्शन' वाले प्रस्ताव को स्थगित करते समय जो अभिलाषायें हिन्दू नव-युवकों के हृदयों में शेष रह गईं थीं वह भागलपुर में पूरी हो गईं।

सावरकर और बिहार-गर्वनर का पत्र-व्यवहार

हम पाठकों को इधर-उधर की बातों में लगाकर उनके सम्मुख वह पत्र-व्यवहार रखते हैं, जो भागलपुर-अधिवेशन के सम्बन्ध में हिन्दू-राष्ट्रपति वीर सावरकर, व हिज़ ऐक्सीलेंसी सर थाम्स अलेग्ज़ेण्डर स्टीवर्ट गवर्नर बिहार में हुई। जिससे स्पष्ट हो जायेगा कि 'हिन्दू-राष्ट्रपति' बिहार-सरकार की सभी उचित बातें मान लेने को तैयार थे और सरकार से कोई टक्कर न लेना चाहते थे, पर जब सब

प्रकार से निराश हो गये, तो हिन्दू-जाति तथा 'महासभा' का मान रखने के लिये, उनको सरकार से टक्कर लेनी ही पड़ी। यह पत्र-व्यवहार राष्ट्रपतिजी के २५ सितम्बर के पत्र से आरम्भ हुई और गवर्नर-बिहार के ५ दिसम्बर के पत्र से समाप्त हुई। इसमें १२ पत्र व तारे हैं। इसको बिहार-सरकार ने पहली जनवरी, १९४२ को; प्रधान, 'हिन्दू-सभा' की सम्मति लेकर प्रकाशित किया। यह पत्र-व्यवहार प्रकाशित करने के साथ ही बिहार-सरकार ने अपनी सफाई में एक बड़ा लम्बा प्रेस-नोट भी निकाला है। हम इस नोट को पाठकों के सम्मुख बाद में रक्खेंगे। पहले पत्र-व्यवहार पढ़ें। राष्ट्रपति सावरकर २५ सितम्बर, १९४१ को बम्बई से गवर्नर-बिहार को लिखते हैं—

मैं आशा करता हूँ कि (Your excellency) शीघ्रता में उचित ढङ्ग से न लिखे हुए मेरे इस पत्र को प्राप्त करके किसी प्रकार की शङ्का न करेंगे। काम बहुत आवश्यक है, इसीलिये ऐसा करना पड़ा है।

मुझे अभी भागलपुर (बिहार) में होनेवाले अखिल भारतीय 'हिन्दू-महासभा' के अधिवेशन की स्वागतकारिणी समिति के मन्त्री की रिपोर्ट मिली है कि भागलपुर के कमिश्नर साहिब ने मुँहजबानी कार्यकारिणी को सूचित किया है कि 'महासभा' का अधिवेशन उत्तरीय बिहार के किसी भी स्थान पर न करना चाहिये और विशेषकर

भागलपुर में तो उसको करने का विचार भी न करना चाहिये; क्योंकि यहाँ की साम्प्रदायिक परिस्थिति बहुत बुरी है। मैंने आज ही पत्रों में भी ऐसी ही चीज़ पढ़ी हैं, इसलिये मैंने शीघ्रता की कि आपको विश्वास दिला दूँ कि जहाँ तक 'हिन्दू-महासभा' का सम्बन्ध है, वहाँ तक वह साम्प्रदायिक परिस्थिति को किसी प्रकार भी ख़राब करने का प्रयत्न न करेगी। अधिवेशन भागलपुर में होने देने में सरकार को किसी प्रकार का विचार न करना चाहिये। यदि सरकार को यह सन्देह है कि 'महासभा' के लोग अपनी प्रतिज्ञा भंग कर कार्य करेंगे, जिससे यहाँ की साम्प्रदायिक दशा ख़राब होने का भय है, तो मैं सरकार से उसके प्रमाण का कारण माँगता हूँ कि सरकार ने ऐसा सन्देह क्यों किया? मैं फिर कष्ट देता हूँ कि 'महासभा' के नेता कोई भी ऐसा कार्य न करेंगे, जिससे किसी अन्य को शिकायत हो, यदि हिन्दुओं को अपमानित करने की चेष्टा न की गई और यदि दूसरों को प्रसन्न करने के लिये इनके सर्व-प्रथम अधिकार न कुचले गये, तो हिन्दू भी सब को प्रसन्न रखने की चिन्ता करेंगे।

इस समय मैं यह भी बता देना उचित समझता हूँ कि उत्तरदायी सहयोग के सिद्धान्त को बर्तते हुए 'हिन्दू-महासभा' वर्त्तमान युद्ध आरम्भ होने के समय ही से सरकार को भारत-रक्षा में सहायता दे रही है और इसके द्वारा

सहस्रों हिन्दू-युवक सरकार की हर प्रकार, की सेना में भरती होरहे हैं।

सौभाग्य से अभी तक कमिश्नर साहिब भागलपुर ने-लिखकर कोई आज्ञा नहीं दी और न आप अधिवेशन पर प्रबन्ध लगाने की कोई बात ही कही। इसलिये आप कमिश्नर साहिब की जबानी कही हुई आज्ञा को वापस लेलें। यदि कोई दूसरा कारण हो, तो अधिवेशन की तारीखें उचित समय के लिये बदली जा सकती हैं। मुझे पूरी आशा है कि आप मेरे इस पत्र का उत्तर शीघ्र देंगे और मेरी उपरोक्त लिखी बातों को शीघ्र मानेंगे।

(ह०) वी० डी० सावरकर,

प्रधान, 'हिन्दू-महासभा'

बिहार-गवर्नर का उत्तर

२ सितम्बर, १९४१

डीयर मिस्टर सावरकर,

मुझे हिज़ ऐक्सीलेन्सी ने आज्ञा दी है कि मैं आपके २९-८-'४१ वाले पत्र की पहुँच स्वीकार करूँ। आपका पत्र पहुँचने से पहले ही 'डिफेंस ऑफ इण्डिया'-रूल्स, के ५६ नियमों के अनुसार सरकारी आज्ञा के द्वारा भागलपुर तथा ६ अन्य ज़िलों में कॉन्फ्रेन्स करने पर पहली दिसम्बर, १९४१ से १० जनवरी, १९४२ तक प्रतिबन्ध लगा दिया गया है। सरकार ने एक विज्ञप्ति भी निकाली है, जिसमें

सब कारण भी बतलाये गये हैं कि यह प्रतिबन्ध लगाना क्यों आवश्यक था।

हिज़ ऐक्सीलेंसी को खेद है कि उनको उपरोक्त आज्ञा निकालनी आवश्यक होगई। यदि बिहार के हिन्दू-नेता यह न कहते कि वह इस बात को तब तक 'अखिल-भारतीय कमेटी' में न ले जायेंगे, जब तक नियमानुसार उनको लिखकर कोई आज्ञा न दी जायगी, तो गवर्नर महोदय मुझे पत्र-व्यवहार कर, इस प्रश्न को सुलझाने का प्रयत्न करते, जिसकी महक आपके पत्र में आ रही है। सरकार ने यह आज्ञा निकालकर कोई नया पग नहीं उठाया है, क्योंकि भागलपुर के हिन्दू-नेताओं को तो जून मास ही में बता दिया था कि भागलपुर में अधिवेशन करने में भय है।

ऐक्सलेंसी ने अधिवेशन की तारीखों के परिवर्तन पर ग़ौर किया और वह भी इस बात का स्वयं विचार कर रहे थे, किन्तु भागलपुर के नेताओं ने इसे अस्वीकार कर दिया। गवर्नर साहिब ने आज्ञा दी कि यदि १० जनवरी और २० जनवरी के भीतर अधिवेशन स्वीकार कर लिया जाय और इस काल में कोई ऐसी घटना न हो कि जिससे साम्प्रदायिक-परिस्थिति बिगड़ गई हो, सरकार को कोई आपत्ति न होगी।

(ह०) डब्ल्यू० जी० लेंसी०

प्राईवेट सेक्रेट्री,

इसके उत्तर में प्रधान 'हिन्दू-महासभा' ने गवर्नर-बिहार को निम्न-लिखित पत्र ३-१०-४१ को लिखा—

मुझे और ऐक्सीलेंसी के सेक्रेट्री का वह पत्र जो उन्होंने आपकी आज्ञानुसार ३० सितम्बर को भागलपुर में 'हिन्दू-महासभा' के आगामी अधिवेशन के सम्बन्ध में लिखा है—मिला।

'महासभा' के अधिवेशन को रोकने के बजाय सरकार उस गिरोह को रोकती, जिस पर सरकार को सन्देह है कि बरबस दूसरों को क़ानूनी अधिकार न बरतने देंगे। ऐसी नीति गुण्डों को उत्साहित करती है और क़ानून पर चलने वाले मनुष्यों का विश्वास सरकार से खो देती है।

तारीख़ बदलने पर ग़ौर किया गया है इस सम्बन्ध में, मैं एक बात और सपष्ट कर देना चाहता हूँ कि यदि 'महासभा' को अधिवेशन पहली जनवरी, १९४२ से करने की आज्ञा दी जाये, तो सरकार को कोई आपत्ति न होनी चाहिये। इससे 'हिन्दू-सभा' वालों का यह लाभ होगा कि वह कुछ बड़े दिनों की छुट्टियों तथा कुछ शनि व रविवार की छुट्टियों का लाभ भी उठा सकेंगे। बकराईद तो ३० दिसम्बर तक समाप्त हो जायगी।

मुझे विश्वास है कि सरकारी आज्ञा में जो १० जनवरी तक की रोक लिखी गई है वह इत्तफ़ाक़न लिखी गई है क्योंकि यदि सार्वजनिक दंगे का विचार किया जाय, तो

इसकी सम्भावना हर काल और भारत के हर स्थान में सदैव ही रहती है और वह तो १० जनवरी के पश्चात् भी रहेगी और यदि आवश्यकता हो, तो मुझे तार-द्वारा दिल्ली सूचना देदी जाय।

यह बड़े दुर्भाग्य की बात होगी, कि भारत-रक्षा-क़ानून ही भारत की रक्षा के विरुद्ध बरता जाय। 'अखिल भारतीय संस्थाओं में 'हिन्दू-महासभा' ही एक ऐसी संस्था है, जो उत्तरदायी सहयोग के सिद्धान्त के अनुसार भारत-रक्षा में सरकार का साथ दे रही है।

मुझे आशा है कि आप मेरी यह बात कि 'महासभा' का अधिवेशन पहली जनवरी, १९४२ से भागलपुर में हो सके, मान लेंगे और मुझे इसकी स्वीकृति का उत्तर शीघ्र देंगे।

(हस्ताक्षर) वी डी० सावरकर

प्रधान, 'हिन्दू-महासभा'

बिहार-सरकार का उत्तर

बिहार गवर्नर केम्प,

७ अक्टूबर, १९४२

डीयर मिस्टर सावरकर,

मुझे आज्ञा मिली है कि मैं आपके अक्तूबरवाले पत्र की स्वीकृति लिखूँ। वह पत्र पटना के पते पर था, इसलिये गवर्नर महोदय को आज ही मिला है। मेरा यह पत्र

आपको अब बम्बई में नहीं मिल सकता, क्योंकि आप दिल्ली जारहे हैं, इसलिये यह पत्र आपको दिल्ली-प्रान्तीय 'हिन्दू-महासभा' के मारफ़त भेज रहा हूँ, आपको इसकी सूचना तार-द्वारा दे दी गई है।

गवर्नर महोदय ने अपनी इस सम्मति पर कि 'महासभा' का अधिवेशन पहली जनवरी, १९४२ से भागलपुर में हो, पूरा ध्यान दिया है और वह निम्न-लिखित कारणों से उसे मानने में असमर्थ हैं। आशा है, आप भी इन कारणों पर पूरा ध्यान देंगे:—

(१) बकराईद के दिनों में 'महासभा' के अधिवेशन के समय हमें भागलपुर के अतिरिक्त अन्य स्थानों का भी ध्यान रखना है। यह ऐतिहासिक बात है कि बिहार में साम्प्रदायिक दंगे बहुधा बड़ा रूप धारण कर लिया करते हैं। बकराईद के दिनों में तो साम्प्रदायिक परिस्थिति बड़ी ख़राब हो जाती है और दङ्गों का हर समय भय लगा रहता है। इसलिये इस त्यौहार पर पुलिस की ड्यूटी प्रत्येक स्थान पर लगानी आवश्यक हो जाती है कि जिससे सब स्थानों की रक्षा का प्रबन्ध हो सके। गत दिनों के तजुर्बे ने हमें बताया है कि गाँवों में नगरों से भी अधिक रक्षा की आवश्यकता है और वहाँ सरकारी अफसरों को बड़ा काम करना पड़ता है। इसलिये बिहार-सरकार की सम्मति है कि पुलिस-शक्ति का ध्यान रखते हुए यह

बुद्धिमानी का कार्य न होगा कि ऐसे समय में भागलपुर में 'महासभा' का अधिवेशन करने दिया जाय, जहाँ कि गत वर्षों से दंगे होते चले आरहे हैं और जहाँ किसी भी समय दङ्गा हो सकता है।

(२) अब प्रश्न यह है कि इस भय के अन्त का समय कब होगा। बकराईद का त्यौहार चाँद पर निर्भर है। यह त्यौहार २६, ३० और ३१ दिसम्बर या पहली जनवरी को मनाया जायगा। अवश्य ही बकराईद के पश्चात् इतना समय होना चाहिये कि यदि कहीं कोई झगड़ा हो गया, तो वह शान्त हो जाय और पुलिस एक स्थान से दूसरे स्थान पर पहुँच सके। इन सब बातों को ध्यान में रखते हुए गवर्नर महोदय ने उन अफसरों से परामर्श करने के पश्चात् जो शान्ति स्थापन के ज़िम्मेदार हैं, विचार किया है कि ५ जनवरी ही सब से निकट तारीख़ है, जिस दिन अधिवेशन आरम्भ हो सकता है। इस तारीख़ से पहले अधिवेशन मनाने के सम्बन्ध में कोई सार्वजनिक कार्यवाही न की जाये, जिससे कि शान्ति-भङ्ग होने का भय हो।

(३) गवर्नर महोदय ने यह स्वीकार किया है कि बकराईद के समय भागलपुर में कोई ऐसा दङ्गा न होगा, जिससे कुछ काल के लिए हर प्रकार के जलसे बन्द करने पड़ें, पर यदि कोई ऐसा फसाद होता है, तो उनको किसी प्रकार का भी सन्देह नहीं कि 'महासभा' की कमेटी

स्वयं ही उचित समझकर इसे स्थगित कर देगी।

(हस्ताक्षर) डब्ल्यू० जी० लेन्सी

१३ अक्तूबर, १६४१ को राष्ट्रपति सावरकर ने दिल्ली से निम्न-लिखित तार बिहार-गवर्नर को दिया।

आपके पत्र पर विचार कर कार्यकारिणी समिति ने निश्चय किया है कि अधिवेशन २४ से २७ दिसम्बर तक किया जावे। मैं बम्बई पहुँचकर आपको पूरा-पूरा हाल पत्र-द्वारा लिखूँगा, तब तक समाचार-पत्रों की सूचनाओं पर विश्वास न कीजिये।

बम्बई पहुँचकर राष्ट्रपतिजी ने गवर्नर-बिहार को १५-१०-४१ को निम्न-पत्र तथा कार्यकारिणी समिति का प्रस्ताव भेजा:—

आपको मेरा १३ तारीख़वाला तार अवश्य मिल गया होगा, जो मैंने कार्यकारिणी समिति की बैठक के पश्चात् आपको दिल्ली से भेजा था और जिसमें आपसे प्रार्थना की गई थी कि आप मेरे पत्र का इन्तजार करें। अब मैं यह पत्र और कार्यकारिणी के प्रस्ताव आपके पास भेज रहा हूँ, जिस आधार पर आप निर्णय कर सकें। प्रस्ताव में जिस-जिस स्थान पर लाल पेंसिल के चिह्न लगे हुए हैं वह आप विशेषरूप से पढ़ें, क्योंकि इन्हीं बातों का उल्लेख पत्र में किया गया है। समाचार-पत्रों में जो हमारे विचारों को उल्टा-सीधा पेश करते रहते हैं, तनिक भी

ध्यान न देते हुए मैं आपको विश्वास दिलाता हूँ कि 'महासभा' की कार्यकारिणी समिति ने उन सब बातों पर विचार किया है, जो आपको पत्रों में लिखी गई हैं।

स्थान के सम्बन्ध में बिहार-सरकार ने आपके भेजे हुए पत्रों में मुझे पहले ही सूचित कर दिया है कि कुछ शर्तों पर वह भागलपुर में अधिवेशन होने देगी, जबकि वहाँ कोई झगड़ा न हो।

दूसरी बात तारीख़ की थी कि बकराईद के दिनों में २६ दिसम्बर, १६४१ से पहली जनवरी, १६४२ तक अधिवेशन हो। कार्यकारिणी समिति भी यह नहीं चाहती कि वह कोई ऐसा कार्यक्रम करे, जिससे दंगा करनेवालों को बहाना मिल जाय। इसलिये कमेटी ने उन दिनों अधिवेशन करना निश्चित किया है, जबकि बकराईद न हो। आपके पत्रानुसार यह बात भी सुलझ चुकी है, जिस पर समिति को कोई आपत्ति नहीं है।

तीसरी बात अधिवेशन के बकराईद से पहले या बाद में करने की है। आपके पत्रों से यह बात स्पष्ट है कि यदि बकराईद के दिनों में कहीं दङ्गा होगया, तो अधिवेशन जनवरी मास में भी न हो सकेगा। कमेटी ने यह विचार किया है कि यदि अधिवेशन बकराईद के बाद रखा गया, तो कोई भी व्यक्ति थोड़ा-सा दङ्गा ईद के दिनों में कर सकता है, जिससे अधिवेशन बन्द हो सकता है। इसलिये

कमेटी ने यह निर्णय किया कि अधिवेशन की तारीखें बकराईद से पहले रखी जायँ, ताकि अधिवेशन भी होजायं और किसी प्रकार का झगड़ा भी न हो।

हिन्दू तो स्वभाव से ही शान्तिप्रिय हैं, फिर अधिवेशन को शान्तिपूर्वक समाप्त करना हमारी भावना है। 'महा-सभा' ने बड़े दिनों की छुट्टियों का पूरा लाभ उठाने के लिये ही ऐसा निश्चय किया है। इसलिये यही निश्चय किया है कि 'महासभा' का अधिवेशन भागलपुर में २४, २५, २६, २७ दिसम्बर, १६४१ को किया जाय।

यदि बकराईद ३० को हुई, तो दो दिनों में पुलिस का उचित स्थानों पर प्रबन्ध हो सकता है, यदि सरकार को और एक दिन की आवश्यकता हो, तो हम २६ तारीख को ही अधिवेशन समाप्त कर सकते हैं और २७ दिसम्बर को भी कुछ न करेंगे।

मैं आशा करता हूँ कि इस पत्र को पढ़कर आप स्वागत कारिणी समिति को उपरोक्त तारीखों पर भागल-पुर-अधिवेशन करने की स्वीकृति दे देंगे। मैं आपको विश्वास दिलाता:हूँ, कि यदि अधिवेशन निर्विघ्न करने दिया गया, तो इसमें जो प्रस्ताव हिन्दुओं को सेना में भर्ती के सम्बन्ध में पास किये जायेंगे, उनसे भारत-भर के समस्त हिन्दू उत्साहित होकर, सैकड़ों तथा हज़ारों की संख्या में सेना में जायेंगे। इससे इन 'हिन्दूसभा' के नेताओं के

हाथ भी शक्तिशाली होंगे, जो 'नेशनल डिफ़ेन्स कमेटी', 'वार एडवाईज़री कमेटी', 'प्रान्तीय वार कमेटी' और कौंसिलों-आदि में सम्मिलित हो चुके हैं। इस प्रकार यह अधिवेशन भारत-रक्षा में प्रबल सहायक होगा। फिर सरकार को करोड़ों हिन्दुओं की सहानुभूति भी प्राप्त होगी। इस बात का विचार करते हुए कि चाहे अधिवेशन बकरा-ईद' से पहले हो जाये, चाहे बाद में, सरकार को भागलपुर में पर्याप्त पुलिस शान्ति स्थापित करने के लिये लानी ही पड़ेगी। मुझे पूरा विश्वास है कि आप तुरन्त आज्ञा जारी कर देंगे कि स्वागत-कारिणी-समिति अपना अधिवेशन इन तारीख़ों में कर ले।

मैं आशा करता हूँ कि आप मेरे इस पत्र का उत्तर शीघ्र और सब बातें मानते हुए देंगे।

(हस्ताक्षर) वी० डी० सावरकर,
प्रधान, 'हिन्दू-महासभा'

कार्यकारिणी-समिति का प्रस्ताव

'अखिल भारतीय हिन्दू-महासभा' की कार्यकारिणी-कमेटी ने नई दिल्ली में अपनी ११ अक्तूबर, १९४१ की बैठक में वीर बैरिस्टर, वी० डी० सावरकर की प्रधानता में निम्न-लिखित प्रस्ताव पास किया :—

'अखिल भारतीय हिन्दू-महासभा' की कार्यकारिणी-समिति, बिहार-सरकार के उस कार्य का विरोध करती

है, जिस पर भागलपुर-अधिवेशन के सम्बन्ध में 'डिफ़ैंस ऑफ़ इण्डिया एक्ट' के अनुसार अनुचित व अन्याय-युक्त प्रतिबन्ध लगाया गया है।

इस कमेटी की सम्मति यह है कि हिन्दुओं के क़ानूनी अधिकारों पर इस प्रकार की अकारण पाबन्दियाँ गुण्डों को उत्साहित कर, लड़ाई-झगड़े का कारण बनती हैं।

इसलिये कार्यकारिणी-समिति बिहार-सरकार से अनुरोध करती है कि वह फिर विचार करे और प्रतिबन्ध को रद्द करदे।

कमेटी यही निश्चय करती है कि 'अखिल-भारतीय हिन्दू-महासभा' का अधिवेशन २४, २५, २६, २७ दिसम्बर १९४१ को ही भागलपुर में होना चाहिये।

यह कमेटी अधिवेशन की स्वागत-कारिणी-समिति और बिहार-प्रान्तीय 'हिन्दू-महासभा' को सलाह देती है कि वह अधिवेशन के कार्य को जारी रखे, ताकि यह अधिवेशन समस्त हिन्दू-जगत् की मान-प्रतिष्ठा के अनुसार सफलता-पूर्वक इसी स्थान पर और उन्हीं तारीख़ों में किया जा सके, जो निश्चय हुई हैं।

यह कमेटी हिन्दुओं के समस्त फ़िरकों व सम्प्रदायों से और भारत के अन्य स्वतन्त्रता-प्रिय सज्जनों से अपील करती है कि वह स्वागत-कारिणी-समिति की सहायता करें और अधिवेशन को सफल बनावें।

भागलपुर का मोर्चा

श्री० आशुतोष लाहिरी
बङ्गाल के कुछ डेलीगेटों के मध्य

भागलपुर का मोर्चा

अपने साथियों सहित एक सिख सत्याग्रही

भागलपुर का मोर्चा

जेल-द्वार पर

(भागलपुर-जेल के द्वार पर नित्य दिखाई देनेवाली भीड का दृश्य

भागलपुर का मोर्चा
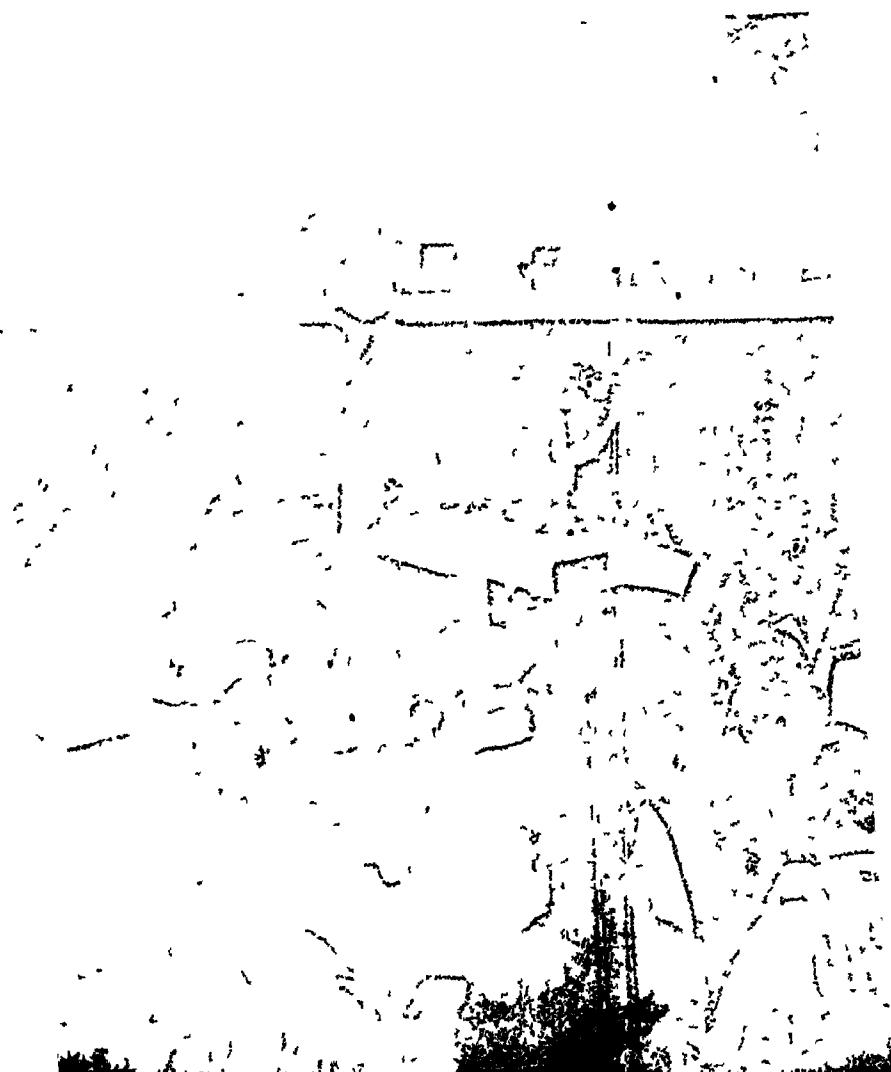
जेल में सभाएँ

भागलपुर जेल में डॉ० मुंजे का भाषण

इस पत्र का उत्तर हिज़ ऐक्सीलेंसी गवर्नर के सेक्रेट्री ने ३० अक्तूबर, १९४१ को इस प्रकार दियाः—

मुझे हिज़ ऐक्सीलेंसी गवर्नर महोदय की आज्ञा हुई है कि मैं ध्यानपूर्वक आपके १३ अक्तूबर के तार और १५ अक्तूबर के पत्र की रसीद स्वीकार करूँ। आपका पत्र कल ही शाम को मिला था, इसलिए यदि आप यह समझें कि उत्तर-प्राप्ति में देर हुई, तो गवर्नर साहिब को आशा है कि आप उन्हें दोषी न समझेंगे, कि उन्होंने शीघ्र उत्तर न देकर अशिष्ट-व्यवहार किया है।

१. हिज़ एक्सीलेंसी आपको यह विश्वास दिलाने से प्रसन्न है कि आपकी कमेटी ने इस प्रश्न का निर्णय किसी ज़िद से नहीं किया है, जैसा कि कुछ समाचार-पत्र बता रहे थे, और वह आपसे भी यह विश्वास करने को कहते हैं कि दूसरे लोग ही उल्टा-सीधा कह रहे हैं। सरकार के सामने एक-ही विचार है और वह यही कि बिहार-प्रान्त में शान्ति बनी रहे।

२. आपके पत्र की दो बातों १—अधिवेशन भागलपुर में ही हो, २—ऐसे समय में हो कि बकरा ईद के साथ न टकराये—को मैं हिज़ एक्सीलेंसी की ओर से समर्थन करता हूँ, परन्तु आपकी तीसरी बात गवर्नर महोदय के विचार में ठीक नहीं।

आपका यह प्रस्ताव कि अधिवेशन बकराईद से पहले

कर लिया जाये, नई परिस्थिति पेश करता है। इसमें पुलिस को एक स्थान से, दूसरे स्थान पर ले जाने के अतिरिक्त और भी कई बातों को सोचना पड़ेगा। यह ठीक है कि आपकी कमेटी ने इस प्रश्न पर विचार किया है, लेकिन समिति ने परिस्थिति को भली प्रकार समझा नहीं। इस प्रान्त में बकरा ईद के समय दङ्गा होने का हमेशा से डर रहता है। भागलपुर की साम्प्रदायिक-परिस्थिति इस समय बड़ी ख़राब है, इसलिये बक़राईद से पहले ऐसा कोई कार्यक्रम करना, जिससे परिस्थिति और भी ख़राब हो जाने का भय हो, प्रशंसनीय नहीं। गवर्नर महोदय के मत से अधिवेशन का कोई भी कार्यकर्ता यह नहीं चाहता कि शान्ति भङ्ग हो, फिर भी यह बात सत्य है कि अधिवेशन करते समय कई ऐसे प्रश्न खड़े हो जाते हैं, जिन पर वाद-विवाद होने से साधारण जनता भड़क उठती है और शान्ति-भङ्ग हो जाया करती है। इसलिये २४ से २६ अधिवेशन की तारीखें न स्वीकार करते हुए हमें खेद है। गवर्नर महोदय यह भी अनुभव करते हैं कि यदि अधिवेशन बड़े दिनों की छुट्टियों में न हुआ, तो इसमें सम्मिलित होनेवालों को कई प्रकार की असुविधाएँ होंगी। इसीलिए यह प्रस्ताव रखा गया था कि अधिवेशन किसी अन्य स्थान पर किया जाय।

(३) आपकी कमेटी का प्रस्ताव घोषित करता है कि

आपकी कमेटी ने बिना इसका विचार किये, कि सरकारी आज्ञा है, निश्चय कर लिया कि अधिवेशन अवश्य भागलपुर में २४ से २७ दिसम्बर तक होगा, यदि यह ठीक है, तो हिज़ ऐक्सीलेंसी भी स्पष्ट कर देना चाहते हैं कि सरकार अपनी पूरी शक्ति को कार्य में लाकर सरकारी आज्ञा के उल्लंघन का सामना करेगी।

नोटः—भविष्य में आप अपने पत्रों का पता केवल "बिहार-गवर्नर्स कैम्प" लिखा करें। इससे पत्र शीघ्र हमको मिल जाया करेंगे।

इस पत्र का उत्तर राष्ट्रपति सावरकरजी ने २६ अक्तूबर को बिहार-गवर्नर को इस प्रकार दियाः—

योर ऐक्सीलेंसी,

मुझे आपके सेक्रेट्री का २० अक्तूबर का पत्र जोकि भागलपुर-अधिवेशन के सम्बन्ध में था, प्राप्त हुआ। पहले पत्रों को न दुहराकर मैं संक्षेप में उन्हीं बातों का उत्तर दूँगा, जो आपके इस अन्तिम पत्र से उत्पन्न होती हैं।

मैं यह बात नोट करके प्रसन्न हुआ हूँ कि आपने इस बात को सराहा है कि कार्यकारिणी-समिति ने अपना प्रस्ताव अपने भाव को सामने रखकर पास किया है। कमेटी ने जो यह निश्चय किया है कि अधिवेशन बकराईद के पहले ही कर लिया जाये, इसका कारण यही है

कि वह यह चाहती है कि भागलपुर में किसी प्रकार की अशान्ति या झगड़े की सम्भावना ही न हो सके।

(१) बकराईद के बाद अधिवेशन करने का सब से बड़ा कारण—जैसा कि आपने भी अपने ७ अक्तूबर के पत्र में लिखा है। यह है कि यदि बकराईद पर साम्प्रदायिक परिस्थिति किसी प्रकार खराब हो गई, तो आपकी सरकार बकराईद के बाद अधिवेशन न होने देगी और इस प्रकार जनवरी के प्रथम सप्ताह में अधिवेशन न हो सकेगा। इसीलिए इन सब बातों से बचने के लिये कार्यकारिणी-समिति ने निश्चय कर लिया है कि अधिवेशन बकराईद से पहले ही कर लिया जाय।

(२) यह बात सत्य है, बड़ी सभायें करते समय जनता बहुधा बिना सोचे-विचारे भी झगड़ बैठा करती है, इस कारण आपने निर्णय किया है कि अधिवेशन बकराईद से पहले न होने पाये, ताकि बकराईद शान्तिपूर्वक व्यतीत हो जाये, परन्तु मेरा तो निवेदन यह है कि 'महासभा' के अधिवेशन में हर साल लाखों मनुष्य आते हैं, कभी झगड़ा नहीं हुआ, इसलिए 'हिन्दू-महासभा' के अधिवेशन से यदि वह बकराईद से पहले ही कर लिया जाये, तो अशान्ति की कोई शंका नहीं है, पर यदि अधिवेशन बकराईद के बाद रखा गया, तो अधिवेशन रुक सकता है।

(३) मैं अनुभव करता हूँ, कि कोई भी सरकार अपने

विरुद्ध किसी प्रकार का चैलेंज चुपचाप नहीं सहन कर सकती और विरोधी को हर प्रकार से कुचलने का प्रयत्न करती है, लेकिन उपरोक्त बातों से यह स्पष्ट है कि सरकार को चैलेंज नहीं दिया गया। कमेटी ने तो अधिवेशन की तारीखें बकराईद से पूर्व नियत कर, शान्ति स्थापना का ही प्रयत्न किया है। फिर भी बिहार-सरकार 'अखिल-भारतीय हिन्दू-महासभा' के वार्षिक अधिवेशन को जिसमें कम-से-कम ५ लाख मनुष्य प्रति वर्ष भाग लेते हैं, रोकना चाहती है। तब यह निश्चय ही ठीक है कि सरकार भागलपुर-नगर के थोड़े-से गुण्डों को अवश्य रोक या दबा सकती है ताकि वह दूसरों के क़ानूनी-अधिकारों पर छापा न मार कर 'हिन्दू-सभा' वालों को अपने नागरिक अधिकारों की स्वतन्त्रता के लिये सभा कर लेने दें।

गत अप्रैल मास ही में मद्रास-प्रान्त मुस्लिम-लीग का अधिवेशन हुआ, जिसमें हिन्दुओं के विरुद्ध प्रस्ताव पास किये गये, परन्तु मद्रास-सरकार ने मुसल्मानों का जल्सा रोकने के बजाय हिन्दुओं के विरुद्ध दफ़ा १४४ लगा, लाठी-आदि लेकर चलना, ५ से अधिक संख्या में एक स्थान पर इकट्ठे होना ग़ैर-क़ानूनी क़रार दिया, पर भागलपुर में सरकार ने गुण्डों को खुली छुट्टी दे दी और 'महासभा' के अधिवेशन को जो 'अखिल-भारतीय-संस्था' के तत्वावधान में था, रोककर हिन्दुओं को क़ानूनों के अन्दर रहते हुए भी

अपने नागरिक अधिकारों को न वरतने दिया, तो क्या यह स्वाभाविक न होगा कि विशाल भारतवर्ष के सारे हिन्दू इसे अपना अपमान समझें और उसे सहन करने में असमर्थ हों।

अमन व शान्ति रखना हर सरकार का कर्तव्य है, पर इसका यह ध्येय होना चाहिये कि शान्ति-प्रिय और क़ानून को माननेवाले लोगों की सदा रक्षा की जाय। पर यदि गुण्डों से डरकर तथा उनकी धमकियों के भय से और क़ानून पर चलनेवालों को दबाकर सरकार शान्ति स्थापित करने की चेष्टा करती है तो वह अपने कर्तव्य को पालन नहीं करती। मेरा आपको बराबर लिखने का कारण यही है कि ऐसा प्रकट होता है कि भारत में अब सरकार की कुछ ऐसी नीति है कि हिन्दुओं को अपमानित किया जाये और उनके अधिकारों को दबा दिया जाये। ऐसी नीति से वह शान्ति स्थापित नहीं कर सकती।

(४) अब मैं इन शब्दों के साथ समाप्त करता हूँ कि 'महासभा' की कमेटी ने आपकी सम्मति को मानते हुए, अधिवेशन को उन तारीखों में परिवर्तन कर दिया है, जो बकराईद के साथ टकराती थीं और बड़े दिन की छुट्टियों में अधिवेशन करना निश्चय कर लिया है। बकराईद के पश्चात् अधिवेशन करने में मुझे भय है कि यदि बकराईद में दंगा हो गया, तो सरकार अधिवेशन को फिर रोक देगी, और अधिवेशन फिर किसी प्रकार न हो सकेगा। यह बात

आपको पत्रों से भी स्पष्ट हो रही है—मैं सच्चे हृदय से शान्ति स्थापना की इच्छा करता हूँ। आपसे निवेदन करता हूँ कि आप 'महासभा' के अधिवेशन को भागलपुर में २४ से २७ दिसम्बर, सन् १६४१ तक होने दे, ताकि यह शान्ति के साथ हो जाय। मैं आपको विश्वास दिलाता हूँ कि 'महासभा' कोई भी ऐसा कार्य न करेगी, जो आपत्ति-जनक हो। मुझे पूरा विश्वास है कि यदि आपकी सरकार यह घोषणा करदे कि 'महासभा' का अधिवेशन उसके निश्चित तारीखों पर होना आवश्यक है, तो कोई भी इसके विरुद्ध खड़ा होने का साहस नहीं करेगा, चाहे वह हिन्दू हों और चाहे मुसलमान। सरकार के पास काफ़ी शक्ति है और सरकार इस शक्ति का प्रयोग उनके विरुद्ध कर सकती है, जो क़ानून को तोड़ना चाहें। यदि कोई फ़साद ही करना चाहे, तो जैसा कि आपने स्वयं स्वीकार किया है कि सरकार की इस शक्ति का प्रयोग नागरिक व क़ानूनी अधिकारों की रक्षा में होना चाहिये, न कि उनको रोकने व दबाने के लिये। सरकार की प्रतिष्ठा तो जनता के सम्मुख तब बढ़ेगी, जब वह प्रतिबन्ध उठा लिया जायेगा, इससे भारत में बसनेवाले करोड़ों स्वतन्त्रता-प्रेमी मनुष्यों की सहानुभूति सरकार को मिलेगी।

(हस्ताक्षर) वी० डी० सावरकर

प्रधान, 'हिन्दू-महासभा'

इस पत्र का उत्तर बिहार-गवर्नर ने इस प्रकार दिया—

३१ अक्टूबर, १९४१।

डीयर मिस्टर सावरकर

मुझे हिज़ ऐक्सीलेंसी गवर्नर ने आपकी २७ अक्तूबर की चिट्ठी की पहुँच स्वीकार करने की आज्ञा दी है और गवर्नर साहिब ने इस पर पूर्णता से विचार किया है। हिज़ ऐक्सीलेंसी को यह जानकर बड़ी प्रसन्नता हुई कि आपकी कमेटी भी उनकी भाँति यह चाहती है कि 'महा-सभा' का अधिवेशन ऐसे समय और स्थान में हो, जहाँ अशान्ति का बिलकुल भय न हो, पर वह यह स्वीकार नहीं कर सकते कि यह परिणाम २४ से २७ दिसम्बर तक अधिवेशन करने से निकल सकता है। आप भी यह तो मानते हैं कि बकराईद पर बहुधा फसाद होने का भय रहता है और आप यह भी मानते हैं कि अधिवेशन-आदि बड़ी सभाओं में जहाँ हर प्रकार के आदमी इकट्ठे होते हैं, ऐसी बातें हो ही जाया करती हैं, जो साम्प्रदायिक-परिस्थिति को खराब कर देती हैं। ठीक इन्हीं कारणों से और यह भी विचार करते हुए कि इस समय भागलपुर की साम्प्रदायिक परिस्थिति अच्छी नहीं है—प्रान्तीय-सरकार ने, जिसकी जिम्मेदारी शान्ति स्थापित करना है, उक्त निश्चय किया है—यदि आपकी निश्चित की हुई तारीखों पर अधिवेशन होने दिया गया तो जनता की शान्ति-भंग होने का बड़ा भय है। ऐसी

अवस्था में सरकार का जो कर्त्तव्य है वह स्पष्ट है। हिज़ ऐक्सीलेंसी को खेद है कि वह २० अक्तूबर के पत्रों की शर्तें नहीं बदल सकते।

(ह०) डब्ल्यू० सी० लैंसी।

प्रधानजी का उत्तर इस प्रकार है:—

योर ऐक्सीलेंसी !

मैं आपके ३१ अक्तूबर के पत्र की पहुँच स्वीकार करता हूँ। इस पत्र में यह लिखा है कि आपकी सरकार ने जो प्रतिबन्ध 'हिन्दू-महासभा' के अधिवेशन को भागलपुर में २४ से २७ दिसम्बर तक रोकने के लिये लगा रखे हैं, आप उनको रद्द नहीं कर सकते और शायद यह बिहार-सरकार का अन्तिम उत्तर है।

'महासभा' की ओर से भी अन्तिम उत्तर लिखते हुए मैं अपना यह कर्तव्य समझता हूँ कि बिहार-सरकार के इस अन्तिम निर्णय पर 'महासभा' का दृष्टिकोण आपके सम्मुख रख दूँ, जो इस प्रकार है—

दशहरा, दिवाली-आदि हिन्दुओं के राष्ट्रीय त्यौहार, ईसाइयों के बड़े दिन तथा पारसियों के त्यौहार भारत में इतनी शान्ति से मनाये जाते हैं कि अन्य जातियों को ज़रा भी असुविधा नहीं होती। लेकिन, मुसल्मानों के त्यौहारों पर झगड़े-फ़साद प्रायः हो जाया करते हैं, जिसकी बाबत आपने अपने पत्र में भी लिखा है कि बकराईद इस बात

के लिये बदनाम है और इस समय बहुधा फ़साद होते हैं।'
ऐसी अवस्था में 'हिन्दू-महासभा' चाहती है कि सरकार को अपनी पूरी शक्ति से इन झगड़ों का विरोध करना चाहिये ताकि यह मनोवृत्ति ही बदल जाय। ऐसा न कर सरकार हिन्दुओं को ही दबाना चाहती है और 'अखिल भारतीय हिन्दू-महासभा' के अधिवेशन को क़ानून पर चलते हुए भी रोकना चाहती है, जो जन्म से ही शान्तिप्रिय रही है। आपकी सरकार के कार्यक्रम से स्पष्ट है कि 'आप क़ानून तोड़नेवालों को प्रसन्न करने के लिये क़ानून माननेवालों को दण्ड देना चाहते हैं। आप यह चाहते हैं कि नागरिक इसलिये घरों में कुण्डे बन्द करके बैठ जायें कि कहीं उनको देखकर चोर जोश में न आ जायें।

क़ानून का यह सर्व-प्रथम और सर्व सम्मत सिद्धान्त है कि सरकार शान्ति के साथ तब ही चल सकती है, जबकि किसी व्यक्ति या संस्था को क़ानून के अन्दर कार्य करते हुए न रोका जाये। ऐसी अवस्था में सरकार का कर्तव्य है कि वह क़ानून तोड़नेवालों को दण्ड देकर क़ानून पर चलनेवालों को उनके क़ानूनी अधिकारों से वञ्चित न करे।

यह तो बिहार-सरकार के लिये बड़े अपमान की बात है कि वह भागलपुर-जैसे नगर में उन गुण्डों का प्रबन्ध नहीं कर सकती, जो दंगा करना चाहते हैं और उन

शान्ति-प्रिय हिन्दुओं को मजबूर करती है कि वे अपने नागरिक व धार्मिक अधिकारों को स्वतन्त्रतापूर्वक न बरतें।

आपका पत्र-व्यवहार बताता है कि बिहार-सरकार के पास इतनी शक्ति है कि वह सहस्रों हिन्दू-जनता तथा नेताओं को जो अधिवेशन में भाग लेने आ रहे हैं, दबा सकती है। फिर वह शक्ति गुण्डों को ही क्यों नहीं दबाती ?

'हिन्दू-महासभा' अपना यह कर्तव्य समझती है कि वह अपनी जाति के अपमान के विरुद्ध बलपूर्वक प्रोटेस्ट करे और अपने नागरिक अधिकारों को बरतने के लिये सब प्रकार के उपायों का जो उसकी पहुँच में हों, प्रयोग करे।

आप कृपा-पूर्वक यह नोट कर लें कि अधिवेशन पर बिहार-सरकार के द्वारा प्रतिबन्ध लगने के कारण यह अब लोकल या प्रान्तीय प्रश्न नहीं, अपितु अखिल भारतीय प्रश्न बन गया है। भागलपुर-जैसे एक नगर में शान्ति-स्थापित करने की चेष्टा में बिहार-सरकार ने 'डिफेंस ऑफ इण्डिया एक्ट' का ऐसा बुरा प्रयोग किया है कि जिससे समस्त भारत की शान्ति भंग हो सकती है, क्योंकि इसको केवल हिन्दू ही नहीं, अपितु और भी स्वतन्त्रता-प्रिय मनुष्य बुरा समझेंगे। ऐसा न हो कि वह सज्जन, जो युद्ध में सरकार

की सहायता, कौंसिलों, असेम्बलियों व कमेटियों में जाकर कर रहे हैं और हिन्दुओं को सेना में भर्ती करा रहे हैं, असन्तुष्ट हो जायें। यह मामला मैं हिज़ ऐक्सीलेंसी वॉयसरॉय के आगे रखना चाहता हूँ ताकि वह हस्तक्षेप कर इस ग्रन्थी को सुलझा दें। मेरी आपसे केवल यही प्रार्थना है कि आप सैण्ट्रल-सरकार के अन्तिम उत्तर का इन्तजार करें।

मैं आपको विश्वास दिलाता हूँ कि 'हिन्दू-महासभा' आपकी सरकार को चैलेंज न देकर केवल आपसे अपने नागरिक अधिकारों को बरतने की आज्ञा चाहती है। आपकी शेष समस्त बातों को 'हिन्दू-महासभा' मानने को तैयार है और जहाँ तक उसकी शक्ति है, वह सरकार से कोई विरोध करना नहीं चाहती। मुझे आशा है कि बिहार-सरकार इस स्थिति को सुलझाने का प्रयत्न करेगी।"

(ह०) वी० डी० सावरकर,

प्रधान, 'हिन्दू-महासभा'।

बिहार-गवर्नर का उत्तर

११ नवम्बर, १९४१

डियर मिस्टर सावरकर,

मुझे आज्ञा हुई है कि मैं आपके इस अन्तिम-पत्र की प्राप्ति स्वीकार करूँ, जो आपने 'हिन्दू-महासभा' की ओर से भागलपुर में अधिवेशन करने के सम्बन्ध में लिखा

है। हिज़ ऐक्सीलेंसी का विचार है कि बार-बार पहली लिखी हुई बातों को दुहराने से कोई लाभ नहीं, परन्तु वह यह चाहते हैं कि उनके पत्रों के कुछ अंशों का जो अर्थ आप निकाल रहे हैं, वह उनको स्वीकार नहीं हैं और वह उसको स्पष्ट कर देना चाहते हैं।

'गवर्नर महोदय ने इस बात पर ग़ौर किया है कि आप हिज़ ऐक्सीलेंसी वॉयसरॉय से हस्तक्षेप करने की अपील करना चाहते हैं और यह चाहते हैं कि जब तक सेण्ट्रल-गवर्नमेण्ट का अन्तिम उत्तर न आ जाय, तब तक इसके सम्बन्ध में कोई कार्यवाही न की जाय। आप सरकार से तो यह आशा करते हैं कि वह चुप-चाप धीरज धरे, पर भागलपुर में स्वागत-कारिणी-समिति अपने कार्य में बड़े जोर-शोर से लगी रहे और खुल्लमखुल्ला घोषणा करे कि अधिवेशन २४ से २७ दिसम्बर तक ही होगा। हिज़ ऐक्सीलेंसी बिहार-सरकार और 'महासभा' को ख़राब करना नहीं चाहते, पर यदि आप शीघ्र ही विश्वास नहीं दिला सकते कि हिज़ ऐक्सीलेंसी वॉयसरॉय का जो भी निर्णय होगा, उसका आप उल्लंघन न करेंगे, तो बिहार-सरकार चुप-चाप बैठी देखती न रहेगी और उसे हस्तक्षेप करना ही पड़ेगा। (ह०) डब्लू० जी० लेंसी

पहली दिसम्बर १९४१ को राष्ट्रपति सावरकरजी ने निम्न-लिखित तार गवर्नर-बिहार को दिया।

मैंने समाचार पत्रों में बिहार-सरकार का कम्यूनिक पढ़ा है कि सरकार ने प्रतिबन्ध की अवधि घटाकर ४ जनवरी करदी है पर इस बात की कोई गारण्टी नहीं दी गई कि यदि बकराईद पर कोई दंगा होगया, तो यह प्रतिबन्ध फिर न लगाया जायगा। यदि सरकार ऊपर लिखी बात की गारण्टी देती है और प्रतिबन्ध २ जनवरी के बाद उठा ले और ३ से ६ जनवरी तक हिन्दुओं को बिहार-प्रान्त में छुट्टियाँ देदे, तब कृपापूर्वक इसकी सूचना मुझे तार-द्वारा दें ताकि 'हिन्दू-सभा' इस प्रश्न पर पुनः विचार कर सके। पूरा हाल लिखकर एक पत्र भी भेजा जा रहा है।

प्रधानजी ने निम्न-लिखित पत्र गवर्नर साहिब को लिखा :—

१ दिसम्बर, १६२१

योर एक्सीलेंसी,

मैं आपको यह पत्र उस तार के बारे में लिख रहा हूँ, जो मैंने आपको आज प्रातःकाल भेजा है और जो सरकारी कम्यूनिक के सम्बन्ध में था कि सरकार-बिहार ने प्रतिबन्ध ४ जनवरी तक घटा दिया है। यदि आप प्रतिबन्ध की अवधि को थोड़ा सा और भी बदल दें और 'महासभा' को विश्वास दिलादें कि बकराईद पर चाहे कुछ हो, आपकी सरकार अधिवेशन कराने का पूरा प्रयत्न करेगी और

दूसरे यह कि अधिवेशन को २ जनवरी से करने की आज्ञा देदें और बिहार-प्रान्त में ३ जनवरी से ६ जनवरी तक की छुट्टी हिन्दुओं के लिये कर दें तो 'महासभा' अपने निर्णय पर पुनः विचार करेगी और अपना कार्यक्रम इस प्रकार बना लेगी कि सरकार को कोई आपत्ति न हो। मैं आपको विश्वास दिलाता हूँ कि 'महासभा' कोई भी ऐसी बात न करेगी कि जिससे साम्प्रदायिक शक्ति भंग हो, परन्तु वह अपमान सहने को भी तैयार नहीं।

मैं आशा करता हूँ कि मेरे इस पत्र का उत्तर शीघ्र ही मिल जायगा।

(ह०) वी० डी० सावरकर,
प्रधान, 'हिन्दू-महासभा'

बिहार-सरकार को अन्तिम पत्र

५ दिसम्बर, १९४१

डीयर मिस्टर सावरकर,

मुझे आज्ञा हुई है कि मैं १ दिसम्बरवाली चिट्ठी की प्राप्ति स्वीकार करूँ। वह चिट्ठी हिज़ ऐक्सीलेंसी को कल मिली थी—आज मैंने आपको निम्न-लिखित तार भेजा है—'आपका पत्र मिला। हिज़ ऐक्सीलेंसी को खेद है कि वह आपकी प्रार्थना को नहीं मान सकते, आपको पत्र भी लिखा जा रहा है।'

मैं यह बताना चाहता हूँ कि 'प्रेस कम्यूनिक' जिसका

ज़िक्र आपने अपने पत्र में किया है, वह केवल-हिज़ ऐक्सीलेंसी के इस वचन को पूरा करने के लिये था, जो उन्होंने आपके साथ पत्र-व्यवहार में किया था कि प्रतिबन्ध की अवधि कुछ बदल दी जायगी, अब हम इससे आगे और विचार में नहीं पड़ सकते। मैं यह बिलकुल स्पष्ट कर देना चाहता हूँ कि प्रतिबन्ध की अवधि ४ जनवरी तक की है और शीघ्र-से-शीघ्र अधिवेशन ५ जनवरी से भागलपुर में हो सकता है।

अन्त में मैं यह कह देना चाहता हूँ कि हिज़ ऐक्सीलेंसी इस पत्र-व्यवहार-द्वारा यह कहने और करने का प्रयत्न करते रहे हैं कि कोई ऐसा अवसर न दिया जाय कि जिससे यह कहा जा सके कि 'हिन्दू-महासभा' का अपमान किया गया है और उनको विश्वास है कि आप यह न कहेंगे कि वह या उनकी सरकार ने जान-बूझकर आपको कोई कष्ट दिया है।

(ह०) डब्ल्यू० जी० लेंसी

मोर्चा आरम्भ

इस प्रकार ५ दिसम्बर, १९४१ को अन्तिम-पत्र लिखकर विहार-सरकार ने आगे पत्र-व्यवहार करना बन्द कर दिया और दोनों पक्ष अपनी-अपनी तैयारियों में लग गये। 'महासभा' इस तैयारी में लगी कि अधिवेशन अवश्य किया जाय और विहार-सरकार अधिवेशन के रोकने की चेष्टा पर। पत्र-

व्यवहार से पता चलता है कि बिहार-सरकार ने ५ जनवरी १९४२ से अधिवेशन करने की आज्ञा देदी थी और 'हिन्दू-सभा' ३ जनवरी से आरम्भ करना चाहती थी। ३ जनवरी को शनिवार था और ४ को रविवार। 'हिन्दू-सभा' छुट्टियों का लाभ उठाना चाहती थी।

उधर प्रान्तीय 'हिन्दू-सभाओं' ने फिर पाँचवीं बार सावरकरजी को ही भागलपुर-अधिवेशन के लिये प्रधान चुना। राष्ट्रपतिजी इस बार त्याग-पत्र देकर किसी अन्य व्यक्ति को यह मान देना चाहते थे, लेकिन बिहार-सरकार के प्रतिबन्ध के कारण उन्होंने पीछे हटना उचित न समझा और काँटों का मुकुट अपने सिर पर रखना स्वीकार कर लिया। राष्ट्रपतिजी की आज्ञानुसार १४ दिसम्बर का दिन समस्त भारत में 'अखिल-भारतीय' हिन्दू-संस्थाओं ने 'अखिल-भारतीय भागलपुर-दिवस' के नाम से मनाया। उस दिन स्थान-स्थान पर सभायें की गईं और वॉयसरॉय महोदय को तार दिये गये, कि वह स्वयं हस्ताक्षेप कर, बिहार-सरकार की आज्ञा रद्द करें, परन्तु हिज़ ऐक्सीलेसी ने इस कारण हस्ताक्षेप नहीं किया कि शान्ति स्थापित करना बिहार-सरकार का कार्य था। महाराजाधिराज दरभंगा ने चाहा कि अधिवेशन दरभंगा कर लिया जाये। पर यह बात इस कारण स्वीकार न की गई कि यह तो मैदान छोड़कर भागने-वाली बात है और इससे 'हिन्दू-सभा' की प्रतिज्ञा-भंग होती

है और फिर ज़िला दरभंगा में भी तो प्रतिबन्ध लगा हुआ था।

भागलपुर में लाला लाजपतराय-पार्क में अधिवेशन के लिये पण्डाल बन ही रहा था कि सरकार की आज्ञा पाकर पुलिस ने इस पर अपना अधिकार कर लिया और उसे तोड़-फोड़ डाला। भागलपुर में उसी दिन हड़ताल मनाई गई और उसी दिन पुलिस ने पटना में 'बिहार-प्रान्तीय हिन्दू-सभा' के कार्यालय की तलाशी ली और वे कागज़, जो अधिवेशन के सम्बन्ध में थे, अपने अधिकार में कर लिये। भागलपुर में भी कई कार्य-कर्त्ताओं के घरों की तलाशियाँ ली गईं और 'स्वागत-कारिणी-सभा' के कार्यालय की भी तलाशी ली गई। 'बिहार-प्रान्तीय हिन्दू-सभा' व 'स्वागत-कारिणी-सभा' ने एक 'कौंसिल ऑफ़ एक्शन' बना दी, जो अधिवेशन को सफल बनाने का प्रयत्न करे। इसके प्रथम डिक्टेटर पण्डित राघवाचार्य शास्त्रीजी को सरकार ने पटना से भागलपुर आते मार्ग में ही १७ दिसम्बर को गिरफ्तार कर लिया। भागलपुर-मोर्चे की शायद यह प्रथम गिरफ्तारी थी, तत्पश्चात् यह युद्ध आरम्भ हुआ।

इसके पश्चात् भी कुछ हिन्दू-नेताओं ने चिन्ता की, कि किसी प्रकार सुलह से कार्य सुलझ जाय, पर सब असफल रहे। मद्रास के डॉक्टर नायडू ने तजवीज़ की कि 'महासभा' के प्रधान का जलूस न निकाला जाय और पण्डाल के बाहर

किसी भी प्रकार का प्रदर्शन न किया जाय, पर यह भी अस्वीकार हुआ। सरकार तो अपनी जिद पर अड़ी थी और वह किसी की सम्मति, अच्छी या बुरी, मानने को तैयार न थी। ज्योंही अधिवेशन के दिन पास आते गये, सरकार की नीति भी कड़ी होती गई, ऐसा प्रतीत होता था कि सारे प्रान्त की पुलिस भागलपुर ही में इकट्ठी करली है। अश्वारोही और लट्ठबन्द पुलिस की कोई गणना न थी। सिविल गार्डस भी इसी कार्य में लगाये जा रहे थे। अन्त में २३-१२-४१ को नगर में दफा १४४ लागू कर दी गई। कि ४ या ५ से अधिक मनुष्य कहीं इकट्ठे न हो सकें और कोई सभा-आदि न की जाय और न जुलूस निकाला जाय। इसी दिन से नगर में पूर्ण हड़ताल हो गई और यह हड़ताल २७ दिसम्बर तक जारी रही। सरकार ने भागलपुर को बाँटकर कई मैजिस्ट्रेटों के आधीन कर दिया और इस प्रकार क़ानून व शस्त्र पुलिस-आदि से सुसज्जित होकर वह हिन्दुओं के विरुद्ध पूरे दमन पर उतर आई और धड़ाधड़ गिरफ्तारियाँ होने लगीं।

भागलपुर मोर्चे के चार दिन—२४, २५, २६ व २७

१३ दिसम्बर से गिरफ्तारियों की भरमार

१३ दिसम्बर को भागलपुर में दफ़ा १४४ लागू कर सरकार ने पूरे जोर से अपने दमन की नीति आरम्भ कर दी और 'महासभा' के प्रतिनिधियों व कार्यकर्ताओं

की गिरफ्तारियाँ भागलपुर व बिहार-प्रान्त के अन्य स्थानों में होने लगीं। भागलपुर-रेलवे स्टेशन पर पुलिस का बड़ा जमाव रहने लगा। कई थानेदार तथा इन्स्पेक्टर व सुप-रिण्टेण्डेण्ट पुलिस घुड़सवार तथा लाठीबन्द पुलिस वहाँ 'महासभा' के प्रतिनिधियों का स्वागत करने को तैनात थे। मार्ग में भी पुलिस थी, तथा मैजिस्ट्रेट अपनी ड्यूटी पर लगे हुए थे। प्रत्येक यात्री को सन्देह की दृष्टि से देखा जाता था और बाहर आते ही प्रश्नों की भरमार करदी जाती थी, कई बेचारे तो मार्ग में ही पकड़ लिए गये। भागलपुर में पूरी हड़ताल थी। हिन्दू-मुसल्मान किसी की भी दूकान खुली न थी। हाँ, एक बात अवश्य थी कि भागल-पुर में कोई भी हिन्दू-घर ऐसा न था, जिस पर कि 'हिन्दू-सभा' का झण्डा न हो। जनता में नवीन उत्साह था। दफा १४४ की किसी को भी परवाह नहीं थी। सहस्रों मनुष्य पुलिस के पीछे खड़े प्रतिनिधियों का स्वागत करते और 'जै-जै' की ध्वनि से आकाश गुँजा देते थे। कभी-कभी लाठी-चार्ज अवश्य हो जाता था, पर भीड़ फिर जुट जाती थी और पहिले की भाँति 'जै-जै' ध्वनि फिर होने लगती थी। सरकार के प्रबन्ध से ऐसा प्रतीत होता था, जैसे किसी बड़े शक्तिशाली शत्रु का धावा होनेवाला है। खैर, पुलिस तो सरकार की नौकर हुई, वह जिस प्रकार चाहे, उसका प्रयोग कर सकती है, पर खेद की बात यह थी कि सरकार ने

सिविक-गार्डों की भर्ती युद्ध-काल में प्रजा की रक्षा तथा सहायता के लिए की थी, उनको 'महासभा' के विरुद्ध लड़ाया जा रहा था।

स्वागताध्यक्ष गिरफ़्तार

अधिवेशन २५ दिसम्बर से आरम्भ होनेवाला था, पर सरकार एक दिन पहले ही से गिरफ्तारियों की भरमार करने लगी। स्वागत-कारिणी-सभा व 'बिहार-प्रांतीय हिन्दू-सभा' के अध्यक्ष कुमार गङ्गासिंहनन्दनसिंहजी को दरभंगा में २३ दिसम्बर की शाम को ही गिरफ्तार कर लिया गया। कुमारजी उस दिन ३ बजे शाम को अपने घर से भागलपुर को चले थे। उनको सरकार ने वहाँ पहुँचने से पहले ही भागलपुर जाने पर गिरफ्तार कर लिया और उनको उनके ही बँगले में नज़रबन्द रखा। अपनी गिरफ्तारी के पूर्व कुमारजी ने यह वक्तव्य दिया—"अपने उन बन्धुओं का मैं हृदय से स्वागत करता हूँ, जो 'अखिल-भारतीय हिन्दू-महासभा' का अधिवेशन करने के लिये भागलपुर में एकत्रित हो सके हैं। इस ऐतिहासिक अवसर पर वहाँ पहुँचने से सरकार ने मुझे रोक रखा है, परन्तु मेरी आत्मा को वह वहाँ पहुँचने से नहीं रोक सकती। आपके स्वागत के लिये इस समय आँसू और पसीने के सिवा हम और क्या दे सकते हैं।

"हम लोगों ने अपने नैतिक अधिकारों की माँग कर,

पाशविक बल के समक्ष अपनी छाती खोल दी है। यही आपके त्याग का पुरस्कार है। हमें जगत्-पिता के प्रति कृतज्ञ होना चाहिये कि उसने हमें अपनी शक्ति तथा दुर्बलता मापने का अवसर दिया है। हमने अपने रोग का एक्स-रे देख लिया है। उसकी चिकित्सा तो कोई गुणी वैद्य ही करेगा, पर यह सदैव सच जानिये कि हिन्दुत्व मर नहीं सकता। वह अमर है, हिन्दू अवश्य जीते रहेंगे। पर प्रश्न है कैसे? इसका उत्तर 'महासभा'-द्वारा आपको देना है।"

और गिरफ्तारियाँ

२३ दिसम्बर को ही स्वागत कारिणी के मन्त्री बाबू सूर्यनारायणप्रसाद गिरफ्तार कर लिये गये, उन पर दफ़ा २६ 'डिफेंस ऑफ़ इण्डिया एक्ट' लगादी और उसी दिन पण्डित भरत मिश्र प्रधान मन्त्री, बिहार-प्रान्तीय 'हिन्दू-महासभा' भी दफ़ा १५१ ताजीरात हिन्द से गिरफ्तार कर लिये गये। डॉक्टर त्रिपाठी, मन्त्री 'बिहार-प्रान्तीय हिन्दू-सभा' पटना से कुछ कम्पाउण्डर तथा नर्सों के साथ भागलपुर आ रहे थे कि स्टेशन पर उतरते ही गिरफ्तार कर लिये गये। दूसरे स्वागताध्यक्ष, पण्डित रामेश्वर मिश्र, 'अखिल भारतीय हिन्दू-सभा' के मन्त्री मिस्टर आशुतोष लाहिरी एम्० एल्० ए० और श्री देशपाण्डे ऑफ़ नागपुर तथा अन्य ५०-६० प्रतिनिधि पकड़े गये और उन सब को

भागलपुर-जेल में रखा गया, इतनी रोक-टोक होने पर भी बहुत से प्रतिनिधि तथा कार्यकर्ता २३ तारीख़ को ही भागलपुर पहुँच गये और शेष ट्रेन, मोटर-लारी तथा पैदल आने लगे।

गया में प्रधानजी की गिरफ़्तारी

२५ दिसम्बर को राष्ट्रपति स्वतन्त्र वीर सावरकर भागलपुर-अधिवेशन के लिये बम्बई-मेल से प्रतिनिधियों तथा कार्यकर्ताओं को साथ लेकर आरहे थे। मार्ग में जबलपुर, प्रयाग, काशी, मुग़लसराय-आदि स्टेशनों पर आपका .ख़ूब स्वागत किया जा रहा था और राष्ट्रपतिजी हिन्दू-कार्यकर्ताओं को भागलपुर चलने का निमन्त्रण देते आ रहे थे। गया में रात को उनको भागलपुर के लिये गाड़ी बदलनी थी। जब गाड़ी गया-स्टेशन पर पहुँची, तो वहाँ पहिले से ही सहस्रों आदमी जमा थे और 'जय-जयकार' के नारे लगा रहे थे। डिप्टी-सुपरिण्टेण्डेण्ट पुलिस कितने ही सिपाहियों के साथ दफ़ा २६ 'डिफ़ेन्स ऑफ़ इण्डिया रूल्ज़' का वारण्ट लिये, वहाँ खड़े थे। जब वारण्ट आपको दिखाया गया, तो सावरकरजी ने कहा कि इसे पढ़कर सुनाओ। इसके पश्चात् तुरन्त ही गम्भीरता के साथ वीर सावरकर पुलिस-कार में जा बैठे .और तुरन्त ही सेण्ट्रल जेल ले जाये गये। राष्ट्रपतिजी का यही सन्देश था—'हम इज़्ज़त के साथ शान्ति चाहते हैं, भागलपुर-

अधिवेशन अवश्य किया जाय और जो कार्यक्रम उन्होंने पहले ही तैयार कर रखा था, उस पर अमल किया जाय।'

इस प्रकार राष्ट्रपतिजी २५ दिसम्बर को २ बजे रात को गया में गिरफ्तार कर लिये गये। जब यह समाचार भागलपुर पहुँचा, तो निराशा के स्थान पर उत्साह की लहर हिन्दू-हृदय में दौड़ गई और प्रत्येक हिन्दू ने अधिवेशन को सफल बनाना अपना कर्त्तव्य समझा। हड़ताल तो थी ही, तुरन्त दफा १४४ का ध्यान न करते हुए जनता एक जलूस की शक्ल में बन गई और यह जलूस नगर के सब से बड़े-बड़े स्थानों से गुजरा। हर पुरुष के मुख पर 'हिन्दू-महासभा' की जय, 'वीर सावरकर की जय', 'हिन्दुस्तान हिन्दुओं का'-आदि नारे थे। दो स्थानों पर, एक शुजागञ्ज, दूसरा लाजपतराय-पार्क में सभायें की गईं। प्रधान मिस्टर हरिकृष्ण वर्मा को भी गिरफ़्तार कर लिया गया और जनता पर लाठी-चार्ज कर दिया गया।

दूसरे नेताओं की गिरफ़्तारियाँ

अब हर गाड़ी से 'हिन्दू-महासभा' के नेता, प्रतिनिधि तथा स्वयंसेवक आ रहे थे। स्टेशन के बाहर पुलिस थी और पुलिस के पीछे सहस्रों पुरुषों की भीड़ लगी हुई थी, जो अपने नेताओं का स्वागत करने की इच्छा से वहाँ इकट्ठे होरहे थे। बड़े-बड़े ऑफ़ीसर ड्यूटी पर थे और समय-समय पर भीड़ पर लाठी-चार्ज होता था, परन्तु तब

भी भीड़ उसी प्रकार जमी हुई थी, मानों दफ़ा १४४ लगा ही नहीं।

२५ दिसम्बर को प्रातःकाल की गाड़ी से अखिल-भारतीय 'हिन्दू-महासभा' के प्रधान मन्त्री डॉक्टर नायडू भागलपुर पहुँचे, उनके साथ मद्रास से कुछ प्रधिनिधि भी आये थे, वे सब उतरते ही गिरफ़्तार कर लिये गये।

इसके पश्चात् तुरन्त ही समाचार मिला कि डॉक्टर मुंजे और मिस्टर एन० सी० चटर्जी जो बङ्गाल के बहुत-से प्रतिनिधियों के साथ भागलपुर आ रहे थे, कोलगञ्ज-स्टेशन पर गिरफ़्तार कर लिये गये और उन्हें भी भागलपुर-जेल में लाकर बन्द कर दिया और महाकोशल के मिस्टर खापर्डे तथा हक़ीम गङ्गाप्रसादजी भी गिरफ़्तार किये गये।

जब राष्ट्रपति सावरकर की ट्रेन भागलपुर पहुँची, तो स्टेशन के बाहर पहले से ही बड़ी भीड़ लगी हुई थी। प्रधानजी के साथ आनेवाले लगभग २०० स्वयं-सेवक तथा प्रतिनिधि इस गाड़ी से आ रहे थे। समस्त डिब्बों की खिड़कियों में 'महासभा' के झण्डे लहरा रहे थे और 'हिदू-सभा' की जय, 'वीर सावरकर' की जय से सारा वायु-मण्डल गूँज रहा था। सब-के-सब स्वयंसेवक ट्रेन से उतरते ही गिरफ्तार कर लिये गये और पुलिस-लारियों में बिठाकर जेल भेज दिये गये। दिल्ली से लाला नारायणदत्त कोपाध्यक्ष, अखिल-भारतीय 'हिन्दू-महासभा',

रायबहादुर हरिश्चन्द्रजी एडवोकेट प्रधान, दिल्ली प्रान्तीय 'हिन्दू - महासभा' लाला ऋषभचरणजी जैन, प्रधान-मन्त्री, 'दिल्ली-प्रान्तीय हिन्दू-महासभा', प्रोफ़ेसर रामसिंहजी म्यूनिसिपल कमिश्नर, पं० रामचन्द्र शर्मा एम०-ए०, एल०-एल० बी०, उपमन्त्री नई दिल्ली 'हिन्दू-महासभा', लाला दीनानाथ, वैद्य मोहनलालजी शास्त्री, म० कर्मचन्द तथा अन्य प्रतिनिधि प्रातःकाल की गाड़ी से भागलपुर पहुँचे, इनमें से केवल रायबहादुर हरिश्चन्द्रजी को गिरफ़्तार किया गया। इसके पश्चात् पंजाब से भाई परमानन्दजी एम्० एल्० ए० सेंट्रल, राजा महेश्वरदयाल सेठ ऑफ़ कोटा, लाला हरिराम सेठ ताल्लुकेदार मुरावाँ, पं० चन्द्रगुप्त विद्यालंकार-आदि भागलपुर-स्टेशन पर गिरफ्तार कर लिये गये। इलाहाबाद के एडवोकेट मिस्टर राममोहनलाल भी जुलूस निकालते हुए गिरफ्तार कर लिये गये। कुछ स्वयंसेविकाएँ भी पकड़ी गईं, पर बाद में छोड़ दी गईं। नगर में स्थान-स्थान पर धर-पकड़ और लाठी-चार्ज हुआ, लेकिन पुलिस का इतना प्रबन्ध होने पर भी २४ दिसम्बर की शाम तक लगभग १२० प्रतिनिधि भागलपुर जा पहुँचे और उनमें से अधिकतर देवी बाबू की प्रसिद्ध धर्मशाला में ठहरे।

२४ दिसम्बर को जल्से

दो बजे दोपहर के बाद नगर में कुछ शान्ति दिखाई

देने लगी। उस दिन सभापतिजी का जुलूस निकलना था। एक जुलूस तो प्रातः ही उनकी गिरफ्तारी की सूचना पाते निकल चुका था। शाम को दो-तीन स्थानों पर सभाएँ भी की गईं, जो पुलिस ने थोड़ी देर बाद लाठी-चार्ज कर, तितर-बितर करदीं। एक जल्सा शुजागंज में 'राजस्थान-प्रान्तीय हिन्दू-सभा' के मन्त्री श्री दुर्गाप्रसादजी के सभा-पतित्व में हुआ और इसमें बिहार-सरकार की दमन-नीति के विरुद्ध प्रस्ताव पास किया गया। अभी सभा हो ही रही थी कि पुलिस आ गई और लगी डण्डे बरसाने, पर कोई गिरफ्तारी नहीं हुई। एक सभा काथा में भी की गई, उसे भी पुलिस घुड़-सवारों ने भङ्ग कर डाला। एक-दो सभाएँ और करने का प्रयत्न किया गया। २४ दिसम्बर को भागलपुर में क़रीब-क़रीब एक हज़ार हिन्दू नेता गिर-फ्तार हुए होंगे, जो मार्ग में ही पकड़े गये उनकी गणना पृथक् है।

२५ दिसम्बर को बंगाल के मन्त्री भी गिरफ़्तार

२५ दिसम्बर को अधिवेशन का कार्यक्रम पण्डाल में आरम्भ होना था और उस दिन ही स्वागत-कारिणी के प्रधान तथा 'अखिल-भारतीय हिन्दू-सभा' के भाषण होने-वाले थे, पर इस समय स्वागताध्यक्ष और राष्ट्रपति दोनों ही जेल में थे। 'हिन्दू-महासभा' के प्रधान कार्यकर्त्ता डॉक्टर श्यामाप्रसाद मुकर्जी, जो थोड़े दिनों से बंगाल के अर्थ-मन्त्री

बने थे, तथा देश की साम्प्रदायिक दशा को सुधार रहे थे, इसी विचार से स्वतन्त्र वीर सावरकर ने उन्हें बम्बई से ही लिख भेजा था कि वह भागलपुर न आयें और कलकत्ता में ही रहकर अपने मन्त्रि-पद से हिन्दुओं की सेवा करते रहें। डॉक्टर मुकर्जी ने प्रधानजी की आज्ञा मानकर जाना स्थगित कर दिया। पर जब स्वयं प्रधानजी गया में पकड़े गये, तो प्रधान कार्यकर्ता होने के नाते उन्होंने अपना कर्तव्य समझा कि वह भागलपुर अवश्य जायें और 'महासभा' की बागडोर अपने हाथ में लें। इस बात को ध्यान में रखते हुए कि यदि वह गिरफ्तार हो भी गये तो 'महासभा' का कार्य कौन चलायेगा—उन्होंने अपने पश्चात् सर मन्मथनाथ मुकर्जी, भूतपूर्व चीफ जस्टिस, कलकत्ता-हाईकोर्ट को अपना उत्तराधिकारी बना दिया और स्वयं बाबू पद्मराज जैन लेफ्टिनेन्ट पटवर्धन, मि० वी० सी० मुकर्जी, रायबहादुर गोनेन्द्रकृष्णराय, मिस्टर मनोरंजन चौधरी, मिस्टर नरेन्द्र चक्रवर्ती, मिस्टर क्षेत्रमोहनराय-आदि बहुत-से प्रतिनिधियों व स्वयं-सेवकों के साथ भागलपुर के लिये चल दिये। कलकत्ता से चलने के पहले डॉक्टर मुकर्जी ने एक वक्तव्य-द्वारा बतलाया कि उन्होंने प्रधानजी की आज्ञा के विरुद्ध भागलपुर जाना क्यों निश्चय किया है? वह कहते हैं, "प्रधानजी ने मुझे आज्ञा दी है कि मैं भागलपुर न जाऊँ। मैंने उनकी आज्ञा मानकर वहाँ जाना स्थगित कर दिया।

पर अब स्वयं प्रधानजी जेल में हैं और उनके स्थान पर मैं प्रधान हूँ, इसलिये मेरा कर्तव्य है कि मैं 'महासभा' के कार्य की बागडोर अपने हाथ में लेलूँ, मैं वहाँ एक मन्त्री के नाते से नहीं जा रहा। मैं तो वहाँ 'हिन्दू-महासभा' के एक सेवक के रूप में जा रहा हूँ। जब मैंने स्वयं दूसरों से कहा कि वह भागलपुर अवश्य जायें, तो इस आवश्यक समय में मैं कैसे पीछे रह सकता हूँ। मेरे लिये यह मेरी मर्यादा का प्रश्न है कि मैं इस संकट-काल में अपने उन भाइयों के निकट नहीं हूँ, जो हिन्दुओं के नागरिक अधिकारों के लिये लड़ रहे हैं।"

"बिहार-सरकार इस समय बिना मन्त्रियों के पुराने ढंग का वह राज्य बना हुआ है, जो पहले कई बार प्रजा व सरकार में खींचातानी करवा चुकी है और भारत तथा बृटिश-सरकार में विद्रोह डलवा चुकी है। यह बड़े खेद की बात है कि इस युद्ध-काल में बिहार-सरकार की नीति का दिवाला पिट गया है। इस समय 'हिन्दू-सभा' एक ऐसी 'अखिल-भारतीय-संस्था' है, जो सरकार को युद्ध-प्रयत्नों में सहायता दे रही है और काँग्रेस की सहयोगिता-नीति के विरुद्ध चल रही है।" उन्होंने आगे यह भी कहा, "मेरा भागलपुर जाना कोई साम्प्रदायिक प्रश्न नहीं है। मैं वहाँ केवल हिन्दुओं के नागरिक अधिकारों की रक्षा के लिये जा रहा हूँ। मैं भारत के सभी मनुष्यों से अपील

करता हूँ कि वह 'महासभा' के साथ सहानुभूति प्रकट करें और इसकी सहायता करें। स्वतन्त्रता देवी का मन्दिर इसी प्रकार बन सकेगा।"

डॉक्टर साहब की गाड़ी जब २५ दिसम्बर को कोलगंज-स्टेशन पर पहुँची, तो एक मैजिस्ट्रेट, डिप्टी सुपरिण्टेण्डेण्ट पुलिस और कुछ सिपाही इनके स्वागत के लिये वहाँ खड़े थे। डॉक्टर साहब को वहाँ उतार दिया गया और उन्हें कलकत्ता वापस जाने को कहा गया, जिसे उन्होंने अस्वीकार किया। २६ तारीख को उन्हें बिहार-सरकार की ओर से नोटिस दिया गया कि २५ से २७ दिसम्बर तक बिहार-प्रांत में नहीं रह सकते। इस आज्ञा को भी न मानने पर डॉक्टर साहिब को जबानी ही कह दिया गया कि वह गिरफ्तार हैं और भागलपुर नहीं जा सकते। बाबू पद्मराज जैन व अन्य प्रतिनिधियों को वहीं डॉक्टर साहिब के साथ ही कोलगञ्ज में रोके रखा गया।

पञ्जाब के भूतपूर्व मन्त्री व अन्य नेताओं की गिरफ्तारियाँ

२५ दिसम्बर को भागलपुर-स्टेशन से बाहर निकलते ही सर गोकुलचन्द नारङ्ग भूतपूर्व-मन्त्री पञ्जाब, रायबहादुर मेहरचन्द खन्ना एम० एल० ए० (सीमाप्रान्त) मिस्टर अर्जुनदेव मन्त्री पञ्जाब हिन्दू-सभा, पं० लक्ष्मीनारायण शास्त्री, मिस्टर देशबन्धु, मन्त्री अवध 'हिन्दू-सभा', राय बहादुर महेन्द्रनाथ, लेफ्टिनेन्ट पटवर्धन, रामनाथ कालिया ऑफ

देहली, हर गोविन्द गुप्त, (बङ्गाल) जितेन्द्र शर्मा, पं० हर-नारायण शर्मा, (पटना) कामताप्रसाद (बरेली) आदि को गिर-फ्तार किया गया। पुलिसवालों ने जिन-जिन नेताओं को गिरफ्तार करना था उनकी लिस्ट पहले ही बनाली थी और उनको स्टेशन से बाहर निकलते ही तुरन्त पकड़ लिया जाता था। बाबू पद्मराज जैन, जिनको कोलगञ्ज में रोक लिया था सरकारी आज्ञा उल्लङ्घन कर भागलपुर चले आने पर आते ही भागलपुर-स्टेशन पर पकड़कर जेल भेज दिया गया। बाबू विपिन भूषण बनर्जी मन्त्री 'हिन्दू-सेवा सङ्घ' भी उसी समय पकड़े गये।

अब प्रतिनिधियों तथा स्वयंसेवकों की गिरफ्तारी की सूचना बाहर से भी आने लगी। मुंगेर जिला 'हिन्दू-सभा' के मन्त्री कैलाशचन्द्र वर्मा १५ स्वयं सेवकों के साथ मार्ग में पकड़ लिये गये। मुंगेर के राजा सर रघुनन्दनप्रसादसिंह के सुपुत्र कुँवर सजन्दनप्रसादसिंहजी और ५० के लगभग प्रतिनिधि भी मार्ग में पकड़ लिये गये। इसी प्रकार और स्थानों से भी गिरफ्तारियों की सूचनायें आनी आरम्भ हो गई।

वॉयसरॉय का इन्कार

सर मन्मथनाथ मुकर्जी, प्रधान बंगाल-प्रान्तीय 'हिन्दू-सभा' ने जिनको डॉक्टर श्यामाप्रशाद मुकर्जी ने अपना उत्तराधिकारी नियत किया था, कलकत्ता में आध घण्टे तक

वॉयसरॉय साहिब से भागलपुर के सम्बन्ध में बातचीत की। और उनसे हस्तक्षेप करने की अपील की, परन्तु वॉयसरॉय साहिब ने यह कहकर कि प्रान्त में शान्ति स्थापित करना प्रान्तीय-सरकार का कार्य है, इस मामले में हस्तक्षेप करने से इन्कार कर दिया।

२५ दिसम्बर को दोपहर तक और भी कई गिरफ्तारियाँ हुईं, जिनमें से मुख्य पं० राघोवाचार्या, रायबहादुर गुणीन्द्र-कृष्णराय-आदि के नाम हैं। अब तक लगभग ५०० प्रतिनिधि जेल में बन्द हो चुके थे। सरकार के जासूस थे.पता ले रहे थे कि 'महासभा'-वाले क्या करना चाहते हैं। उधर 'महासभा' के प्रतिनिधियों को प्रधान सावरकरजी की आज्ञा थी कि भागलपुर में २५ दिसम्बर से अधिवेशन अवश्य आरम्भ कर दिया जाये, चाहे किसी स्थान पर हो और किसी अवस्था में हो। 'महासभा' के नेता जो अभी तक जेल के बाहर थे, वह इस बात पर विचार कर, इस निर्णय पर पहुँचे कि जल्से अवश्य किये जायें और हर सभा में प्रधानजी का भाषण और उनके भेजे हुए प्रस्ताव पढ़े जावें। यह सब कार्यक्रम दोपहर के पश्चात् होना निश्चित हुआ।

लाला नारायणदत्तजी

'हिन्दू-महासभा' के भाग्य से अभी तक इसके कोषाध्यक्ष दिल्ली के सुप्रसिद्ध हिन्दू-नेता लाला नारायणदत्तजी जेल के बाहर ही थे और अन्य प्रतिनिधियों के साथ देवीबाबू की

जेल में दिल्ली के जत्थे का चित्र

धर्मशाला में ठहरे हुए थे। लालाजी इस वृद्धावस्था में भी दर्जनों सभाओं में कार्य करते हैं और किसी के प्रधान, किसी के मन्त्री और किसी के कोषाध्यक्ष बनकर उनको आगे बढ़ाते हैं। दिल्ली में 'हिन्दू-महासभा' का विशाल-भवन उनकी ही देख-रेख में बना था। वह कई वर्षों से 'महासभा' के कोषाध्यक्ष बनते चले आ रहे हैं। राष्ट्रपति सावरकरजी ने भी हेड-ऑफ़िस का कार्य उनको सौंप दिया है। वृद्ध होते हुए भी उनमें नव-युवकों का-सा साहस है। भागलपुर में अधिवेशन करने की समस्त जिम्मेदारी 'महा-सभा' के इस भीष्म पितामह ने अपने ऊपर ले ली और जो सफलता वहाँ 'महासभा' को हो सकी, उसमें आपका बड़ा हाथ है।

एक ही समय तीन बड़ी सभायें

दोपहर के बाद से छोटी-मोटी सभायें तो कई स्थानों पर हुईं, पर निम्न-लिखित तीन बड़ी सभायें सब से मुख्य हैं: (१) देवीबाबू की धर्मशालावाली सभा (२) लाजपतराय पार्क के पास मंसूरगंज चौक वाली सभा (३) चर्च रोड पर जनरल औषधालय वाली सभा। इन सभाओं में पहले स्वागतकारिणी समिति के प्रधान का भाषण फिर राष्ट्रपति वीर सावरकर का भाषण पढ़ा गया और जो प्रस्ताव सावरकरजी ने लिखकर भेजे, वह पास किये गये। बाद में पुलिस ने छापा मारकर सभायें भंग कर दीं।

पहली मीटिंग के प्रधान स्वयं लाला नारायणदत्त जी थे और उन्होंने बिहार-सरकार के प्रतिबन्ध को तोड़ने की सारी जिम्मेदारी अपने ऊपर ले ली। इस मीटिंग में दर्शकों के अतिरिक्त हर प्रान्त से दो हज़ार के लगभग प्रतिनिधि व स्वयं-सेवक उपस्थित थे और यह सभा हुई भी बड़ी चतुरता के साथ। वास्तव में हम इसको सभा न कह कर एक प्रकार से 'महासभा' का वार्षिक अधिवेशन ही कह सकते हैं।

मिस्टर विश्वनाथ श्रीवास्तव ने स्वागताध्यक्ष का भाषण पढ़ा। फिर लालाजी ने राष्ट्रपतिजी का भाषण पढ़ा और इसके पश्चात् मिस्टर निरञ्जनलाल मुकर्जी ने, जो डॉक्टर श्यामाप्रसाद मुकर्जी के लैफ्टिनेंट हैं, प्रतिनिधियों को प्रस्ताव पढ़कर सुनाये। फिर एक प्रस्ताव पढ़कर और उसका समर्थन-आदि कर, प्रतिनिधियों ने उनको पास किया। इसके बाद निम्न-लिखित सज्जनों ने भाषण दिये :—श्री मनोरञ्जन चौधरी, लाला गणपतराय, सरदार गोविन्दप्रसादसिंह, मिस्टर नन्दगोपाल चौधरी, मिस्टर सुरनाथ चक्रवर्ती, मिस्टर श्रीकुमार मित्र, मिस्टर सुरेन्द्रकुमारराय, मिस्टर गोकुलचन्द, मिस्टर देशपाँडे, मिस्टर निशाल, मिस्टर नगीन्द्रनाथ नन्दी-इत्यादि। इस प्रकार यह अधिवेशन दो घण्टे से अधिक समय तक होता रहा। तब प्रधानजी और कुछ नेता लाजपतराय-पार्कवाली सभा का हाल देखने को

वहाँ चले, पर सभा होती रही। कुछ देर बाद पुलिस को पता चल गया और एक अँग्रेज सारजेण्ट कुछ सिपाहियों को लिये आ पहुँचा और श्री नगीन्द्रनन्दी, गोकुलचन्द देशपाँडे, निशाल तथा विश्वनाथप्रसाद श्रीवास्तव को गिरफ़्तार कर लाठी-चार्ज-द्वारा सभा भङ्ग करदी।

दूसरी सभा लाजपतराय-पार्क के पास हो रही थी। इसी पार्क में 'महासभा'-अधिवेशन के लिये पण्डाल बनाया जा रहा था कि पुलिस ने इस पर बरबस अधिकार कर लिया था और पण्डाल तोड़-फोड़ डाला था। अब भी पुलिस का कड़ा पहरा पार्क के चारों ओर लगा था, वहाँ से थोड़ी दूर पर ही मनसुरगञ्ज चौक में दूसरी सभा करने का आयोजन किया गया था। इस सभा के प्रधान बिहार-प्रान्तीय नव-युवक लीग के अध्यक्ष कुँवर कृष्णवल्लभजी चुने गये। कुँवरजी को सावरकरजी ने विशेषकर अधिवेशन के लिये भागलपुर भेजा था। इसलिये कुँवरजी ने घोषणा की कि इसी सभा को वास्तव में अधिवेशन समझा जाय, इस सभा में राष्ट्रपति सावरकरजी का भाषण पण्डित रामचन्द्र शर्मा ने पढ़ा। फिर प्रस्ताव पास होने लगे। अभी यह कार्यक्रम आरम्भ भी न हुआ कि पुलिस आ पहुँची, कुँवर साहिब तथा पण्डित रामचन्द्र को गिरफ़्तार कर सभा भङ्ग करदी गई।

तीसरी सभा चर्चरोड पर हो रही थी, इसके प्रधान

यू० पी० 'हिन्दू-सभा' के मन्त्री पण्डित राजेन्द्रमणि शास्त्री थे। वहाँ भी इसी प्रकार भाषण पढ़ने के पश्चात् प्रस्ताव पास किये गये। सभा समाप्त होने ही वाली थी कि पुलिस आगई और प्रधानजी, डॉक्टर के० सी० मित्र तथा ब्रह्मानन्दजी सम्पादक 'हिन्दू', देहली तथा १३ अन्य व्यक्तियों को गिरफ़्तार कर सभा को भङ्ग कर चली गई।

इन तीन बड़ी सभाओं के अतिरिक्त नगर में और भी कई छोटी-मोटी सभायें हुईं। एक समाचार-पत्र के सम्वाद-दाता ने लिखा है कि कम-से-कम २५ सभायें हुईं। कई जगह लाठी-चार्ज हुआ और कुछ स्वयंसेवक घोड़ों की टापों से भी घायल हुए। २५ दिसम्बर को एक नव-युवक स्वयं-सेवक ने इतना उत्साह दिखाया कि पुलिस का कड़ा पहरा होते हुए भी किसी प्रकार लाजपतराय-पार्क में जा पहुँचा और जिस स्थान पर 'महासभा' का पण्डाल बन रहा था, ठीक वहीं 'हिन्दू-महासभा' का झण्डा गाड़कर 'जै-जै' करने लगा। पुलिसवालों ने तुरन्त ही झण्डा छीन लिया और स्वयंसेवक को घूँसों तथा बेतों से खूब मारा, पर वह हँसता ही रहा। अवश्य ही उस वीर ने 'हिन्दू-धर्म' की लाज रख ली धन्य है ऐसे पुत्र को! हम इस समय यह भी कह देना उचित समझते हैं कि पुलिस के सिपाही अत्याचार करना नहीं चाहते थे, पर विचारे पराधीन थे। उनकी सहा-नुभूति 'हिन्दू-सभा' वालों के साथ थी और न्याय भी यही

था, इसी कारण एक-दो को जेल भी भेज दिया गया।

'महासभा' का अधिवेशन जेल में

कहते हैं कि २५ दिसम्बर को भागलपुर में १ के स्थान पर ५२ अधिवेशन हुए पर पुलिस ने शीघ्र या देर से सब पर डंडे बरसाये इस पर भी 'महासभा' का एक अधिवेशन बड़ी शान्ति के साथ समाप्त हुआ और इसमें पुलिस ने किसी भी प्रकार का हस्तक्षेप नहीं किया। 'महासभा' का यह अधिवेशन सेन्ट्रल-जेल भागलपुर में भी डॉक्टर मुंजे के सभापतित्व में हुआ और इसमें 'महासभा' के समस्त प्रान्तों के नेताओं ने भाग लिया। भाई परमानन्द जी, डॉक्टर गोकलचन्द नारंग, रायबहादुर मेहरचन्द खन्ना, राजा महेश्वरीदयाल, लाला हरीराम सेठ, बाबू पद्मराज जैन, श्री एन० सी० चटर्जी, मिस्टर बी० जी० खापर्डे, डाक्टर नायडू, रायबहादुर हरिश्चन्द्र, मिस्टर आसुतोष विहारी-आदि हिन्दू-नेता जेल ही में तो थे। इस अधिवेशन में भी राष्ट्रपतिजी का भाषण पढ़ा गया और वही प्रस्ताव पास हुऐ कई नेताओं ने व्याख्यान दिये। पर अनोखी बात यह हुई कि वहाँ न पुलिस गई और न डंडे बरसे और न कोई गिरफ्तारी हुई। इससे यह परिणाम न निकला कि जेल के अन्दरवाले क़ैदियों के अधिकार बाहर स्वतन्त्र कहलानेवालों से अधिक हैं।

स्वागताध्यक्षजी का भाषण

भागलपुर-अधिवेशन के स्वागताध्यक्ष श्री कुमार गंगानाथसिंह को सरकार ने दरभंगा ही में बन्द कर रक्खा था, उन्होंने पं० रामेश्वर मिश्रजी को स्थानापन्न स्वागताध्यक्ष नियत किया था, किन्तु वह भी गिरफ्तार कर लिये गये थे। पं० जी का भाषण जो आज की सभाओं से पढ़ा गया उसके कुछ अंश नीचे लिख दिये गये हैं:—

आप सब लोग जानते ही हैं कि हमारा यह अधिवेशन ऐसी परिस्थिति में हो रहा है जबकि इस देश पर शासन करनेवाली नौकरशाही केवल इस कारण हम पर अति क्रुद्ध है कि हम अपने नागरिक अधिकारों पर, ऐसे साधारण अधिकारों पर जो किसी भी ऐसे देश के नागरिकों के होते हैं, जिसका शासन किसी स्वेच्छाचारी के हाथ में न हो, डटे हैं। हम अभियोगी नहीं हैं, क़ानून तोड़नेवाले नहीं हैं, और न कभी रहे हैं, तो भी अधिकारियों ने इस कारण हमपर प्रतिबन्ध लगाना उचित समझा कि हमने सरकार की ग़ैरक़ानूनी, मनमानी तथा अनुचित आज्ञाओं के सामने सर झुकाने से इनकार कर दिया। युद्ध की सफलता के लिए हम जो भी दे सकते हैं, दे रहे हैं। प्रान्त में हमारी ही एक सार्वजनिक संस्था है, जो युद्धोद्योग में ब्रिटिश सरकार से सहयोग कर रही है तिस पर भी हमको अपना वार्षिक अधिवेशन करने और हिन्दू-जाति की

राजनीतिक, सामाजिक तथा आर्थिक दशा पर विचार करने से रोक देना इस कारण आवश्यक समझा गया कि नौकरशाही के मन में यह बात आ गई कि सम्भव है हमारे विचार-विमर्श से अपर सम्प्रदाय में, अधिवेशन के कुछ ही दिन बाद बकराईद पड़ने के कारण, इतनी उत्तेजना फैल जाय कि यहाँ साम्प्रदायिक उपद्रव हो जाय। इस पर मैं इतना ही कहूँगा कि इस कार्यवाही के लिए उत्तरदायी अधिकारियों की बुद्धि की मैं प्रशंसा करता हूँ। मुझे इस बात का दुःख है कि युद्ध के समीप आ जाने से कदाचित् उनकी बुद्धि कुंठित हो गई है, कारण वे सम्यक् विचार नहीं कर सकते। ऐसी परिस्थिति में हमारी ओर से, ऐसे लोगों की ओर से जिनके सर पर नङ्गी तलवार लटक रही है, किया जानेवाला स्वागत-सत्कार उपयुक्त न होगा। हम आपके आराम के लिये पर्याप्त प्रबन्ध न कर सके और आपसे प्रार्थना करेंगे कि इस परिस्थिति में हम जो कुछ रूखा-सूखा जुटा सके हैं, उसी को आप ग्रहण करें।

राष्ट्रपतिजी का भाषण

सहयोगियों,

लगातार पाँच वर्षों तक मुझ पर ही अखिल-भारतीय-'हिन्दू-महासभा' की अध्यक्षता का भार सौंप कर इस वर्ष भी मेरे प्रति आपने जो विश्वास एवं सम्मान प्रकट किया है, इसके लिए मैं कृतज्ञ हूँ। अपनी अस्वस्थता एवं हिन्दू-हित-

रक्षार्थ गत वर्ष तो मैंने दो बार इस महान् पद से इस्तीफा देना चाहा था, जिससे 'हिन्दू-महासभा' का नेतृत्व किसी योग्य व्यक्ति के मजबूत हाथों में जा सके। किन्तु, भारत-भर के मेरे सहयोगियों के हार्दिक अनुरोध तथा अखिल-भारतीय 'हिन्दू-महासभा' की कार्यकारिणी समिति की आज्ञा से मुझे फिर इस अध्यक्ष-पद के उत्तरदायित्वपूर्ण कार्यों को सँभालने का जिम्मा पड़ा। और, व्यक्तिगत रूप से मैंने इसकी पूरी चेष्टा की कि मुझ में जो हिन्दू-सनातनियों का विश्वास है, उसकी मैं रक्षा कर सकूँ। इस वर्ष भी जब आगामी वर्ष के लिए अध्यक्ष के चुनाव का समय आया तो मैंने विभिन्न प्रान्तों के नेताओं को इस बात की स्पष्ट सूचना दे दी कि, मुझे इस वर्ष किसी भी तरह इस अध्यक्ष-पद से हट जाने की मंजूरी देदी जाय। मैंने तो इतना तक निश्चय कर लिया था कि चुनाव हो जाने पर भी मैं इस्तीफा दे दूँगा, किन्तु उसी समय सरकार ने यह स्पष्ट कर दिया कि वह अखिल-भारतीय-'हिन्दू-महासभा' के भागलपुर के अधिवेशन पर से प्रतिबन्ध उठा लेने को तैयार नहीं है। इसी सरकारी प्रतिबन्ध के कारण मेरे मन से भी इस्तीफा दे देने का विचार जाता रहा।

गत वर्ष मदुरा के अधिवेशन में यह निश्चय हुआ था कि अगला अधिवेशन बिहार में किया जाय और बिहार के विभिन्न स्थानों का निरीक्षण करने के बाद यही

निश्चय हुआ कि अधिवेशन भागलपुर में ही किया जाय। सरकार भी इस बात को स्वीकार करेगी कि 'महासभा' का स्वप्न में भी यह अभिप्राय नहीं था कि बकराईद के अवसर पर भागलपुर के ख़ासवर्ग के मुसलमानों की साम्प्रदायिक शान्ति को वह भंग करे। बकराईद का त्यौहार समस्त भारतवर्ष में मनाया जाता है और इसका कोई कारण नहीं कि 'हिन्दू-महासभा' वालों को भारत-भर में केवल भागलपुर के मुसलमानों ही से कोई विशेष विरोध हो। किन्तु तो भी 'महासभा' के लिए स्थानका निश्चय हो जाने पर सरकार ने एकाएक विज्ञप्ति प्रकाशित करके विहार के कई ज़िलों पर १ दिसम्बर, १६४१ से १० जनवरी, १६४२ तक प्रतिबन्ध लगा दिया।

विहार-सरकार ने इसका यह कारण बतलाया कि बकराईद और 'हिन्दू-महासभा' का अधिवेशन यदि साथ ही पड़े तो पुलिस की कमी के कारण भागलपुर में शान्ति बनाये रखना उसके लिए कठिन हो जायगा। एक साथ दोनों का पड़ने का निराकरण करने के उद्देश्य से हिन्दू-सभा ने बड़े दिन की छुट्टियों में २४ से २७ दिसम्बर तक अपना अधिवेशन करने का निश्चय किया, जैसा कि कई वर्षों से होता आया है। इस प्रबन्धसे 'हिन्दू-महासभा' का अधिवेशन बकराईद से दो दिन पहले ही समाप्त हो जाता है। किन्तु फिर भी विहार-सरकार ने इस बहाने से

प्रतिबन्ध हटा लेना स्वीकार नहीं किया कि यदि दोनों एक-साथ नहीं भी पड़ें, तो भी भागलपुर में साम्प्रदायिक दङ्गा हो जाने की सम्भावना है। सचमुच ही बकराईद के अवसर पर भारत-भर में प्रायः साम्प्रदायिक दंगा हो ही जाया करता है। और, हिन्दू-सभा? वह तो अपना शान्तिपूर्ण अधिवेशन करने के लिए प्रसिद्ध है।

सरकार ने अपनी दूसरी विज्ञप्ति में, जो प्रकाशित की प्रतिबन्ध के समय को घटाकर १० जनवरी के बदले ४ जनवरी तय कर दिया, किन्तु यह स्पष्ट नहीं किया गया कि यदि 'महासभा' का अधिवेशन ५ जनवरी को किया जाय तो वह फिर प्रतिबन्ध नहीं लगावेगी। फलतः अधिवेशन बकराईद के पहले या पीछे होता उस पर प्रतिबन्ध लगा ही रहता।

यही बात जो कही थी कि बिहार-सरकार के पास पुलिस के आदमी कम हैं, इसके सम्बन्ध में इतना ही कहना जरूरी होगा, कि तब उसने बार-बार इस बात पर क्यों इतना जोर दिया कि यदि प्रतिबन्ध तोड़कर यहाँ अधिवेशन किया जायगा तो बिहार-सरकार अपनी सारी सैनिक-शक्ति लगाकर अधिवेशन नहीं होने देगी। अब विचारणीय विषय यह है कि यदि बिहार-सरकार में इतनी शक्ति है कि वह 'हिन्दू-सभा' के अधिवेशन में आये हुए लाखो व्यक्तियों पर वह अभी प्रभुता जता सकती है

तो क्या कारण है कि भागलपुर के मुट्ठी-भर उपद्रवी गुण्डों को दबाने में उसने अपनी असमर्थता प्रकट की !

इस वर्ष मद्रास में अखिल-भारतीय मुस्लिम-लीग का अधिवेशन जो हुआ था, उस अवसर पर हिन्दुओं पर १४४ दफ़ा लगा दी गई थी और अधिवेशन में हिन्दू-विरोधी गन्दे भाषण किये गये और का प्रस्ताव पास हुए। अब भागलपुर में 'हिन्दू-महासभा' का अधिवेशन होना निश्चित हुआ तो मुसल्मानों पर प्रतिबन्ध न लगाकर 'हिन्दू-महासभा' पर ही लगा दिया गया, जिससे वे अपने आवश्यक नागरिक अधिकार का भी उपयोग नहीं कर सके।

मुस्लिम-समाज के उपद्रवी वर्ग को ख़ुश करने के लिए भारत-भर में हिन्दुओं के जुलूस, मूर्ति के जलप्रवाह तथा सभाओं पर सरकार इसी तरह हिन्दू-विरोधी पक्षपातपूर्ण नीति का अवलम्बन करती आई।

इसका कारण भी भारत-भर में एक-सा बतलाया जाता है—बस, वही शान्ति क़ायम रखने में सरकार की कर्तव्य-निष्ठा।

किन्तु सरकार का तो यह कर्तव्य नहीं होना चाहिए कि जो क़ानून के माननेवाले हैं, उनका अधिकार कुचलकर उपद्रवियों को ख़ुश किया जाय।

सरकार की इस नीति की तह में एक ही कारण है—वह समझती है कि हिन्दू बड़े ही भोले और क़ानून के

माननेवाले होते हैं, इसलिए कट्टर मुसल्मानों की अपेक्षा उन पर अनीतिपूर्ण प्रतिबन्ध लगा देना अधिक सहल होगा।

हिन्दू, ईसाई तथा पारसियों के नागरिक एवं धार्मिक त्यौहार इतने शान्तिपूर्वक सम्पन्न होते हैं कि भारत-भर में सब सम्प्रदाय के लोग इनमें ख़ुशियाँ मनाते हैं, किन्तु मुसल्मानों के त्यौहारों में दंगे हो ही जाते हैं। इन अवसरों पर केवल हिन्दू ही नहीं, प्रत्युत् अन्य ग़ैर मुस्लिम सम्प्रदायों के जीवन तथा सम्पत्ति ख़तरे में पड़ जाती है। इस का उत्तरदायित्व केवल उपद्रवी मुसल्मानों पर ही नहीं है, सरकार को भी इसके लिए ज़िम्मेदार कहा जा सकता है, जो शान्ति-स्थापन के नाम पर मुस्लिम दंगाइयों को दण्डित न करके हिन्दुओं के नागरिक अधिकारों का अपहरण कर लेती है।

भागलपुर-अधिवेशन के सम्बन्ध में भी सरकार मुस्लिम-पर्व बकराईद की ही दुहाई देती है। यदि सरकार यही सोचती है कि 'हिन्दू-महासभा' का अधिवेशन होने से भागलपुर में साम्प्रदायिक अग्नि सुलग उठेगी, तो वह उपद्रवियों को ही वश में करने की कोशिश क्यों नहीं करती? ईसाइयों का पर्व भी तो इन्हीं दिनों पड़ता है, किन्तु वे आज तक कभी हिन्दुओं की सभाओं से उत्तेजित नहीं हुए।

भागलपुर के अधिवेशन पर जो प्रतिबन्ध लगाया गया है, वह अनीतिपूर्ण होने के साथ ही अवैध भी है।

इस युद्ध में ब्रिटिश सरकार को 'हिन्दू-महासभा' का जितना सहयोग प्राप्त है, उतना और किसी का भी नहीं। हिन्दू-नेता देश-भर में दौरा करते और लोगों से कहते फिरते हैं कि सेना में भरती होइये। जिसके फल-स्वरूप कितने हिन्दू सेना में भरती हो चुके हैं। भारत-रक्षा-विधान के अन्तर्गत इस अधिवेशन पर प्रतिबन्ध लगा देना अनुचित है। इन सब बातों से स्पष्ट है कि सरकार ने केवल वैधानिक ही नहीं, राजनैतिक ग़लती भी की है।

अब समय आगया है, जब हिन्दुओं को यह दिखा देना चाहिए कि वे अपने नागरिक एवं धार्मिक अधिकारों का कुचला जाना नहीं सहन कर सकते। हिन्दुओं को चाहिए कि अब सरकार से अन्य किसी वर्ग की हिन्दू-विरोधी नीति का विरोध करें।

अब मैं इसे भी स्पष्ट कर देना चाहता हूँ कि यदि समय पर प्रतिबन्ध नहीं भी उठा लिया जाय, तो भी महा-सभावाले भागलपुर में अधिवेशन करने चल पड़े हैं। इस का यह अभिप्राय नहीं कि सरकार को हम चुनौती देते हैं। हम वहाँ 'हिन्दू-सभा' के झण्डे के नीचे उसी उद्देश्य से एकत्र होंगे कि हम एक-साथ मिल कर अपने नागरिक अधिकारों की रक्षा करना चाहते हैं। फिर भी यदि हमारे

ऊपर प्रतिबन्ध लगा ही रहा और पुलिस ने हमारे विरुद्ध अपने शारीरिक बल का प्रयोग किया, तो बिना किसी विरोध-प्रदर्शन के हम गिरफ्तार होने के लिए तैयार रहेंगे।

मुझे ज़रा भी सन्देह नहीं है कि यदि भारत के सभी भागों से आकर हिन्दू भारी संख्या में भागलपुर में एकत्र हों और दृढ़ निश्चय के साथ सविनय विरोध के आन्दोलन में शरीक हों, तो 'हिन्दू-महासभा' का तेईसवाँ अधिवेशन भूतकाल के अन्य अधिवेशनों की अपेक्षा कहीं अधिक सफल होगा, किन्तु हिन्दू-ध्वज के सम्मान की रक्षा के लिए उन्हें जेल-यात्रा, लाठी-चार्ज तथा अन्य प्रकार के कष्ट-सहन को तुच्छ समझना होगा।

इस बात की सम्भावना अधिक है कि भागलपुर-अधिवेशन में बाक़ायदा इस भाषण के पढ़ने का अवसर नहीं मिलेगा। विस्तृत रूप से भाषण लिखने का समय भी नहीं रहा। अतः इस नाज़ुक परिस्थिति में मैं हिन्दू-आन्दोलन के भावी कार्यक्रम के सम्बन्ध में संकेत-मात्र करूँगा।

नैपाल के महाराज के प्रति सम्मान

हिन्दू-धर्म के रक्षक महाराज नैपाल के प्रति मैं समस्त हिन्दुओं की ओर से श्रद्धा-युक्त सम्मान प्रकट करता हूँ। केवल वे ही स्वतन्त्र हिन्दू-देश के अधिपति हैं। वे ही हिन्दुओं के गौरवपूर्ण अतीत तथा उससे भी अधिक सम्मु-

ज्ज्वल भविष्य का प्रतिनिधित्व करते हैं। हिन्दुओं के लिए यह सौभाग्य की बात है कि नैपाल के शासन के कर्णधार एक ऐसे व्यक्ति हैं, जिनके संरक्षण में हिन्दू-हित सुरक्षित हैं। नैपाल-राज्य के वर्तमान प्रधान महाराज शमशेर जंग बहादुर इस बात को ख़ूब समझते हैं कि हिन्दू राज्य नैपाल के भविष्य का हिन्दुत्व से अटूट सम्बन्ध है। वास्तव में हिन्दूओं का स्वयं एक राष्ट्र है और उनके भाग्य के निर्णय का भार नैपाल पर है। यद्यपि भारत की सभी सीमाओं पर युद्ध का ख़तरा है, किन्तु इसके कारण तरक़्क़ी की काफ़ी गुञ्जाइश है। हिन्दुओं के पुनरुद्धार के लक्ष्य को सामने रखते हुए वर्तमान स्थिति में नैपाल के हिन्दू-राज्य का ब्रिटिश सरकार का मित्र होना बुद्धिमानी का कार्य था। भारत की सीमा की रक्षा के लिए तथा किसी अन्य विदेशी के भारत में घुसने से रोकने के लिए बहादुर गुरखा-सैनिकों का विदेशों में भेजना भी बुद्धिमानी की कार्यवाही थी। नैपाल की सहायता के बदले ब्रिटिश-सरकार के लिए भी उचित है कि वह बिहार के तथा पंजाब की सीमा के उन ज़िलों को नैपाल के हवाले करदे, जो आज से एक सौ वर्ष पहले नैपाल राज्य के अन्तर्गत थे और जिन्हें अंग्रेज़ों ने अपने राज्य में मिलाया।

यह देखकर मन में उत्साह होता है कि नैपाल की स्थल-सेना इतनी कुशल और उपयुक्त है कि शौर्य और युद्धोचित

गुणों में वह विश्व के किसी भी राष्ट्र की सेना का मुक़ाबला कर सकती है। हम उत्कण्ठा से उस दिन की प्रतीक्षा कर रहे हैं, जबकि नैपाल की वायु-सेना भी उतनी ही कार्य-कुशल शक्तिशाली और उपयुक्त होकर केवल अपनी ही नहीं, वरन् हिन्दुत्व की रक्षा करने में समर्थ हो सकेगी।

हवाई आक्रमण से भारत के पूर्वी प्रान्तों को जितना ख़तरा है उतना ही ख़तरा नैपाल को भी है। युद्ध भारत की सीमा पर पहुँच गया है और ख़तरे के साथ उत्तम अव-सर भी हाथ लगा है। मुझे विश्वास है कि नैपाल के दूरदर्शी प्रधान मंत्री पहले ही से सतर्क होकर निकट-भविष्य में एक शक्तिशाली वायु-सेना का संगठन करेंगे।

दूसरी बात, जिस ओर मैं नेपाल-सरकार का ध्यान आकर्षित करना चाहता हूँ, शायद अपेक्षा-कृत कम महत्व-पूर्ण हो, किन्तु उसकी अवहेलना करना ठीक नहीं। विश्वस्त सूत्र से ख़बर मिली है कि वहाँ मुसल्मान अपना प्रभाव बढ़ाना चाहते हैं। लुक-छिपकर तथा नीचतापूर्ण ढंग से वे वहाँ अपनी संख्या बढ़ाने का प्रयत्न कर रहे हैं। नैपाल में मस्जिदों की संख्या शीघ्रता से बढ़ रही है। अनवधान हिन्दू लड़कियों तथा लड़कों को अपहृत करके पड़ौस के फ़िरकेवालों के प्रदेश में ले जाया जाता है और उन्हें मुस-ल्मान बनाया जाता है। हिन्दू राज्य में तथा आस-पास के प्रदेशों में कितने ही उपायों द्वारा मुसल्मानों की संख्या

बढ़ाने का प्रयत्न किया जा रहा है। मैं ज़ोर देकर कहता हूँ कि नेपाल-सरकार अधिक-से-अधिक सावधान रहे। पहले तो प्रार्थना-गृह के बहाने मस्जिदें बनाई जाती हैं और वे ही हिन्दू-विरोधी षड्यंत्र के अड्डे बन जाती हैं। अपहरण तथा ग़ैर-क़ानूनी ढंग से स्त्रियों को बहकाना देखने में व्यक्तिगत अपराध जान पड़ते हैं, किन्तु हम हिन्दुओं को इतिहास से यही शिक्षा मिलती है कि इन्हीं घृणित उपायों से मुसल्मानों ने अपनी संख्या बढ़ाने का प्रयत्न किया है और कहीं भी यदि किसी हिन्दू-राजा ने मस्जिद बनाने की सुविधा दी, तो उसको सर्व-धर्म-प्रेमी कहकर उसकी चापलूसी की गयी, किन्तु अब वह समय आ गया, जब हम हिन्दू इस प्रकार की महान्ता को घातक, पागलपन समझेंगे। इसी महानता की लालच में पड़कर हमारे प्राचीन हिन्दू-राजाओं ने संसार के अन्य भागों से विदेशियों को हिन्दुस्थान में आने दिया। उनके साथ अपने-अपने सगे सम्बन्धियों-जैसा व्यवहार किया गया और हिन्दू भाइयों के समान अधिकार दिये गये। अब उनके घातक परिणामों को भोगना पड़ रहा है। ये आगन्तुक अब घर के मालिकों को ही बाहर निकाल देना चाहते हैं। अतः नेपाल-सरकार को स्पष्ट कह देना चाहिये कि नेपाल में हिन्दू-विरोधी कार्रवाई न-होने दी जायगी। सतर्क होकर देखते रहना चाहिये कि एक शताब्दी पहले मुसल्मानों का जो जन-बल था, उससे अधिक न होने पावे।

'महासभा' के आन्दोलन का ज़ोर

गत वर्ष की घटनाओं को ध्यान में रखते हुए निर्विवाद रूप से कहा जा सकता है कि 'हिन्दू-महासभा' के नेतृत्व में हिन्दू-आन्दोलन ने भारत-भर में सर्वत्र ज़ोर पकड़ा है। शुद्धि, अछूतोद्धार, हिन्दू-हितों की रक्षा, पाकिस्तानवादी मुसल्मानों-द्वारा संत्रस्त दङ्गा-पीड़ित हिन्दुओं की सुरक्षा, केन्द्रीय असेम्बली तथा लोकल म्युनिसिपल बोर्डों के निर्वाचन में 'हिन्दू-महासभा' की सफलता तथा महाराष्ट्र, आसाम और बङ्गाल में भी 'हिन्दू-महासभा' की सफलता से सिद्ध हो जाता है कि 'महासभा' शीघ्रतापूर्वक एक ऐसी संस्था होती जा रही है, जिसकी शक्ति की अवहेलना नहीं की जा सकती। हिन्दू-विरोधी शक्तियों के उपद्रव को रोकने के लिए वह काफी सबल हो गयी है। इन प्रत्यक्ष सफलताओं के अलावा 'हिन्दू-महासभा' के सिद्धान्तों और प्रचार के कारण अप्रत्यक्ष रूप से हिन्दू-जाति में मानसिक क्रान्ति हो गई है। 'हिन्दू-महासभा' के अध्यक्ष तथा अन्य हिन्दू-नेताओं का देश के विभिन्न भागों में करोड़ों हिन्दुओं ने नित्य 'हिन्दू-धर्म की जय' तथा 'हिन्दुस्तान हिन्दुओं का'-जैसे नारे लगाकर स्वागत किया है, उससे सिद्ध हो जाता है कि उनमें आत्मचेतना हो गई है। उनकी हीनता का भाव दूर हो गया।

'महासभा' के आन्दोलन के कारण जागृति की जो

लहर फैली, उससे कॉङ्ग्रेसवालों का भी हृदय परिवर्तित हो गया। गाँधीवाद के विचार में पगे हुए राष्ट्रीयता के लोलुप प्रभाव में आकर जो लोग अपने हिन्दुत्व को भूल गये थे, वे अब अपना हृदय टटोल रहे हैं। हिन्दू-हित के लिए लड़नेवाली 'महासभा' को वे मन-ही-मन धन्यवाद दे रहे हैं। शीघ्र या देर में वे आपसे-आप हमारे दल में आ मिलेंगे। पहले कॉङ्ग्रेसवाले 'हिन्दू-महासभा' के उम्मेदवारों पर यह दोषारोपण करते थे कि वोट माँगते समय वे साम्प्रदायिकता का वातावरण पैदा करते थे, किन्तु यह 'हिन्दू-महासभा' के प्रचार का ही फल है कि जब कॉङ्ग्रेस के उम्मेदवार चुनावों में खड़े होते हैं, तो कहते हैं कि यद्यपि हम कॉङ्ग्रेस के टिकट से खड़े हैं, फिर भी हम सच्चे हिन्दू हैं और हिन्दू-हितों की रक्षा करने में 'हिन्दू-महासभा' के उम्मेदवारों से पीछे न रहेंगे। चाहे इसका आशय भले ही हिन्दू वोट प्राप्त करना हो, किन्तु कॉङ्ग्रेस - उम्मेदवारों के इस प्रकार अपील करने से ही सिद्ध हो जाता है कि 'हिन्दू-महासभा' के आन्दोलन में कितनी वांछनीय सफलता मिल रही है।

वह समय तेजी से आ रहा है, जब कॉङ्ग्रेस या तो 'हिन्दू-महासभा' का अंग बन जायगी या अपनी दूकान ही बन्द कर देगी। कॉङ्ग्रेस की दूकान तो ऐसी है, जो सब के प्रतिनिधित्व का थोक माल बेचती है। वह हिन्दुओं का

प्रतिनिधित्व न तो प्रत्यक्ष रूप से करती है और न अप्रत्यक्ष रूप से।

जन-संख्या के अनुपात में मुसल्मानों को अधिकार

'हिन्दू महासभा' को तीसरी महत्वपूर्ण सफलता यह मिली है कि वह मुसल्मानों और खासकर मुस्लिम-लीग के बढ़ते हुए हौसले को रोकने में सफल हुई है। चाहे वॉयसरॉय की कार्यकारिणी के विस्तार की बात हो, चाहे राष्ट्रीय रक्षा समिति वा रक्षा परामर्श दात्रीसमिति के संघटन की, स्वयं मुस्लिम-लीग वालों ने स्वीकृत किया है कि उनकी पराजय हुई है, उनकी लम्बी-चौड़ी माँगों की अवहेलना की गई। श्री० जिन्ना रुष्ट हैं कि श्री० ऐमरी ने पाकिस्तान की माँगों को अस्वीकार करके सरकार के वादे को भङ्ग किया है। यही नहीं, श्री एमरी ने 'भारत पहले' की आवाज़ बुलन्द की, बङ्गाल में अभी गत वर्ष तक श्री फजलुल हक़ 'बाघ' की भाँति दहाड़ते थे कि, मैं 'हिन्दुओं को सताऊँगा, किन्तु अब वे इतने सीधे होगये हैं कि होश सम्हालकर बातें करते हैं और उन्होंने मुस्लिम लीग से तलाक़ देने पर उतारू होकर 'हिन्दू-महासभा' से हाथ मिलाया है। आसाम के प्रधान मन्त्री सर सादुल्ला का भी वही हाल हुआ और उन्हें भी अपने प्रधान मन्त्रित्व के पद से इस्तीफा देना पड़ा। इन प्रान्तों की तथोक्त लीगी सरकारें हवा होगईं और लीग का सुख स्वप्नविली न होगया।

इसे इन्कार नहीं किया जा सकता कि 'हिन्दू-महासभा' के घोर विरोध के कारण ही मुस्लिम लीग को सर्वत्र पराजय और परेशानी का सामना करना पड़ा है। 'हिन्दू-महासभा' के सिद्धान्तों से दिनानुदिन हिन्दू जनता प्रभावित हो रही है और लीग का भविष्य भी अच्छा नहीं। इस प्रकार हिन्दू सम्मिलित मोर्चा क़ायम कर सकते हैं।

भारत के मुस्लिमपरस्त लोगों की आशा भी युद्ध के कारण धूल में मिल गई। गत अप्रैल में मुस्लिम लीग ने मद्रास में अधिवेशन किया। श्री जिन्ना ने सरकार को चेतावनी दी कि यदि वह उनके कहने के अनुसार काम नहीं करेगी तो दूसरे लोग भारत में आकर देश को पाकिस्तान के कितने ही टुकड़ों में विभाजित कर देंगे। अपेक्षाकृत कम योग्य अन्य मुसल्मानों ने भी इस बात पर ज़ोर दिया कि भारत की सीमा के पार बड़े मुस्लिम राष्ट्र हैं, जिनसे मैत्री करने में वे नहीं हिचकिचायेंगे। भारत के मुसल्मान उन्हें अपने लिए हिन्दुओं की दासता से उद्धार करानेवाले समझते हैं। परन्तु दुर्भाग्य की बात है कि 'अन्य तथा भारत के बाहर के बड़े मुस्लिम राष्ट्रों' में अब कोई न रहा। गत महायुद्ध के समय भूतपूर्व अमीर अमानुल्ला ख़ाँ भारतीय मुसल्मानों के उद्धारकर्ता समझे जाते थे। गाँधीजी तथा अली भाई जो महान् राष्ट्रीय नेता समझे जाते थे, अमानुल्ला ख़ाँ को दिल्ली में लाकर भारत

का सम्राट् बनाने का षड्यन्त्र कर चुके थे, किन्तु दुर्भाग्य-वश बच्चा-सक्का-नामक भिश्ती ने भूतपूर्व अमीर, भारत के भावी सम्राट् अमानुल्लाखाँ का काम तमाम कर दिया। यदि इस बार मद्रास के अधिवेशन में 'अन्य' लोगों का अर्थ ईरान के रज़ाशाह से था, जो नास्तिकों के कुचक्र में शामिल थे, तो उनका भी पता-ठिकाना नहीं। मुसल्मानों के उद्धारकर्ता रज़ाशाह भारत आने के बदले भूलकर ऐसी गाड़ी में बैठ गये जो मारिशस जाती है। भारत में इस्लाम का उद्धारकर्ता बनने की बात तो दूर रही बेचारा फ़ारस अब स्वयं अपना उद्धारकर्ता खोज रहा है। तुर्क लोग ब्रिटेन और जर्मनी दोनों ही के दबाव में हैं। वे नहीं जानते कि कल उनके भाग्य में क्या बदा है। उनके लिए बस, यही उपयुक्त मार्ग है कि वे उन दोनों में से किसी के समक्ष घुटने टेक दें। फिर भी यदि कोई अन्य मुस्लिम उद्धारक शेष हो, जो पाकिस्तान के ढङ्ग से मुसल्मानों का उद्धार करने पर तत्पर हो तो लीग से उसका नाम सुनकर हम लोग प्रसन्न होंगे।

समष्टि में मुसल्मानों को अब समझना चाहिये कि वास्तविकता को स्वीकार करना ही उनके हक़ में अच्छा होगा, हवाई क़िले बनाने के फेर में पड़ना व्यर्थ है। उन्हें यह भी समझना चाहिये कि वे अल्प-संख्या में हैं। वे हिन्दुओं के बहु-मत को नहीं घटा सकते। शुद्धि तथा आत्म-

चेतना के कारण भारत में जबर्दस्ती एवं धोखेबाज़ी से इस्लाम की प्रभाव-वृद्धि रुक गई। अब तो चाहे अलाउद्दीन या औरंगज़ेब भी भारत में आवें, तो भी ज़बर्दस्ती अथवा धोखा देकर एक दर्जन भी हिन्दुओं को मुसल्मान नहीं बना सकते। ढाके के दंगे के समय बंगाल में ज़बर्दस्ती कुछ हिन्दुओं को मुसल्मान बनाया गया था। जिन गाँवों में सैकड़ों हिन्दू परिवारों को बलात् मुसल्मान बनाया गया था, दंगई मुसल्मानों का ख़याल था कि अब वे गाँव पाकस्तान में सदैव के लिए शामिल हो गए। दो शताब्दी पहले ऐसा ही हुआ भी करता था, किन्तु ज्योंही दंगे समाप्त हुए, त्योंही वे सभी हिन्दू शुद्धकर लिये गये और मुसल्मानों को यह देखकर बड़ा ही आश्चर्य हुआ। इस लाभ के प्रति इन शुद्ध किये हुए हिन्दुओं को और भी घृणा हो गयी। यदि इस प्रश्न पर अच्छी तरह से विचार किया जाय, तो यही निष्कर्ष निकलता है कि मुसल्मान भारत में सदैव अल्प-संख्या में ही रहेंगे और उन्हें अपना राजनीतिक कार्य-क्रम तदनुसार ही तैयार करना चाहिये। व्यवस्थापिका सभाओं में तथा सरकारी मन्त्रि-मण्डलों में उन्हें अपनी जन-संख्या के अनुपात में कही सीटों से उन्हें एक भी अतिरिक्त सीट नहीं मिल सकती। पंजाब को हिन्दुस्तान से अलग करने का स्वप्न वैसा ही है, जैसा कि अफ़ग़ानिस्तान को हिन्दुस्तान में मिलाकर हिन्दुत्व की सीमा को हिन्दूकुश तक बढ़ाने का है।

हमारा तात्कालिक कार्य-क्रम

नित्य-प्रति 'हिन्दू-महासभा' की शाखाओं को शुद्धि, अछूतोद्धार तथा नगरों और गाँवों में हिन्दुओं के दमन का विरोध, प्रचार तथा यात्रा-सम्बन्धी अनेकानेक कार्यों को करना पड़ता है, किन्तु हिन्दू-संगठन करनेवालों के कार्य-क्रम में दो बातें मुख्य हैं, जिस ओर सब को ध्यान देना चाहिये। पहला कार्य है, 'हिन्दू-सभा' के उम्मेदवारों को निर्वाचनों में सफल बनाने का प्रयत्न और दूसरा है हिन्दू-राष्ट्र का सैनिकीकरण।

हिन्दू मतदाताओं का कर्त्तव्य है कि उन्हीं हिन्दुओं को मत दें, जो प्रकट रूप से 'हिन्दू-महासभा' की ओर से ही चुनाव के उम्मीदवार हों, जो हिन्दू-झण्डे के नीचे खड़े हों और जो हिन्दू-हित की रक्षा का प्रण करें। केवल इसी मार्ग के हिन्दू लोग 'हिन्दू-महासभा' को हिन्दुओं की प्रतिनिधि एवं शक्तिशाली संस्था बना सकेंगे और जो कुछ भी अधिकार इस समय उपलब्ध हैं, उसे प्राप्त कर सकेंगे। इसमें सन्देह नहीं कि भविष्य में व्यवस्थापिका सभाओं में जो अधिकार प्राप्त होंगे, वे भी प्राप्त होंगे ही। जब तक काँग्रेस व्यवस्थापिका सभाओं में हिन्दुओं का प्रतिनिधित्व करने से वञ्चित नहीं कर दी जाती, यह अटल सत्य है कि हिन्दुओं तथा उनके विशेष हितों का हरण होता रहेगा। जब तक साम्प्रदायिक आधार पर मत-गणना होती रहेंगी, तब तक

'हिन्दू-महासभा' के प्रतिनिधि निर्वाचित करने में ही हिन्दुओं का कल्याण है। भारत-भर के हिन्दुओं के लिए तथा कथित राष्ट्रीय-हित और हिन्दू-हित में भेद नहीं हो सकता है। कारण यह है, 'हिन्दू-महासभा' भारत का ही तो कल्याण चाहती है।

भारत की स्वाधीनता, उसकी अखण्डता की रक्षा, आबादी के अनुपात में निर्वाचन, योग्यता के अनुसार सरकारी नौकरियों का बटवारा, सभी व्यक्तियों के लिए धार्मिक कर्त्तव्य-पालन की स्वतन्त्रता, भाषा और लिपि की रक्षा—ये ही तो कुछ मूल सिद्धान्त हैं, जिन पर 'हिन्दू-महासभा' का आधार है। 'महासभा' का यह अनुभव है कि वर्त्तमान अवस्था में हिन्दू-राष्ट्र एवं देशी राज्यों का हित इन्हीं सिद्धान्तों के मानने में है।

'हिन्दू-महासभा' उन स्वत्वों से एक इञ्च अधिक कुछ नहीं चाहती, जो न्यायतः उसके हैं। वह भारत के सभी अ-हिन्दू अल्प-मत समुदायों को उनकी आबादी के अनुपात में जो देने के लिए तैयार है, उसमें कुछ कमी करना नहीं चाहती। लेकिन वास्तविक राष्ट्रीयता की इस उचित एवं न्यायसंगत कल्पना से यह समझ लेना चाहिये कि 'हिन्दू-महासभा' अपने वे न्यायसंगत अधिकार केवल इसीलिए मुसल्मानों के लिये नहीं छोड़ना चाहती कि वे हिन्दू नहीं हैं, परन्तु काँग्रेस और आगामी दल - प्रभृति संस्थाओं ने

इस वास्तविक राष्ट्रीयता की कल्पना के प्रति भौगोलिक राष्ट्रीयता की भ्रमपूर्ण धारणा से प्रभावित होकर पाप किया है। उनका एक निश्चित सिद्धान्त और नीति है, जो देश-भक्ति के गुणों को आगे रखती है, हिन्दू-हित की हत्या करती है। अपने को साम्प्रदायिक की सतह के ऊपर प्रमाणित करने के लिए इन संस्थाओं के हिन्दू-नेता तथा अनुयायी अपने को हिन्दुओं के प्रतिनिधि कहते भी लजाते हैं।

परन्तु तमाशा तो यह है कि वे साम्प्रदायिक निर्वाचन-प्रणाली से निर्वाचित होने में नहीं लजाते। इस प्रकार वे अपने राष्ट्रीय-मत तथा 'हिन्दू मत-दाता दोनों को धक्का देते हैं। उन्हें हिन्दू मत-दाताओं की ओर से निर्वाचन में खड़ा नहीं होना चाहिये। जब तक साम्प्रदायिक प्रणाली से निर्वाचन होता है, तब तक उन्हें साम्प्रदायिक निर्वाचन-क्षेत्र से खड़ा नहीं होना चाहिये। उन्हें तब तक ठहरना चाहिये, जब तक वास्तविक राष्ट्रीय निर्वाचन-प्रणाली नहीं बन जाती। इन संस्थाओं की इस दोमुहीं चाल से हिन्दू-हित और राष्ट्रीय-हित दोनों की अपार क्षति हुई है। इसके कारण हिन्दुओं के प्रतिनिधि रहे ही नहीं, दूसरी ओर असेम्बली, बोर्ड, गोलमेज तथा अन्यान्य प्रमुख स्थानों पर मुस्लिम-प्रतिनिधि जो खुलेआम मुसलमानों का प्रधिनिधित्व करते हैं, पूरी तरह से अपने अधिकारों की रक्षा के लिये

लड़ते हैं, परन्तु हिन्दू-प्रतिनिधि हिन्दू-स्वत्व के प्रश्नों पर इन स्थानों में चुप रह जाते हैं। सिन्ध-प्रान्त का पृथक्करण, साम्प्रदायिक निर्णय तथा जन-गणना के प्रश्नों पर इन लोगों की इस नीति से हिन्दू-हित को बड़ी चोट पहुँची है।

मुझे व्यक्तिगत रूप से मालूम है कि अग्रगामी दल के कुछ प्रमुख नेता गत-वर्ष मुस्लिम-लीग को प्रसन्न करने के लिए काँग्रेसी नेताओं से भी आगे जाने को तैयार हो गये थे। उनकी इच्छा थी कि सरकार के सम्मुख हिन्दू-मुसल्मानों की संयुक्त योजना रखी जाय। इन नेताओं का उद्देश्य व्यक्तिगत स्वार्थ नहीं था, परन्तु देश-भक्त भी धोखा खा सकते और आत्मघात कर सकते हैं। जब तक हिन्दू लोग राष्ट्रीय संस्थाओं के ऐसे बनावटी उम्मीदवारों को मत देते रहेंगे, तब तक हिन्दू-हित की इसी प्रकार हत्या होती रहेगी। यह पर्याप्त नहीं है कि इन संस्थाओं का कोई सदस्य हिन्दू हित का ख़याल रखने का वचन दे, क्योंकि उसकी बागडोर तो उसकी संस्था के हाथ में रहेगी। इसलिए मैं कहता हूँ कि हिन्दुओं को अपनी मातृ-भूमि तथा पवित्र भूमि को सुदृढ़ एवं समुन्नत करने के लिये हिन्दू-सभा के प्रतिनिधियों को ही मत देना चाहिये। महासभा की नीति वस्तुतः राष्ट्रीय है। महासभा को मत देने से ही सरकार हिन्दू-मत की महत्ता समझेगी और काँग्रेस से हिन्दुओं का प्रतिनिधित्व करने का अधिकार छीना जा सकेगा।

सरकार का कहना है कि कॉङ्ग्रेस मुसल्मानों की प्रतिनिधि नहीं; क्योंकि मुस्लिम मत-दाता एक भी कॉङ्ग्रेसी मुसल्मान को मत नहीं देते, बल्कि उस मुसल्मान को मत देते हैं, जो किसी तथाकथित राष्ट्रीय संस्था से खड़ा नहीं होता। यदि हिन्दू-सभा को सुदृढ़ हो, तो काँग्रेस साम्प्रदायिक-निर्णय और पाकिस्तान का समर्थन नहीं कर सकेगी।

भारत के भावी शासन-विधान की रचना करने के लिए शीघ्र ही सम्मेलन बुलाया जायेगा। यदि निर्वाचनों में 'हिन्दू-महासभा' की जीत हुई, तो सरकार को मुस्लिम-लीग के मुक़ाबले 'हिन्दू-महासभा' को स्वीकार करना पड़ेगा। तब सादा चेक, साम्प्रदायिक-निर्णय, पाकिस्तान-योजना, विशेष सुविधा-आदि का बन्धन हिन्दुओं पर इसलिए नही हो। कि काँग्रेस ने इन्हें स्वीकार कर लिया है। हिन्दुओं का धार्मिक, राजनीतिक, आर्थिक, सांस्कृतिक, स्वत्व, भाषा-लिपि, मान-मर्यादा तथा हिन्दू-जाति का सारा भविष्य 'हिन्दू-महासभा' के हाथों सुरक्षित रहेगा। कोई विधान हिन्दुओं पर बन्धन रूप नहीं होगा, जिसे 'हिन्दू-महासभा' ने स्वीकार न किया हो।

हिन्दू बहु-मत प्रान्तों में हिन्दू-मन्त्रि-मण्डल बनेंगे और मुस्लिम बहु-मत प्रान्तों में हिन्दुओं का सुसंठित विरोध-पक्ष होगा। मैं हिन्दुओं से इस विषय की महत्ता समझने का अनुरोध करता हूँ।

सैनिकीकरण का प्रश्न

दूसरा अत्यन्त महत्वपूर्ण तथा आवश्यक विषय है हिन्दुओं के सैनिकीकरण का प्रश्न जिस पर भारत-भर के हिन्दू-संगठनकर्त्ताओं को अपनी शक्ति लगानी चाहिए। युद्ध के भारत के द्वार परआने से खतरा भी आ गया है, पर साथ हमें अवसर भी मिला है। यह जरूरी है कि प्रत्येक नगर तथा ग्राम के हिन्दू-संगठन को सेना, नौ-सेना, विमान-सेना तथा युद्ध-कौशल के अन्यान्य उद्योगों में हिन्दुओं की भर्ती करानी चाहिये। जापान के युद्ध में आने से 'हिन्दू-महासभा' की नीति में परिवर्तन आवश्यक नहीं। महासभा का मत है कि बृटेन, जर्मनी, इटली, अमेरिका या रूस भी अपने राष्ट्रीय ध्येय के कारण ही युद्ध लिए हुए हैं, किसी परमार्थ भाव से नहीं। जापान इसमें अपवाद नहीं। जब सभी देश अपने देश-हित में लगे हैं, तब भारत क्यों ऐसा न करे। इसलिए हिन्दुओं को युद्धोद्योग में सरकार से सहयोग करना चाहिए।

हिन्दू-राष्ट्र का सैनिकीकरण तथा औद्योगीकरण ही विषय हैं, जिन पर हमें पूरा ध्यान देना चाहिये। जापान के कारण हमारा देश खतरे में पड़ गया है। हमें अपने देश की रक्षा करनी ही पड़ेगी। बंगाल और आसाम के हिन्दुओं को विशेषरूप से सजग होकर एक मिनट भी व्यर्थ गँवाये बिना सैनिक बनना चाहिये।

यदि हिन्दू लोग मेरे कथन के अनुसार कार्य करें, तो हिन्दू-जाति का, हमारे धर्म तथा हमारे राष्ट्र का वैसा ही उत्थान हो सकेगा, जैसा पहले हुआ था। कोई कह नहीं सकता कि वर्तमान युद्ध में कौन जीतेगा। हमें इससे पूरा लाभ उठाना चाहिये और सेना में अधिकाधिक संख्या में प्रवेश करना चाहिये। चाहे गृह-युद्ध हो या वाह्य-आक्रमण। हमें उसका सामना तो करना ही पड़ेगा। चाहे राष्ट्रों का रूप युद्ध के बाद कुछ भी हो, हमारी भलाई ब्रिटेन की सहायता करने में ही है।

स्वीकृत प्रस्ताव

अधिवेशन में स्वीकृत कुछ प्रस्तावों का आशय नीचे दिया जाता है—

(१) यह महासभा आज के एक-मात्र स्वाधीन हिन्दू-धर्म और हिन्दू-राष्ट्र के रक्षक नेपाल के महाराज के प्रति-निष्ठा-पूर्वक सम्मान प्रकट करती है।

(२) 'हिन्दू-महासभा' का यह अधिवेशन बिहार-सरकार की इसलिये निन्दा करता है कि उसने भागलपुर में 'महासभा' का वार्षिक अधिवेशन करने पर प्रतिबन्ध लगाया और वह केवल इस कारण कि भागलपुर के कुछ मुसल्मानों का ईद का त्यौहार उसी सप्ताह में पड़ता है और हिन्दुओं को सम्मेलन-स्वातंत्र्य के अपने न्याय-अधिकार का उद्योग करते देखकर स्थानीय मुसल्मानों में से धर्मोन्मत्त मुसल्मान

उत्तेजित हो जायेंगे और फलस्वरूप दंगा हो जायगा। धर्मोन्मत्त मुस्लिम गुण्डों को शान्त रखने के लिये हिन्दुओं को अपने न्यायोचित तथा शान्तिमय धार्मिक, नागरिक तथा राजनैतिक अधिकार छोड़ने के लिए बाध्य करने की इस नीति का जो साधारणतः सारे भारत में पालन की जा रही है, अनुसरणकर सरकार क़ानून की अवहेलना करने-वालों से क़ानून माननेवालों की रक्षा करने के किसी भी सरकार के प्रथम कर्तव्य से कायरता-पूर्वक विमुख होती है, धर्मोन्मत्तों की गुण्डई को पुरस्कृत करती है और शान्ति तथा अमन क़ानून की रक्षा करने के बजाय ऐसा अपराध करती है जिसके परिणामस्वरूप अवश्य ही चारों ओर अरा-जकता फैल जायगी। फलतः हिन्दुओं ने अपने अधिकारों के अनुचित अपहरण की आज्ञा न मानने तथा वैध उपायों से अपने मौलिक नागरिक स्वत्वों की यथाशक्ति रक्षा करने का निश्चय किया है।

(३) 'हिन्दू-महासभा' निर्वाचकों से कहती है कि अपनी वोट उन्हीं हिन्दू-उम्मीदवारों को दें, जो 'हिन्दू-झण्डे' के नीचे आकर सब तरह से और सब परिस्थितियों में हिन्दू-हित की प्रकट रूप से प्रतिज्ञा करे और 'हिन्दू-महासभा' की ओर से उम्मेदवार खड़ा हो।

इस प्रकार यदि हिन्दू-निर्वाचक व्यवस्थापिक सभाओं और म्यूनिसिपल 'हिन्दू-महासभा' को बोर्डों में सब राज-

नैतिक अधिकार अपने हाथ ले लेने में समर्थ बना दें, तो सरकार 'हिन्दू-महासभा' को हिन्दुओं को एक-मात्र निर्वाचित प्रतिनिधि संस्था मानने को बाध्य हो जायगी और केवल उसी स्थिति में कॉंग्रेस या दूसरी कोई कृत्रिम राष्ट्रवादी संस्था पूर्ण रूप से 'निरस्त्र' हो जायगी और उसे हिन्दू-हित के साथ खेलवाड़ करना तथा हिन्दू-प्रतिष्ठा को धक्का पहुँचाना बन्द करने के लिए बाध्य होना पड़ेगा। केवल 'हिन्दू-सभा' ही मुस्लिम लीग की हिन्दू विरोधी योजनाओं को नष्ट कर सकती है। कॉंग्रेस वह काम कभी कर नहीं सकती और न करेगी। आज वह कभी पूर्ण निश्चयपूर्वक केवल 'हिन्दू-हितों की प्रतिनिधित्व करने का दावा नहीं कर सकती। महासभा हिन्दू-निर्वाचकों से अपील करती है कि महासभा की ओर से खड़े हुए हिन्दू-उम्मीदवारों को ही वोट न दें। केवल इसी प्रकार वे सरकार को यह स्वीकार करने के लिए बाध्य कर सकते हैं कि 'हिन्दू-महासभा' ही हिन्दुओं की एक-मात्र प्रतिनिधि संस्था है। इसी प्रकार वे प्रान्तीय तथा केन्द्रीय सरकारों पर क़ब्ज़ा कर सकते हैं तथा उनसे हिन्दू-हित साधन कर सकते हैं जिससे पूर्ण राजनैतिक स्वाधीनता के अपने अन्तिम लक्ष्य की ओर बढ़ सकें।

(४) 'हिन्दू-महासभा' का यह अधिवेशन हिन्दुओं से अनुरोध करता है कि सब प्रकार की सेना में भर्ती हों

और 'हिन्दू-महासभा' की सारे भारत की सब शाखाओं को आदेश देता है कि जल, स्थल तथा वायु-सेनाओं और युद्ध-सामिग्री तथा गोला-बारूद के कारखानों में अधिक-से-अधिक हिन्दुओं का भर्ती करने के लिये जबर्दस्त आन्दोलन करें। सब हिन्दू नागरिकों को आदेश दिया जाता है कि हवाई हमले से रक्षा करनेवाली संस्थाओं में सम्मिलित हों, जिससे अपने घरोंकी रक्षा की जा सके तथा इस सम्बन्ध में शिक्षा मिल सके कि अपने लोगों को आधुनिक युद्ध-प्रणाली के कारण आवश्यक बचाव-सम्बन्धी जानकारी किस तरह कराई जाय।

२६ दिसम्बर

प्रतिनिधियों के बाहर से कम आने के कारण स्टेशन पर भीड़ कम हो गई और जनता देवी बाबू की धर्मशाला या लाजपतराय-पार्क के आस-पास एकत्रित होने लगी। पुलिसवालों का जमाव भी इन्हीं स्थानों पर अधिक था। जय-जय के नारे तो सवेरे से ही लगने लगते थे और सौ-सौ, पचास-पचास आदमियों के जुलूस कई जगह नगर में घूम रहे थे। पुलिस को विशेष आज्ञा थी कि आज कहीं सभा न होने पावे, इसी कारण वह बड़ी चौकन्नी-सी दीखती थी और खूब दौड़-धूप कर रही थी। उधर 'हिन्दू-महासभा, के जो नेता बाहर थे, वह यह विचार कर रहे थे कि अधिवेशन आज भी करना आवश्यक है।

लाठी-चार्ज

आज पुलिस ने कई स्थानों पर लाठी-चार्ज किया और ५० से अधिक मनुष्य घायल हुए, दो स्वयंसेवक मिस्टर सुरेशरॉय तथा मिस्टर त्रिवेदी को इतना पीटा गया कि वे बेहोश हो गये और इसी दशा में दोनों को अस्पताल पहुँचाया गया। २०० आदमियों के एक जुलूस ने बरबस लाजपतराय-पार्क में घुसने की कोशिश की, पर पुलिस ने सब को भगा दिया। उन्होंने 'ख़लीफ़ा-बाग' में एक सभा कर, पुलिस तथा सरकार के विरुद्ध प्रस्ताव पास कर डाले, फिर तीन और जुलूस लाजपतराय-पार्क की ओर चले, परन्तु पुलिस ने लाठियाँ मारकर सब को भगा दिया। फिर भी तारासिंह-नामी युवक ने किसी प्रकार पार्क में घुसकर 'महासभा' का झण्डा फहरा दिया। नगर में आज भी हड़ताल रही।

आज फिर अधिवेशन हुआ

'हिन्दू-महासभा' के कोषाध्यक्ष लाल नारायणदत्तजी इस समय 'महासभा' के डिक्टेटर थे। उन्होंने अधिवेशन के दूसरे दिन की कार्यवाही देवी बाबू की धर्मशाला में आरम्भ करा दी, जिसके लालाजी प्रधान थे। आज के प्रस्तावों-द्वारा बिहार-सरकार की निन्दा की गई और जेल-यात्रियों को बधाई दी गई। सरकार से अनुरोध किया गया कि जेल-यात्रियों को शीघ्र ही छोड़ा जाय। एक और

प्रस्ताव द्वारा राष्ट्रपति सावरकरजी को अधिकार दिया गया कि वह जेल से मुक्त होने के पश्चात् नई कार्यकारिणी समिति का निर्वाचन करलें।

अधिवेशन इसी प्रकार हो ही रहा था कि डी० आई० जी० घुड़सवार पुलिस लिये वहाँ आ पहुँचे। आज लाला नारायणदत्तजी भी गिरफ़्तार कर लिये गये। अजमेर के बाबू दुर्गाप्रसाद, सरदार गोविन्दसिंह और दिल्ली के बहुत-से प्रतिनिधि प्रो० रामसिंह, पं० शिवनाथ वैद्य, पं० मोहनलाल शास्त्री-आदि भी गिरफ्तार होगये। पुलिस ने बहुत-से स्वयंसेवकों तथा प्रतिनिधियों को पकड़ने के बाद दूर लेजाकर छोड़ भी दिया; कारण कि भागलपुर जेलें भर गईं थीं।

२६ दिसम्बर तक लगभग एक हज़ार 'हिन्दू-महासभा' के नेता, प्रतिनिधि तथा स्वयंसेवक जेल पहुँच चुके थे।

२७ दिसम्बर

आज भागलपुर-अधिवेशन का अन्तिम दिवस था। अब लोकमान्य तिलक के अंग्रेजी समाचार-पत्र 'मरहठा' के सम्पादक तथा 'अखिल-भारतीय हिन्दू-महासभा, के मन्त्री श्री केतकरजी 'महासभा' के डिक्टेटर हुए। कहते हैं कि उनके नाम का वारण्ट भी निकल चुका था, पर किसी कारण गिरफ़्तारी न हुई थी। आज भी कई स्थानों पर सभायें की गईं और जुलूस निकाले गये। पुलिस ने भी

ख़ूब डण्डे बरसाये। लाजपतराय-पार्क पर कई धावे किये गये, पर किसी को फटकने न दिया गया। फिर भी अवसर पाकर राम-सेना के उपमन्त्री महोदय १२ स्वयंसेवकों के साथ पार्क में घुस गये और 'महासभा' का झण्डा गाढ़ दिया। पुलिस ने उनके साथ बड़ी निर्दयता का व्यवहार कर, सब को गिरफ़्तार कर लिया। अब लाजपतराय-पार्क के चारों ओर कड़ा पहरा बिठाया गया।

एक सभा मिस्टर एन्० ए० सेन, एम्० एल० ए०, बङ्गाल के सभापतित्व में हुई। कई प्रतिनिधि उसमें उपस्थित थे और वहाँ कई प्रस्ताव पास किये गये। दूसरी बड़ी सभा मिस्टर नरेन्द्र बाघ के सभापतित्व में देवी बाबू की धर्मशाला में ६ बजे से आरम्भ होकर ११-३० बजे तक होती रही, इसमें लगभग २० वक्ताओं ने व्याख्यान दिये, जिनमें श्री पन्नालालजी व्यास, श्री बालशास्त्री हरदास, मिस्टर नाथूराम गोडसे-आदि के नाम उल्लेखनीय हैं। इनमें से भी कुछ गिरफ्तार हुए।

अधिवेशन समाप्त

राष्ट्रपति सावरकर की आज्ञा थी कि २७ दिसम्बर को अधिवेशन की अन्तिम सभा करके उसको समाप्त कर दिया जाय। इस समय के डिक्टेटर श्री केतकरजी ने कुछ प्रतिनिधियों से सलाह कर, निश्चय किया कि दो बजे बाद दोपहर बूको देवी बा की धर्मशाला में अन्तिम कार्य-क्रम होगा और

इसकी सूचना गुप्त रूप से सब को दे दी गई। धर्मशाला में १ बजे से ही पुरुषों का आना आरम्भ हो गया और दो बजे तक तीन मंजिली विशाल धर्मशाला ऊपर से नीचे तक हज़ारों नर-नारियों से भर गई और भी बहुत-से आदमी स्थान के न मिलने के कारण बाहर खड़े रहे। लगभग बीस हज़ार जन-समूह होगा। श्री केतकरजी के सभापतित्व में सभा का कार्य-क्रम सभापतिजी के भाषण के बाद वन्देमातरम् के साथ समाप्त हुआ।

उसके बाद सभा की समस्त जनता लाजपतराय-पार्क की ओर जलूस बनाकर चली और उस पवित्र भूमि को जहाँ कि अधिवेशन के लिये पण्डाल बना था, दूर से ही प्रणाम और जै-ध्वनि कर अपने स्थान को लौट गई। पुलिस ने कोई हस्ताक्षेप नहीं किया, इस प्रकार भागलपुर का अधिवेशन समाप्त हुआ। समस्त बिहार-प्रान्त और विशेषकर भागलपुर, समस्त हिन्दू-संसार के धन्यवाद का पात्र है कि वहाँ वर्षों के सोये हुए हिन्दू उठे और संगठित हो, अपने अधिकारों के लिये इतना बलिदान किया।

भागलपुर-अधिवेशन का ब्यौरा समाप्त करने के पूर्व सरदार अजीतसिंह का धन्यवाद करना हम अपना कर्त्तव्य समझते हैं। २५ दिसम्बर को गुरु गोविन्दसिंह का जन्म-दिन था। सरदार साहब ने २५ तारीख़ से ही अपने घर पर गुरुजी का लङ्गर जारी कर रखा था, जो २७ दिसम्बर

तक जारी रहा। यहाँ प्रातः व शाम रोज़ सहस्रों मनुष्य भोजन पाते थे। नगर में तो हड़ताल थी। यदि यह प्रबन्ध न होता तो बाहर से आनेवाले प्रतिनिधियों व स्वयंसेवकों को बड़ा कष्ट उठाना पड़ता। सरदारजी परिवार-सहित अपने पाहुनों का आदर-सत्कार करते थे और बड़े प्रेम से भोजन कराते थे। स्वागतकारिणी-सभा के सदस्य भी सरदार साहिब को सहयोग दे रहे थे।

२७ दिसम्बर के बाद नगर की हड़ताल खुल गई और जनता अपने-अपने काम में लग गई। हाँ, शाम को देवी बाबू की धर्मशाला में अवश्य कोई-न-कोई सभा हो जाती थी और यह कार्यक्रम ४ जनवरी तक चालू रहा। जब सब जेल-यात्री छोड़े गये तो उनका बड़े उत्साहपूर्वक स्वागत किया गया। राष्ट्रपति सावरकर अस्वस्थ होने के कारण गयाजी से सीधे बम्बई चले गये। डॉक्टर श्यामाप्रसाद मुकर्जी पहले ही कलकत्ता जा चुके थे। शेष नेता भागलपुर में इकट्ठे हुए।

भागलपुर-अधिवेशन ने 'हिन्दू-सभा' का सन्देश समस्त भारत में घर-घर पहुँचा दिया। यह निश्चय है कि यदि बिहार-सरकार भागलपुर-अधिवेशन बे-रोक-टोक होने देती तो इतनी जागृति कभी न होती, इसलिये हम उसको भी धन्यवाद देते हैं। बिहार-सरकार ने हिन्दुओं को सङ्गठन-शक्ति का महत्व वास्तविक रूप में बताया।

सफ़ाई और सम्मतियाँ

पहली जनवरी को बिहार-सरकार ने राष्ट्रपति सावरकर व गवर्नर-बिहार का पत्र-व्यवहार प्रकाशित करते समय अपनी सफाई का एक बड़ा 'कम्यूनिक' निकाला। कारण यह था कि कॉङ्ग्रेस, लिबरल, हिन्दू, स्वतन्त्र-मुस्लिम-आदि नेताओं ने बिहार-सरकार के इस व्यवहार की घोर निन्दा की थी। फिर बकराईद भी शान्ति से बीत गई और भागलपुर में कोई फसाद नहीं हुआ ! इन्हीं कारणों से बिहार सरकार ने उचित समझा कि अपनी सफ़ाई देकर जनता की सहानुभूति प्राप्त करे।

बिहार सरकार का कम्यूनिक

"बिहार-सरकार ने 'हिन्दू-महासभा' के वार्षिक अधिवेशन पर, जो गत बड़े दिनों की छुट्टियों में भागलपुर होनेवाला था, जो प्रतिबन्ध लगाया था, उसके सम्बन्ध में पत्रों-आदि में भिन्न-भिन्न प्रकार की ग़लत बातें निकल रही हैं।"

"बिहार-सरकार को मई, १९४१ से पहले पता लग चुका था कि 'अखिल-भारतीय हिन्दू-महासभा' का अधिवेशन भागलपुर में बड़े दिनों की छुट्टियों में करना निश्चित् हुआ है और यह अधिवेशन के दिन या तो एक-दो दिन बकराईद से पहले या बाद होंगे। इससे सरकार को बड़ी चिन्ता हुई; क्योंकि गत तीन सालों से भागलपुर में साम्प्रदायिक अशान्ति चली आ रही थी। १९३८ के दंगे में ७ आदमी

मरे तथा ५८ घायल हुए। इसी प्रकार की अशान्ति के कारण भागलपुर में २०० अधिक पुलिसवाले रखे गये। बकरा-ईद पर उत्तरी भागलपुर, मुंगेर-आदि में कई बार फ़साद हो चुके हैं। इसी समय 'महासभा' ने यहाँ अधिवेशन करने का निर्णय किया। और २३ जून को बिहार-कमिश्नर को यह सूचना दी गई कि बड़े दिन की छुट्टियों का लाभ उठाने के लिये 'ऑल इण्डिया कमेटी' ने निर्णय किया है।"

अपनी राजनीति और पशु-बल का परिचय दे, अब बिहार-सरकार स्वयं संसार के सामने अपने न्याय की डौंडी पीटने लगी थी। शायद उसने अनुभव कर लिया हो कि तलवार से क़लम कहीं अधिक शक्तिशाली होती है। सरकार की सफाई की पोल तो राष्ट्रपतिजी के पत्र पढ़ने से ही खुल चुकी थी, फिर भी बिहार-सरकार कहती है कि भागलपुर में साम्प्रदायिक दंगे अधिक होते हैं, इसीलिये वहाँ अधिवेशन न करने दिया गया! यह 'महासभा' का दोष है या सरकार के प्रबन्ध की प्रतिष्ठा? फिर क्या दूसरे नगरों में फ़साद नहीं होते? बम्बई, बङ्गाल, यू० पी०, पञ्जाब, मद्रास, सी० पी०, बरार-आदि में कौन-सी जगह है, जहाँ फसाद नहीं हुए? तो फिर 'महासभा' अपना अधिवेशन कहाँ करे? मद्रास में 'मुस्लिम-लीग' का इजलास हुआ तो हिन्दुओं को रोका गया, लखनऊ में 'पाकिस्तान कॉन्फ्रेंस' हुई तो मुसल्मानों को खुली छुट्टी मिली। परन्तु बिहार-सरकार ने यह

सब-कुछ क्या किया ? बिहार-सरकार का कहना है कि पटना ज़िला में दङ्गा होने के पश्चात् तुरन्त ही घोषणा की गई कि 'महासभा' का अधिवेशन भागलपुर में होगा।

यह बिल्कुल सफेद झूठ है कि दङ्गा होते ही भागलपुर-अधिवेशन की घोषणा की गई। 'महासभा' तो हर साल शान्ति-स्थापना की चेष्टा करता है। यह तो मदुरा मे दिसम्बर १९४० में ही निर्णय हो चुका था कि आगामी अधिवेशन बिहार-प्रान्त में होगा। फिर जब यह घोषणा की गई, इसके पूर्व बिहार-सरकार कई बार 'कम्यूनिक' निकाल चुकी थी कि अब वहाँ शान्ति है।

बिहार-सरकार ने यह भी कहा कि पटना जिला में एक बार 'हिन्दू-सभा' के प्रदर्शन पर फसाद हुआ था। क्या इससे सरकार का यह अभिप्राय है कि फसाद करानेवाले 'हिन्दू-सभा-वादी' ही हैं ?

बिहार-सरकार को प्रथम बार मई मास में ही मालूम हुआ था कि बड़े दिन की छुट्टियों में भागलपुर-अधिवेशन होगा।

सरकार के पास पूरे सात महीने प्रबन्ध करने के लिये थे। क्या इस अवधि मे वह हिन्दुओं की रक्षा का प्रबन्ध न कर सकती थी ?

महात्मा गाँधी

"हिन्दू-महासभा के अधिवेशन पर विहार-सरकार के

प्रतिबन्ध लगाने की कार्यवाही ऐसी है, जो किसी सफ़ाई-द्वारा ठीक नहीं कही जा सकती। जो नेता अधिवेशन करना चाहते थे, वे सब सरकार के विश्वास-पात्र भी हैं तथा युद्ध-प्रयत्नों में सरकार की सहायता भी कर रहे थे। मैं समझ नहीं सकता कि बिहार-सरकार ने अपने मनुष्यों पर विश्वास क्यों नहीं किया? मुझे ज्ञात हुआ है कि वीर सावरकर ने बिहार-सरकार की बात मानते हुए अधिवेशन की तारीखें भी बदल दीं थीं, ताकि समझौता हो जाये।

"जब किसी प्रकार समझौता न हो सका तो न्याय-युक्त हिन्दुओं के लिये सत्याग्रह के अतिरिक्त और कोई मार्ग न रह गया और मैं मानता हूँ कि मुझे वीर सावरकर, डॉ० मुंजे और 'महासभा' के अन्य नेताओं को अपने नागरिक अधिकारों की रक्षा करते हुए जेल जाते देखकर बड़ी प्रसन्नता हुई है।

"मैं आशा करता हूँ कि बिहार-सरकार की इस कार्यवाही से बिहार व भारत के हिन्दू व मुसल्मान शिक्षा ग्रहण कर, एक प्लेटफॉर्म पर इकट्ठे हो जायेंगे।"

महामना पण्डित मालवीयजी

२४ दिसम्बर को महामना मालवीयजी ने निम्न-लिखित तार राष्ट्रपति सावरकरजी को दिया:—

"बिहार-सरकार का यह कार्य बिल्कुल अन्याय-पूर्ण व बुद्धिमानी के विपरीत है। मुझे खेद है कि मैं अस्वस्थ होने

के कारण भागलपुर नहीं जा सकता, पर मेरी आत्मा आपके साथ हैं।"

राइट ऑनरेवल मिस्टर जयकर

"हिन्दू-महासभा के नेताओं व मेम्बरों के विरुद्ध बिहार-सरकार का यह कार्य सर्वथा अन्याय-पूर्ण है। यह कहना कि यदि 'महासभा' के ्रु फ़साद करें तो सरकार के पास पर्याप्त पुलिस नहीं, बिल्कुल बेहूदा-सी बात है और अब झूठी भी साबित हो गई है। यह स री फौज और पुलिस 'महासभा' को शान्ति-पूर्वक अधिवेशन करने और फ़सादियों को दबाने के काम में लाई जा सकती थी।

"भारत के सभी नेता, चाहे वह हिन्दू हों चाहे मुसल्मान, बिहार-सरकार के विरुद्ध आवाज उठायेंगे।"

डॉक्टर राजेन्द्रप्रसाद

"मैं 'हिन्दू-महासभा' की राजनीति की बहुत-सी बातें नहीं मानता, पर कोई कारण नहीं कि इसके अधिवेशन पर प्रतिबन्ध लगाया जाय। सरकार की इस आज्ञा को हम किसी प्रकार भी उचित नही कह सकते। 'हिन्दू-महासभा' एक अखिल-भारतीय संस्था है और वह अपना वार्षिक अधिवेशन भारत के किसी-न-किसी नगर में प्रति वर्ष किया करती है। इसे लोकल बातों से कोई सम्बन्ध नहीं और इसमें देश के सभी प्रान्तों के नेता भाग लेते हैं। वह कोई ऐसा कार्य नहीं कर सकती, जिसमें किसी झगड़े-इत्यादि का भय हो।

"हम सभी यह जानते हैं कि बकराईद पर हर प्रकार का भय रहता है, पर यह नहीं कहा जा सकता कि 'महासभा' का अधिवेशन इस भय को और अधिक बढ़ायेगा। बिहार-सरकार का यह बताना थोथ है कि यदि अधिवेशन करने दिया जाता, तो भागलपुर में बहुत-सी पुलिस, जिसकी दूसरी जगह आवश्यकता होती, बुलानी पड़ती। अवश्य ही 'हिन्दू-महासभा' के साथ घोर अत्याचार किया गया है।"

मिस्टर सत्यमूर्ति

"यह बड़ी अनोखी बात है कि बिहार-सरकार 'हिन्दू-महासभा' के विरुद्ध कार्य कर रही है। इस व्यवहार से उन लोगों का काम बहुत कठिन हो गया है, जो भारतीय प्रश्नों पर सरकार से समझौता करने की आशा कर रहे हैं।"

मिस्टर केलकर

"ब्रिटिश सरकार ने घोषणा की है कि वह डिक्टेटर-शाही के विरुद्ध चल रही है, परन्तु बिहार-सरकार की इस डिक्टेटरशाही का क्या अभिप्राय है? यह कार्य सरासर किसी के अधिकारों को पाँव-तले कुचलना है। प्रश्न हिन्दू व मुसल्मानों की भिन्नता का है। यदि दंगे की सम्भावना-मात्र से किसी क़ानून पर चलनेवाली जाति के नागरिक अधिकार रोके जा सकते हैं, तब किसी सरकार का मूल्य ही क्या?"

मिस्टर भूपत्कर

"बिहार-सरकार एक के बाद दूसरी गलती कर रही है। क्या इसी बात पर ब्रिटिश मन्त्री और अन्य नेता चिल्ला-चिल्लाकर कहते हैं कि वह प्रजातन्त्र राष्ट्रों की रक्षा के लिये युद्ध कर रहे हैं ? बिहार-सरकार का क्या यह कार्य उचित था ? बहुसंख्यक जाति के अधिकारों की बलि देकर अल्पसंख्यक जाति को प्रसन्न करने की क्या नीति है ?"

मिस्टर गोपीनाथ श्रीवास्तव एम० एल्० ए० (काँग्रेस)

"मैं यह बात नहीं मान सकता कि सरकार अधिवेशन के सम्बन्ध में 'महासभा' के नेताओं से कोई समझौता न कर सकती थी। यद्यपि 'हिन्दू-महासभा' 'सरकार के साथ युद्ध-प्रयत्नों में सहयोग कर रही है, फिर भी ऐसा व्यवहार क्यों किया गया ?"

सर विजयप्रसादसिंह (प्रधान लिबरल)

'भागलपुर में हिन्दू-नेताओं की गिरफ्तारी एक ऐसी बात है, जिसकी समस्त भारत बड़े ज़ोरों से निन्दा करेगा। बिहार-सरकार का यह कहना कि यह सब कुछ शान्ति-स्थापना के निमित्त करना पड़ा है, ठीक नहीं है। मुझे आशा है कि मुस्लिम नेता भी बिहार-सरकार के इस कार्य की निन्दा करेंगे; क्योंकि यह सब भारतीयों के नागरिक अधिकारों और स्वतन्त्रता का प्रश्न है।

राजा नरेन्द्रनाथ

"यह कार्य बिहार गवर्नर की दूरदर्शिता नहीं दिखाता। मैं समझ नहीं सकता कि भागलपुर के अफसरों ने किन कारणों से राय दी कि वहाँ अधिवेशन न हो और हिन्दुओं के नागरिक अधिकार कुचले जायें। यदि बकराईद और अधिवेशन की तारीखें एक-साथ होतीं तो भी अधिवेशन रोकने का कोई कारण न था। किन्तु अधिवेशन की तारीखें जान-बूझकर ऐसी रखी गई थीं, वह बकराईद से दो तीन दिन पहले समाप्त हो जाता।"

सरदार सन्तसिंह एम० एल० ए० (सेन्ट्रल)

इस समय हिज़ एक्सीलैंसी वॉयसरॉय पर एक बड़ी भारी जिम्मेदारी है और मुझे आशा है कि समस्त देश उनका साथ देगा, यदि वे साहस कर, गवर्नर बिहार की आज्ञा को रद्द कर दें और 'हिन्दू-महासभा' के सब नेताओं व कार्यकर्ताओं को छोड़ दें। शान्ति के समय की ग़लतियाँ तो किसी प्रकार सह ली जाती हैं, पर युद्ध के समय की ग़लतियों के कारण साम्राज्य नष्ट हो जाते हैं। मिस्टर सावरकर और 'महासभा' के अन्य नेताओं की गिरफ्तारियाँ ऐसे कुसमय में हुई हैं, जबकि युद्ध भारत के द्वार पर आ गया है। जिन कारणों से बिहार-सरकार ने भागलपुर में 'हिन्दू-सभा' का अधिवेशन रोकना उचित समझा है, वह एक बहुत बड़ी ग़लती है।"

'हिन्दू' (मद्रास)

"श्री सावरकर का कहना है कि भागलपुर में अधिवेशन करना हिन्दुओं का क़ानूनी अधिकार है, इसलिये सरकार का कर्तव्य है कि वह उसकी रक्षा करे। 'हिन्दू-महासभा' के इस अधिकार को सर वी० एस० शिवास्वामी अय्यर और राइट ऑनरेबल जयकर, श्रीनिवास शास्त्री-आदि ने इसी प्रकार ठीक बताया है, और कहा है कि किसी भी जाति के अधिकारों को दूसरी जाति की दया पर न छोड़ना चाहिये।"

'अमृतबाज़ार पत्रिका'

"बिहार-सरकार ने भागलपुर में 'हिन्दू-महासभा' का अधिवेशन रोककर भयङ्कर परिस्थिति उत्पन्न करदी है। बिहार-सरकार का बकराईद का एक लँगड़ा बहाना था। सीधा-सादा नियम तो यह है कि जो कोई फसाद करे या करने की धमकी दे, उसे रोका जाये; नकि उसको जो क़ानून पर चल रहा हो। तो फिर क्या 'महासभा' की ओर से कोई भय था? बाबू अनन्तप्रसाद तथा भागलपुर जिला 'मुस्लिम-लीग' के भूतपूर्व प्रधान के बीच जो पत्र-व्यवहार हुआ है, उससे स्पष्ट है कि भागलपुर के मुसलमानों को वहाँ अधिवेशन करने में कोई आपत्ति नहीं थी।'

'स्टार ऑफ़ इण्डिया', कलकत्ता

हम मिस्टर सावरकर की गिरफ्तारी को न्याय और

दूर-दृष्टि का कार्य नहीं समझते। 'महासभा'-वालों को अधि-वेशन करने का सब प्रकार से पूरा-पूरा अधिकार है, परन्तु सरकार अपनी झूठी मान-प्रतिष्ठा रखने के कारण बीच में अड़ गई। जिस प्रकार मुसल्मान अपने नागरिक अधिकारों के विरुद्ध रोक लगाने का विरोध करेंगे, उसी प्रकार वह एक-दूसरे के विरुद्ध रोक को भी बुरी दृष्टि से देखते हैं।

'सर्चलाइट' (पटना)

"एक ख्याली फ़साद को रोकते-रोकते बिहार-सरकार ने एक वास्तविक फ़साद खड़ा कर लिया है। बिहार-सरकार ने उन आदमियों को सत्याग्रह की ट्रेनिंग दी है, जो कभी स्वप्न में भी इसका विचार न करते। अधिवेशन पर रोक लगाना एक बड़ी भूल थी। फिर भागलपुर में मुसल्मानों ने साफ़ कह दिया है कि उनको अधिवेशन करने में कोई आपत्ति नहीं है और सरकार की दमन-नीति के साथ उनका कोई सम्बन्ध नहीं। मुसल्मानों के पत्र 'स्टार ऑफ़ इण्डिया' ने साफ लिख दिया है कि 'महासभा' को अधिवेशन करने का पूरा अधिकार था और कोई मुसल्मान व्यक्ति या संस्था इसके विरुद्ध नहीं थी।

"बिहार-सरकार ने अपने पड़ौसी प्रान्त के मन्त्री को क़ैद कर, एक बड़ा ऐतिहासिक कार्य किया है। वॉयसरॉय
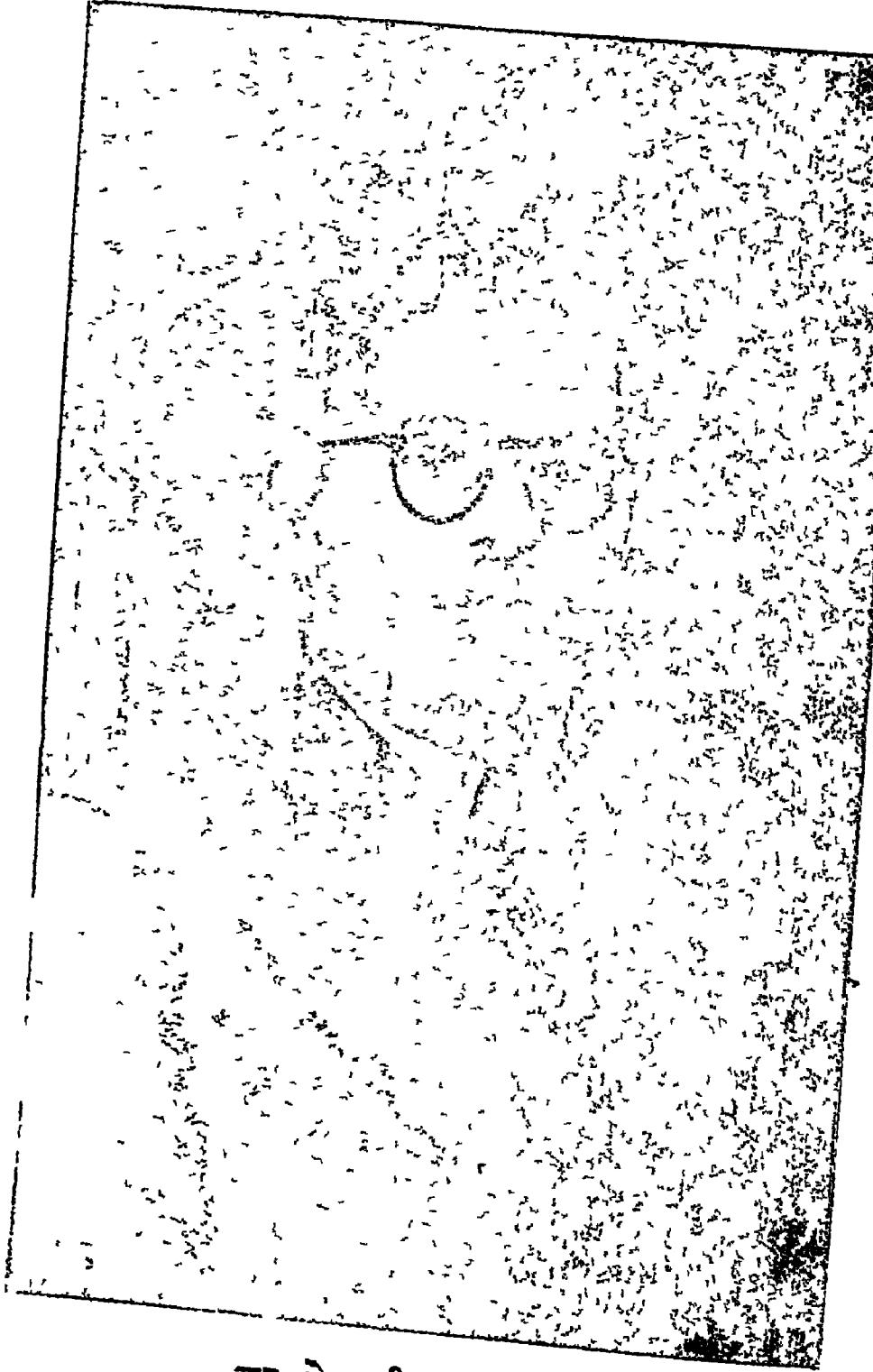
सर जे० पी० श्रीवास्तव

(केन्द्रीय सरकार की कार्यकारिणी में 'हिन्दू-सभा' के प्रतिनिधि)

महोदय रोक के सम्बन्ध में अधिक विचार करना भी चाहते थे, पर बिहार-सरकार न मानी।"

भागलपुर के मुस्लिम-नेता को पत्र

(बिहार-सरकार ने प्रतिबन्ध लगाने का बार-बार कारण यही बताया था कि वहाँ बकराईद के कारण मुसल्मानों-द्वारा फसाद करने का भय था। परन्तु वहाँ के मुसल्मानों को अधिवेशन करने में कोई आपत्ति नहीं थी।)

२३ दिसम्बर १६४१ को भागलपुर के बाबू अनन्तप्रसाद ने 'भागलपुर जिला मुस्लिम लीग' के भूतपूर्व प्रधान मिस्टर अब्दुलहसन को निम्नपत्र लिखा :—

'माई डियर अब्दुल, मैं आशा करता हूँ कि आपको नगर का उस परिस्थिति का भली प्रकार ज्ञान है, जो सरकार-द्वारा 'हिन्दू-महासभा' के अधिवेशन पर प्रतिबन्ध लगाने से उत्पन्न होगई है। सरकार का कहना है कि इस अधिवेशन के कारण साम्प्रदायिक परिस्थिति ख़राब होने का भय है और शायद फ़साद हो जावे। मैं आपसे पूछता हूँ कि इस बारे में आप लोगों के विचार क्या हैं? मुसल्मानों ने तो यहाँ हिन्दुओं के साथ सहानुभूति दिखाते हुए अपनी दुकानें बन्द कर दी हैं, आप कृपा-पूर्वक बतायेंगे कि मुसल्मान इस परिस्थिति को किस दृष्टि से देखते हैं और इसके सम्बन्ध में उनके विचार क्या हैं?'

मिस्टर अब्दुलहसन का उत्तर

'माई डियर अनन्त, मुझे अफसोस है कि मैं आपको जल्द जवाब न दे सका। जब मुसल्मान ख़ुद यह चाहते हैं कि उनके धार्मिक व नागरिक अधिकारों में कोई दख़ल न दे तो फिर कोई भी मुसल्मान आप पर एतराज़ नहीं उठा सकता। आप भी अपने अधिकारों को आज़ादी से बर्तें। वह 'हिन्दू-महासभा' के इजलास को अब या कभी, यहाँ या हिन्दुस्तान की किसी भी जगह पर करने से कैसे रोक सकते हैं? आप हमसे क्यों पूछते हैं, कि क्या हम इस पाबन्दी को ठीक समझते हैं? यह मामला ऐसा है, जिससे हरेक मुसल्मान की हमदर्दी होगी। आप यक़ीन मानें, हम अपने भाइयों की हमेशा मदद करने को तैयार हैं...'

भागलपुर के पश्चात्

भागलपुर-सत्याग्रह के सब जेल-यात्रियों को, जो लगभग दो हज़ार होंगे, ५ जनवरी, १६४२ को भागलपुर व अन्य जेलों से मुक्त कर दिया गया। जेल-यात्रियों की अधिक संख्या भागलपुर में ही थी, इसलिये जब वह छूटे, तो जनता ने उनका बड़ा स्वागत किया। इस प्रकार 'हिन्दू-महासभा' का सन्देश घर-घर पहुँच गया। ता० २६-३० को बकराईद भी शान्ति के साथ बीत गई।

अब कुछ सज्जनों की सम्मति हुई कि 'महासभा' का

एक विशेष अधिवेशन भागलपुर ही में या दरभङ्गा में किया जाय, परन्तु राष्ट्रपतिजी ने यही उचित समझा कि जो वार्षिक अधिवेशन भागलपुर में हो गया, वही काफी है और विशेष अधिवेशन करने की कोई आवश्यकता नहीं। हाँ, २६ फ़रवरी तथा १ मार्च को लखनऊ में एक 'अखिल-भारतीय कमेटी' की बैठक की गई, जिसमें नव-पदाधिकारियों का चुनाव हुआ। कुछ गुण्डों ने राष्ट्रपति वीर सावरकर के जुलूस पर पत्थर बरसाये, पर उनको शीघ्र ही रोक दिया गया और कार्य शान्तिपूर्वक समाप्त हुआ। इस अवसर पर ऑनरेबिल डॉक्टर श्यामाप्रसाद मुकर्जी 'महा-सभा' के कार्यकर्त्ता प्रधान चुने गये और कोटरा के राजा महेश्वरदयाल सेठ मन्त्री। गत वर्ष की भाँति श्री केतकरजी तथा आशुतोष लाहिरी मन्त्री बने और लाला नारायणदत्तजी, जो वर्षों से कोषाध्यक्ष बने चले आते थे, कोषाध्यक्ष बने। डॉक्टर मुंजे, भाई परमानन्द, डॉक्टर नायडू, मिस्टर चैटर्जी, कुँवर गङ्गानन्दसिंह और मिस्टर खापर्डे 'महासभा' के उप-प्रधान चुने गये। इनके अतिरिक्त अन्य प्रान्तों के २२ अन्य हिन्दू-नेता 'महासभा'-कार्यकारिणी के सदस्य चुने गये।

इस अवसर पर महासमिति ने यह भी निश्चय किया कि 'महासभा' का आगामी २४ वाँ अधिवेशन बड़े दिन की छुट्टियों में लखनऊ में किया जायेगा।

क्रिप्स-योजना

बृटिश-प्रधान मन्त्री, मिस्टर चर्चिल ने घोषणा की कि 'हाउस ऑफ़ कॉमन्स' के नेता और प्रिवी-कौंसिल के लॉर्ड, सर स्टेफर्ड क्रिप्स शीघ्र ही भारतवर्ष जाकर वहाँ के नेताओं से परामर्श करेंगे और भारत-विधान की जो योजना युद्ध-मन्त्रि-मण्डल ने प्रस्तुत की है। उसे भारतीय नेताओं से स्वीकार कराने का प्रयत्न करेंगे। इस घोषणा से भारत के कई नेताओं के हृदय में बहुत-सी आशायें जाग्रत् हो गईं और वह सर स्टेफर्ड क्रिप्स के आने की राह बड़ी उत्सुकता से देख रहे थे। कारण, संसार की परिस्थिति बड़ा भयंकर रूप धारण कर रही थी। मिस्टर क्रिप्स से पूर्व चीन के प्रधान जनरल मार्शल च्यांगकाई शेक भारत आये थे और चलते समय बृटिश सरकार को सम्मति दे दे गये कि भारतीयों को भारत का प्रबन्ध, रक्षा-आदि करने के स्वतन्त्र अधिकार दे देने चाहियें, ताकि वह युद्ध में पूरा-पूरा सहयोग दे सकें। उधर अमेरिका के प्रधान रूज़वेल्ट भी चाहते हैं कि भारतीय युद्ध चलाने में पूरा सहयोग दें। भारतीयों का कहना है कि वह शत्रु का सामना अवश्य करना चाहते हैं, पर वह स्वतन्त्र होकर ही लड़ सकते हैं। दास दूसरे की क्या सहायता कर सकता है? इन्हीं कारणों से भारतीयों का सहयोग प्राप्त करने के उद्देश्य से सर क्रिप्स मार्च के अन्त में आये और उन्होंने

सर्व-प्रथम अपनी योजना वॉयसरॉय, कमाण्डर इन्-चीफ व प्रान्तों के गवर्नरों-आदि को दिखाई और फिर काँग्रेस, 'हिन्दू-महासभा', मुस्लिम-लीग-आदि के नेताओं, मौलाना आज़ाद, महात्मा गाँधी और पण्डित जवाहरलाल नेहरू से भेट की और बिड़ला-हाउस, नई देहली में कई दिनों तक इस पर विचार करते रहे। 'मुस्लिम-लीग' के प्रधान मिस्टर जिन्ना भी उनसे मिले और कॉङ्ग्रेस के निर्णय का इन्तज़ार करते रहे, ताकि वह कॉङ्ग्रेस से निश्चय कर, अपनी अन्तिम सम्मति दे दें। 'हिन्दू-महासभा' के प्रधान राष्ट्रपति सावरकरजी को निमंत्रण मिला और वह अपने साथ डॉक्टर मुंजे, ऑनरेबल डॉ० श्यामाप्रसाद मुकर्जी, सर जे० पी०, श्रीवास्तव तथा लाला गणपतराय को लेकर २० मार्च को मिले।

क्रिप्स साहब जो योजना लेकर भारत आये थे, वह इस प्रकार थी कि, इस युद्ध के बाद भारत को डोमीनियन स्टेटस के अधिकार दिये जायेंगे। भारत का विधान भी भारत के प्रतिनिधि बनायेंगे। परन्तु युद्ध-काल में भारत-रक्षा का प्रबन्ध सरकार करेगी।

'हिन्दू-महासभा' ने क्रिप्स-योजना को रद्द कर दिया। 'हिन्दू-महासभा' भारत की अखण्डता को बड़ा पवित्र समझती है और उसका विश्वास है कि भारत की स्वतन्त्रता के लिये इसकी अखण्डता बड़ी आवश्यक है, इसलिये 'महासभा' ऐसी योजना को, जिसमें भारत के खण्ड-खण्ड

कर देने की झलक हो, 'हिन्दू-महासभा' कभी स्वीकार नहीं कर सकती।

इसके कई दिन बाद तक लम्बी-चौड़ी बहस करने के पश्चात् कॉङ्ग्रेस ने भी इस योजना को अस्वीकार कर दिया।

हिन्दुओं की प्रतिज्ञा

गत १०-५-४२ को स्वतन्त्रता तथा अखण्डता-दिवस मनाते समय राष्ट्रपति सावरकरजी ने हर हिन्दू के लिये निम्न-लिखित प्रतिज्ञा निश्चय की:—

"हम हिमालय से लेकर कुमारी अन्तरीप तक समस्त भारत को अपनी पित्र-भू तथा पूज्य-भू समझते हैं।

"हिन्दुस्तान हिन्दू-राष्ट्र है। हिन्दू अपने धर्म के अनुसार भारत को अखण्ड मानते हैं। यदि हिन्दू गिर गये तो हिन्दुस्तान उठ नहीं सकता। हिन्दू ही इसकी एकता, अविभाज्यता और स्वतन्त्रता के लिये लड़ेंगे। हिन्दुस्तान को स्वतन्त्र करने की जिम्मेदारी मुख्यतः हिन्दुओं की है। जो हिन्दुओं को कुचलना चाहते हैं, वह हिन्दुस्तान की स्वतन्त्रता के विरोधी हैं।

"हिन्दुओं का विश्वास है कि हर एक आदमी के लिये उसका धर्म पवित्र है। हिन्दू अपने धार्मिक विचारों पर स्वयं चलेंगे और दूसरों को भी चलने देंगे। हिन्दू किसी के धर्म का जन-बूझकर अपमान न करेंगे। हिन्दुओं लिये धर्म के सभी स्थान पवित्र हैं।

"हम प्रजातन्त्र चाहते हैं और जो अहिन्दू इस हिन्दुस्तान को अपना घर समझते हैं, उनको भी पूर्ण नागरिक अधिकार देने को तैयार हैं। हिन्दुस्तान के स्वतन्त्रता-संग्राम में यदि अहिन्दू बिना किसी प्रकार का मूल्य माँगे हमारी सहायता करेंगे, तो हम उनका स्वागत करेंगे।

"हम अपना प्रथम कर्त्तव्य समझते हैं कि अपने देश की पूर्ण रक्षा करें। हम न तो अन्याय के आगे चुपके-से झुकने की नीति को मानते हैं, न अपने शत्रु का हृदय केवल प्रेम तथा अहिंसा से पिघलाना चाहते हैं। वह मनुष्य जो अपने देश की रक्षा नहीं कर सकता, वह स्वतन्त्रता प्राप्त नहीं कर सकता।

"वर्तमान युद्ध के कारण स्वतन्त्र देश भी एक-दूसरे से मित्रता कर रहे हैं। हिन्दू बृटिश-सरकार के साथ स्वतन्त्र हिन्दुस्तान समानता और मित्रता का सम्बन्ध रखना चाहते हैं, यदि इस मित्रता में किसी प्रकार की ऊँच-नीच या बर्बरता का प्रश्न न उठे।

"हम बुद्धि-बल व न्याय-शक्ति के पुजारी हैं, जो हमें भगवान् राम, भगवान् कृष्ण, राणा प्रताप, गुरु गोविन्दसिंह, छत्रपति शिवाजी, समर्थ रामदास तथा महर्षि दयानन्द, लोकमान्य तिलक, स्वामी श्रद्धानन्द, लाला लाजपतराय-आदि से प्राप्त हुआ है।"

"हिन्दुस्तान तभी जीवित रह सकता है, यदि हिन्दू-

शक्तिशाली हों। अगर हिन्दुओं में संगठन नहीं तो भारत-खण्ड-खण्ड हो जायेगा। हिन्दुओं की रक्षा का अर्थ एकता और अखण्डता की रक्षा है। शक्ति-शाली और संगठित हिन्दू ही भारत की रक्षा कर सकते हैं।

"हम प्रत्येक स्वतन्त्रता-प्रेमी हिन्दू से प्रार्थना करते हैं कि वह दस मई के स्वतन्त्रता-दिवस को अवश्य याद रक्खें। इसी दिन १८५७ में प्रथम स्वतन्त्रता देश का युद्ध आरम्भ हुआ था।"

(दस मई को समस्त भारत में स्वतन्त्रता-दिवस मनाया गया। सभी नगरों में प्रभात-फेरियों और जुलूस के पश्चात् शाम को सभायें की गईं, राष्ट्रपतिजी की आज्ञानुसार सभा में प्रस्ताव पास किये गये।)

हम फिर अपनी प्रतिज्ञा दुहराते हैं कि १० मई १८५७ को आरम्भ हुए स्वतन्त्रता-युद्ध को जारी रक्खेंगे।

(२) हिन्दुस्तान की स्वतन्त्रता उसकी एकता है। सहस्रों वर्षों से भारत-माता की एकता के गीत हमारे ऋषियों, कवियों, शास्त्रकारों तथा योद्धाओं ने गाये हैं। भारत की एकता हिन्दुओं के धर्म का अङ्ग है और हमारे राष्ट्र का जीवनाधार है। हम प्रतिज्ञा करते हैं कि पाकिस्तान का विरोध करते हुए हिन्दुस्तान की एकता और राष्ट्रीयता को स्थापित रक्खेंगे।

(३) भारत में रहनेवाली अल्प-संख्यक जातियों को

जैसे कि पारसी, ईसाई, यहूदी-आदि हैं, और जो भारत की अखण्डता को रख, अपनी देश-भक्ति का परिचय दे रहे हैं, हम उनको विश्वास दिलाते हैं कि हम उनके नागरिक अधिकारों की रक्षा करेंगे। हिन्दू अपनी संख्या के अनुसार ही अधिकार चाहते हैं; न कम न अधिक।"

हमारा भविष्य तथा हमारा कर्त्तव्य

दैवी शक्ति के अतिरिक्त हर मनुष्य और हर जाति का भविष्य अपने हाथ में होता है। हम जैसा चाहें, बहुत हद तक अपने-आपको वैसा ही बना सकते हैं। अपना कर्तव्य पालन करने से कौन-कौन-सी कठिनाइयाँ दूर नहीं हो सकतीं ?

अब प्रश्न यह है कि हिन्दुओं का भविष्य क्या होगा ? इस समय हमारा कर्तव्य है कि अपनी संस्कृति तथा सभ्यता की रक्षा करें और स्वाधीनता प्राप्त कर, अपने पूर्वजों के नाम को उज्ज्वल करें। हिन्दुस्तान की रक्षा हिन्दुओं का परम धर्म है। बिना हिन्दुत्व के स्वतन्त्रता किस काम की ? यदि भारत में हिन्दू ही न रहे तो हमारी बला से यहाँ कोई भी रहे और कैसे भी रहे ! दोनों ही आवश्यक हैं। एक दूसरे से कभी भी पृथक् नहीं हो सकता। हम दोनों को ही प्राप्त करें, यही हमारा कर्त्तव्य है, अब विचारणीय प्रश्न यह है कि हमको यह दोनों कैसे प्राप्त हों ? काँग्रेस हमें स्वराज्य दिलाने को कहती है, पर इसका मूल्य हिन्दुत्व से

माँगती है। आज हिन्दू अपने हिन्दुत्व को तिलाञ्जलि देकर अपने-आपको बड़े अभिमान के साथ 'हिन्दुस्तानी' कहते फिरते हैं। यह हिन्दुओं के लिये बड़ा महँगा सौदा है। आज ३० करोड़ हिन्दुओं की प्रतिनिधि कहलानेवाली संस्था पूरे गौरव के साथ अपना शीश ऊँचा नहीं कर सकती। यह बड़े खेद की बात है। पर इसमें दोष किस-का ? हर हिन्दू को अपने हृदय पर हाथ रखकर इसका उत्तर देना चाहिये कि उसने 'हिन्दू-महासभा' के लिये क्या किया ? क्या वह अपने कर्तव्य का पालन कर रही है ? हिन्दुओं के बनाने से ही हिन्दू-जाति शक्तिशाली बन सकती है और शक्तिवान् शत्रु भी इसके मित्र बन सकते हैं, इसलिये हर हिन्दू का कर्तव्य है कि वह 'हिन्दू-महासभा' का सदस्य बने और दूसरों को भी बनाये, कौंसिलों, असेम्ब-लियों-आदि के निर्वाचन पर हिन्दुत्व की रक्षा करनेवालों को वोट दे, हिन्दुओं को श्री सावरकर-सरीखा कर्णधार प्राप्त है।

आओ, हिन्दुओ, उठो, 'हिन्दू-सभा' के झण्डे के नीचे आओ और इसकी शक्ति बढ़ाओ। संघ ही में शक्ति है। हिन्दुओं का कल्याण क्षात्र-धर्म के अपनाने में ही है, अछूत कहलानेवाले भाइयों को उठाने में है। गऊ-रक्षा करने में अपनी शारीरिक शक्ति बढ़ाने में है। अपने हितों की रक्षा

करने तथा राष्ट्र-भाषा हिन्दी व नागरी लिपि की उन्नति करने में है।

इति

हिन्दुत्व बल है संगठन, यह युग युगों का गान है,
जो देश मन्दिर विश्व का, वह देश हिन्दुस्तान है।

मानव-धर्म-आन्दोलन और उसका विवरण

लेखक—श्री० ऋषभचरण जैन

(कृपया इस विवरण को पढ़ने के पहले इस ग्रन्थ की भूमिका को एक बार पुनः पढ़ जाइये ।)

भगतसिंह और उसके साथियों की फाँसी एक ऐसी घटना थी, जिसने मेरे जीवन में एक अजब तरह की खलबली पैदा की । इससे पहले मैं एक ऐसा व्यक्ति था, जो देश की राजनीति के प्रति लगभग एक दर्शक की-सी दिलचस्पी रखता है, लेकिन देश की किसी राजनैतिक विचार-धारा से मेरा क्रियात्मक सहयोग न था ।

उपरोक्त घटना के फल-रूप जो खलबली दिल में पैदा हुई, उसकी प्रतिक्रिया ने न तो मुझे जवाहरलाल बनाया और न चन्द्रशेखर आज़ाद, न तो मेरे दिल में किसी जाति-विशेष के प्रति क्रोध पैदा हुआ, न मैं 'कॉम्युनिज़्म' की ओर आकृष्ट हुआ, न 'फ़ैसिज़्म'-नामक भयावने प्रवाह की ओर । मेरे मन में तो केवल यह भाव उत्पन्न हुआ कि आख़िर क्यों यह घटना हुई, क्यों ऐसी अन्य घटनायें होती हैं और क्या किसी प्रकार भी कोई ऐसा आदमी इन घटनाओं को न्याय-सङ्गत ठहरा सकता है, जिसका ज़मीर सही है, जिसकी बुद्धि भ्रष्ट नहीं हो गई है और जिसके हृदय में सहृदयता की धड़कन है ? मैंने सोचा, क्या मानव-जीवन ऐसी चीज़ है, जिसे कोई व्यक्ति इस प्रकार समाप्त कर दे और वह क्या चीज़ है, जो मर जाने के बाद भी रह जाती है और नहीं रह जाती । फिर मैंने यह भी सोचा कि क्या चीज़ थी, जिसने निरपराध सॉण्डर्स की हत्या करा दी और क्या चीज़ है, जिसके कारण देश-देशान्तरों में इस तरह की अनेक घटनाओं का वर्णन नित्य सुनने को मिलता है ।

इसके बाद मैंने समाज के अन्य अङ्गों पर दृष्टि-पात किया। मैंने देखा—सर्वत्र शोषण की भावनाओं का दौर-दौरा है। दौलत को ईश्वर का रूप मिल गया है। 'सुख' की परिभाषा बदलती जा रही है। लोगों के जीवन कृत्रिमता में ढलते जा रहे हैं। जब जगह प्रचण्ड स्वार्थपरता और विलास के छोटे-से-छोटे और बडे-से-बड़े दृश्य दिखाई देते हैं। दुनियाँ के लोग मुझे कुछ ऐसे लगे, जैसे उन्हें नहीं लगना चाहिये था।

मुझे संसार के सभी देशों के लोगों से मिलने का अवसर मिला। मैंने देखा, हिन्दुस्तान के लोग अन्य देशों के लोगों से कुछ भिन्न ज़रूर हैं, लेकिन मानवता की मूल वृत्तियों में मुझे सर्वत्र समानता दिखाई दी। अहङ्कार, काम-वासना, स्वार्थ और धर्म-लोलुपता के भाव इतनी तीव्रता के साथ मानव-वृत्ति में उत्पन्न हो गये हैं कि हम मानों उनके ला-इलाज शिकार हो गये हैं।

मैंने पशु-पक्षियों के जीवन पर भी दृष्टिपात किया और सोचा—'अरे, यह पशु-पक्षी इन्सान से आगे बढ गये! हमने इतनी बुद्धि ख़र्च करके उड़ना सीखा, इतना श्रम लगाकर समुद्र पार करना सीखा, इतने तन्त्र-मन्त्र जगाकर हम कृत्रिम दूध-घी तैयार करते हैं, विज्ञान की पूरी करामात की मदद से भी हम नक़ली चमडा और रबड़ तैयार नहीं कर सके। हमसे तो यह जानवर अच्छे, जो न-जाने कब से उड़ना सीख चुके हैं, तैरना सीख चुके हैं, जीकर दूध-दही से और मरकर चमड़े और हड्डियों से मानव का उपकार करते रहते हैं, आपस में बेहद मेल-प्यार से रहते हैं; कभी लड़ते भी हैं तो दो घडी बाद फिर मेल कर लेते हैं। मैंने देखा, कितना शान्त, सुव्यवस्थित और नियमित इन पशु-पक्षियों का जीवन है! और हम इन्सान, पेट-भर रोटी और बालिश्त-भर टुकड़े के लिये एक-दूसरे को गोली मार सकते हैं, एक-दूसरे को जेल में डाल

सकते हैं और क्या-क्या नहीं कर सकते ? मैंने कहा—'हम सब ग़लत रास्ते पर जारहे हैं।'

लिहाज़ा, आज से क़रीब बारह बरस पहले, १६३० के आस-पास, इस तरह के स्पष्ट-अस्पष्ट विचार मन में उठने शुरू हुए। और जिज्ञासा हुई कि कौन सा ऐसा मार्ग है, जिससे मानव-जाति की वृत्ति की यह ख़ूँख़्वारी, यह ख़ूँरेज़ी, यह राक्षसी वृत्ति मिटे।

उन दिनों विलायत में सारे सफेद देश मिलकर निःशस्त्रीकरण और 'लीग ऑफ़ नेशन्स' के चर्चे कर रहे थे। मैंने 'लीग ऑफ़ नेशन्स' और 'निःशस्त्रीकरण' के इन यत्नों पर ध्यान दिया, रूस, जर्मनी, जापान और इटली पर उनकी प्रतिक्रियाओ को देखा, इङ्गलैण्ड, अमरीका, फ्रान्स और अन्य मित्र-राष्ट्रो के रुख़ पर ध्यान दिया और कुछ ही दिन में मेरा यह निश्चय हो गया कि यह सारी बातें केवल ढकोसला हैं। बाद में, एबीसीनिया के मामले में मेरे इस अनुमान की पुष्टि हो गई।

इरादा मेरा लगभग १६३० में ही यह हुआ था कि अपने जीवन की समस्त शक्तियाँ मानव-जाति को स्थायी सुख-शान्ति के मार्ग पर लाने का उद्योग करने में लगा दूँ। वेदान्त उन दिनो मेरा प्रिय विषय था। वेदान्त ही मुझे संसार की सुख-शान्ति का वास्तविक मार्ग दिखाई देता था और किसी पूज्य पुरुषों के चरणों में बैठकर तत्सम्बन्धी शिक्षा ग्रहण करके अपना कार्य आरम्भ कर देने की मेरी अभिलाषा थी। मैंने अरविन्द, गाँधी और पण्डित मदनमोहन मालवीय के जीवन इस दृष्टि से उठाकर देखे कि क्या उनमें से कोई यह व्यक्ति हो सकता है। कहीं-कहीं मुझे ऐसी झलक अवश्य मिली कि कुछ महापुरुष स्थिति की तह में पहुँचने की ओर प्रवृत्त हुए हैं।

जब इधर से निराशा हुई तो संसार के सभी धर्मों और सभी

महापुरुषो के सिद्धान्तों और विचारो का कुछ-कुछ अनुभव किया और तलाश करने की कोशिश की कि उनमें से कहीं कुछ सन्देश मेरे मतलब लायक़ मिल सकता है। लेकिन मेरी निराशा का ठिकाना न रहा, जब मैंने देखा कि आधुनिक मानव-जाति को अपने सम्पूर्ण आनन्द के साथ सदा-सर्वदा जीवित रखने का नुस्ख़ा किसी भी धर्म में मौजूद नहीं है और वे सारे सिद्धान्त बीती वस्तु बन गई हैं और बुद्धि-वार्धक्य के इस युग में मनुष्यों ने अपनी-अपनी व्यवस्था अलग-अलग गढ़ ली है। और संसार की समस्त अशान्ति का वास्तविक कारण यही है।

जीवन ने कुछ ऐसा फेर खाया कि उक्त विचार-धारा जितनी तीव्रता से आरम्भ हुई, उतनी तीव्रता से जमी न रह सकी, लेकिन मुझे अच्छी तरह याद है कि कोई भी महीना ऐसा नहीं बीता, जबकि अपने इस उद्देश्य की पूर्ति की स्मृति मुझे न आती हो।

आखिर १६४० के क़रीब इस तमाम सोच-विचार ने कुछ निश्चित् सूरत अख़्तियार करना शुरू की। मैंने अपने कार्य-क्रम का एक ख़ाका तैयार किया। इस ख़ाके के दो भाग हैं। पहला भाग प्रचार है और दूसरा शक्ति; बल्कि शक्ति से भी अधिक महत्व प्रचार का है। फिलहाल प्रचार के दो साधन संसार में सब से प्रबल हैं (१) समाचारपत्र (२) सिनेमा। 'अखिल भारतीय सिनेमा सहायक सङ्घ' से मैंने प्रार्थना की है कि वह मेरे ख़ाके के अनुसार अपना कार्य-क्रम स्थिर करके प्रचार के भाग को अपने हाथ में ले* और 'अखिल भारतीय हिन्दू महासभा' से मैं अनुनय कर रहा हूँ कि कार्य-क्रम के दूसरे भाग को उठाकर इस देश की राज्य-शक्ति पर क़ब्ज़ा करें। हो सकता है कि दोनों में से कोई भी मेरी बात स्वी-

*मुझे प्रसन्नता है कि 'सिनेमा सहायक सङ्घ' ने मेरी प्रार्थना स्वीकार कर ली है—ले०

कार न करें। लेकिन उन्होंने यदि शुरू में ऐसा न किया तो मैं बार-बार प्रार्थना करूँगा कि वे मेरी बात मानें और जब तक या तो इस यत्न में मेरा जीवन समाप्त न हो जायेगा और या मुझे कोई अन्य अधिक उपयुक्त मार्ग दिखाई न दे जायेगा, मैं अपना यत्न जारी रखूँगा।

परिचय

दुनियाँ बदल रही है। दुनियाँ के लोगों के दिल और दिमाग़ भी बदलकर किसी नई शक्ल में ढल जाना चाहते हैं। हिन्दुस्तान भी इस भावना से बरी नहीं है। हिन्दुस्तान की राजनैतिक बेबसी तो है ही, उसके निवासियों का सांस्कृतिक और मानसिक ह्रास भी एक बड़ी भारी समस्या है। इस बदलते हुए युग में अगर हिन्दुस्तान मुनासिब हिस्सा न ले सका, तो यह हमारी महाजाति का दुर्भाग्य होगा।

संसार-भर की अशान्ति का मुकम्मिल और स्थायी इलाज ढूँढ़ने के यत्न किये जा रहे हैं। हिन्दुस्तान की सार्वजनिक राजनीति का तो एक-मात्र लक्ष्य ही उपरोक्त है। अरविन्द, गाँधी, राधाकृष्णन्-आदि की विचार-धारायें अपने-अपने ढङ्ग पर इस 'मिशन' की तरफ़ बढ़ रही हैं। उनके लाखो-करोड़ों अनुयायी और भक्त भी हैं—इस देश में भी और अन्य देशों में भी। लेकिन बुद्ध, महावीर, ईसा, मोहम्मद, शङ्कराचार्य, रामानुज, नानक, दयानन्द और एनी बिसेण्ट-आदि के कार्यों ने सिद्ध कर दिया है, कि उपरोक्त महापुरुष दुनियाँ में आये और अपने-अपने जीवन-काल में एक-एक नये मत का निर्माण करते चले गये। दुनियाँ की समस्यायें जैसी थीं, वैसी तो रह ही गयीं; इन समस्याओं में कुछ नई गाँठें और भी लग गयीं।

एक नया फ़ॉरमूला—एक नई व्यवस्था—एक नया चमत्कार

दुनियाँ माँगती है, जिससे प्रत्येक मानव अपने अलभ्य अस्तित्व का पूरा-पूरा आनन्द अनुभव कर ले—जिससे जीवन की सारी मानसिक प्रतिक्रियाएँ मिट जायें। मनुष्य सुख चाहता है और मानव को यह अनुभव हो चुका है कि उसे स्थायी सुख मिल सकना सम्भव है। इस सुख की परिभाषा क्या हो, रूप-रेखा क्या हो, और उसे प्राप्त करने का साधन क्या हो—इन्हीं प्रश्नों का उत्तर महापुरुष देते रहे हैं।

सब से पहली ज़रूरत !

संसार में इस समय सब से बड़ी ज़रूरत यह है कि अखिल मानव-जाति के सम्मुख कोई ऐसा फ़ॉरमूला रखा जाय, जिसके आधार पर भिन्न-भिन्न मतों, धर्मों, विश्वासों और आदर्शों का जो संघर्ष हो रहा है, वह मिटे तथा मानव-जाति को स्थायी सुख और शान्ति की प्राप्ति हो। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिये हमें न तो किसी नये धर्म की स्थापना की ज़रूरत है और न वर्तमान धर्मों में से किसी एक की वकालत करने की। ज़रूरत है कि भिन्न-भिन्न धर्मों के रूप में हमें जीवन को ऊँचा उठानेवाले आदर्श सिद्धान्तों के रूप में जो रत्न प्राप्त हो गये हैं, उनको एक लड़ी में पिरो दिया जाय। यों मैं राष्ट्रीय दृष्टि से हिन्दू और साम्प्रदायिक दृष्टि से जैन हूँ, लेकिन अगर दरअसल मेरे दिल की तह में कोई पहुँचे तो उसे मिलेगा कि मैं सब से पहले अपने-आपको केवल एक मनुष्य समझता हूँ और हमारे फ़िल्म-निर्माताओं को ऐसे चित्र तैयार करने चाहियें, जिनसे उनके दर्शकों के हृदय में दिनों-दिन यह भाव दृढ़तर होता जाय कि वे सब से पहले मनुष्य हैं और उसके बाद कुछ और।

इसके अतिरिक्त मैंने अपने तुच्छ अध्ययन के आधार पर मानव-

जाति की राजनैतिक, धार्मिक, सामाजिक, वैयक्तिक और गार्हस्थिक उलझनों का वह असली कारण तलाश किया, जिससे हमारे जीवन दुखी हो गये है। इस दुख का कारण मैंने केवल मानसिक द्वन्द्वों (Interiority complexes) को ही पाया। इसके अतिरिक्त मैंने वह कारण भी तलाश किये, जिनसे आज के मनुष्य को वह पूर्ण और स्वस्थ आयु प्राप्त नहीं होती, जो हमारे पूर्वजों को प्राप्त होती थी। इसमें मुझे रहन-सहन और खान-पान की अनियमितता ही मुख्य कारण दिखाई दी। मैंने यह भी देखा कि जीवन की दोनों परम विभूतियाँ—दीर्घायु और स्वच्छ स्वास्थ्य नागरिकों की अपेक्षा ग्रामीणों में अब भी अधिक मिलती हैं; यद्यपि देखने में ग्रामीणों की अपेक्षा शहरी ज़्यादा सम्पन्न है। मुझे कहने दिया जाय कि शहरियों की इस दुर्दशा का सब से बड़ा कारण शराब है। और उसके सम्बन्ध में जितना अधिक विचार मैंने किया है, उतना ही अधिक मैं इस परिणाम पर पहुँचा हूँ कि संसार के समस्त पापों से बड़ा पाप शराब है। 'पाप' की विस्तृत व्याख्या करना किसी और समय के लिये स्थगित करता हूँ और इस समय तो मैं केवल यही कहना उचित समझता हूँ कि हमें ऐसा आन्दोलन करना चाहिये, जिससे मानव-जाति के हृदय से शराब के प्रति आकर्षक मिट जाये। यह सत्य तो निर्विवाद है कि शीघ्र ही इस देश में जो राजनैतिक परिवर्त्तन होनेवाले हैं, उसके फल-स्वरूप यहाँ शराबख़ोरी के ख़िलाफ़ जिहाद बोला जायेगा, लेकिन कोई भी सरकारी आदेश तब तक सफल नहीं हो सकता, जब तक कि उसके लिए ग़ैर-सरकारी एजेन्सियाँ भरपूर प्रचार न करें। मैं चाहता हूँ कि हमारे निर्माता इस दिशा मे अपना उद्योग जारी रक्खें और इस उद्योग में अगर उनका आर्थिक लाभ कम भी हो तो उसकी चिन्ता न करें; ईश्वर उनका साथ देगा।

मानव-जाति और मद्य-पान

मानव-जाति की राजनैतिक, सामाजिक, धार्मिक, वैयक्तिक और गार्हस्थिक समस्याओं के मुख्य कारणों में शराब का प्रमुख स्थान है। मेरा अपना तजुर्बा यह है कि ग्रामों की अपेक्षा नगरों में अशान्ति, अव्यवस्था गृह-कलह और राग-द्वेष के दृश्य अधिक दिखाई देते हैं। और जिस हद तक गहराई में जाकर मैंने इसके कारण तलाश किये, उसी हद तक शराब को मैंने इन बातों का कारण पाया। अपने तुच्छ अनुभव और मनन के आधार पर मैं यहाँ यह बताने का प्रयास करता हूँ कि किस प्रकार, किन विभागों में शराब अपना क्या प्रभाव रखती है।

मेरे विचार में लगभग सभी धर्म यह मानते हैं कि मानव दो प्रधान तत्वो से मिलकर निर्मित हुआ है। किसी के मतानुसार इन दो तत्वों का नाम पुरुष और प्रकृति है,, किसी के जड़ और चेतन, कोई इन तत्वो को जीव और अजीव का नाम देते हैं और कोई अन्य। आजकल का घोर पदार्थवादी (Materialist) भी आत्म-तत्व की सत्ता को लगभग स्वीकार कर चुका है। इन महान् पुरुषों के दीर्घकालीन अनुभवो के सामने मेरे-जैसे अज्ञानी आदमी के प्रयोगों को कुछ भी महत्व नहीं और मैं यह समझता हूँ कि मेरे निजी प्रयोगों के परिणाम भी अवश्य वही हैं, जिन पर हमारे पूर्व पुरुष पहुँच चुके; केवल भिन्न-भिन्न धार्मिक सिद्धान्तों का पूरा ज्ञान न होने के कारण ही निजी अनुभव के आधार पर निश्चित किये हुए सिद्धान्त कुछ नये-से जान पड़ते हैं। इन सिद्धान्तों में से एक यह है कि आत्मा सूक्ष्म होते हुए भी एक 'पदार्थ' ही है और उसके गुण (Qualities) भी वही हैं, जो मन और शरीर के हैं। अधिक स्पष्टतापूर्वक यह बात यों समझी जा सकती है कि जिस प्रकार

इलायची के दाने, पत्ते और छाल की एक ही तासीर होती है, उसी प्रकार आत्मा और मन की अनुभूतियाँ और गुण (Qualit-ies) वैसे ही होते हैं, जैसे शरीर के। जिस प्रकार पत्तों और छाल की अपेक्षा दाने की असली मौलिकता उसकी प्रजनन-शक्ति है, उसी प्रकार आत्मा की भी कुछ मौलिकताएँ हैं; किन्तु शरीर के गुण-दोषों को समझ लेने से हमें आत्मा का स्वरूप पहचानने में सुगमता होती है। आगामी पंक्तियों में मैं अपना अभिप्राय अधिक स्पष्ट करने का उद्योग करूँगा।

यों तो हिंसा, चोरी, असत्य, व्यभिचार-आदि सभी कार्य भयङ्कर पाप हैं और नर्क-स्वर्ग की बात छोड़कर भी मानव के लिए दुःख और सङ्कट का कारण हैं; लेकिन प्रायः इन पापो की ओर ले जाने की प्रवृत्ति शराब के द्वारा ही उत्पन्न होती है। जैसे छुरे का वार जब एक बार शरीर पर ज़ख्म डाल देता है तो ज़ख़्म सूख जाने के बाद भी एक मुद्दत तक अङ्ग का वह स्थान इतना मुलायम रहता है कि हल्के-से आघात से भी वहाँ फिर ज़ख्म हो जाने की सम्भावना रहती है, इसी प्रकार शराब मन, मस्तिष्क और आत्मा को भी ज़ख्मी कर देती है। मेरा तो ऐसा ख़याल है कि यह ज़ख्म इतने गहरे होते हैं कि अगर कोई आदमी शराब पीते-पीते उसका त्याग भी कर दे तो इन ज़ख्मो के सूखने में वर्षों लग जाते हैं और जीवन-भर उन ज़ख़्मों के हरा हो जाने की आशङ्का लगी रहती है। केवल मनुष्य का अदम्य साहस, कठोर इच्छा-शक्ति (Will Power) और प्रभु की अपार दया ही इस नाशकारी बवा से मानव की रक्षा करती है।

भला ऐसी भीषण मायाविनी का जो लोग नित्य सेवन करते हैं, उनके मन, मस्तिष्क और आत्मा की क्या अवस्था होती होगी! आम तौर पर शराब पीनेवाले व्यक्तियो का मिज़ाज चिड़चिड़ा,

क्रोधी, परस्पर-विरोधी आदर्शों का केन्द्र (inconsistent), विचार-धारा गर्हित, क्रूरतापूर्ण, ग़लत और अधार्मिक, शरीर कुरूप, बेडौल, आरामतलब और स्वास्थ्य ख़राब रहता है। शराब पीनेवाला व्यक्ति या तो बहुत भावुक हो जाता है या मक्कार। जिन व्यक्तियों के संस्कार अच्छे रहे हैं और जिनकी आत्मा में पूर्व जन्म के शुभ कर्मों का प्रकाश है और वे दुर्भाग्यवश इस लत में पड़ जाते हैं, उनके स्वभाव में शराब भावुकता का विकास करती है, लेकिन जो दूसरी प्रकार के लोग हैं और शराब को एक दैनिक पेय की चीज़ समझकर प्रसन्नतापूर्वक उसका सेवन करते रहते हैं, उनकी आत्मा में शराब के सूक्ष्मातिसूक्ष्म कण प्रवेश करके उन्हें अविचारी, मक्कार और अपने-आपको ही धोखा देनेवाला बना देते हैं। पहली स्थिति की निस्बत दूसरी स्थिति अधिक ख़तरनाक है और पाश्चात्य देश-वासियों की वर्तमान विचार-धाराएँ मेरे कथन की पुष्टि में पेश की जा सकती हैं। पूर्वदेशीय लोगों में शराब का प्रचार पिछले दो सौ वर्षों से ही बढ़ा है और इसका इधर प्रचार और व्यापार करने का उत्तरदायित्व पाश्चात्य देश-वासियों पर ही है। चूंकि पाश्चात्यों में बुद्धि का विकास पूर्वी आर्यों की अपेक्षा नया है, और यह विकास ऐसे काल में हुआ, जब कि नियमित मद्यपान के कारण उनका अन्तरात्मा (Conscience) रोगी था, इसलिये उन्होंने अपने लिये जो सिद्धान्त स्थिर किये, वे मूलतः सदोष थे। समय आने पर, जब इनका बौद्धिक विकास पुराना होगा, तो उन्हें जीवन के रहस्यों का ज्ञान होगा, और उसके कुछ कुछ लक्षण अभी से दिखाई पड़ने लगे हैं।

कुछ लोग कहते हैं कि प्राचीन काल में भी, जब कि संसार के आदमियों की विचार-धारा पवित्र समझी जाती थी, शराब का अस्तित्व था और लोग शराब पीते थे। ऐसी दशा में, इस काल में

शराब को बुरा क्यों समझा जाय ? देश के अनेक वयोवृद्ध और प्रतिष्ठित व्यक्तियों तक से मैंने यह शङ्का सुनी। ऐसे व्यक्ति अपने कथन की पुष्टि में यह तर्क पेश करते हैं कि शराब का प्रचार जब कि प्राचीन काल मे भी नहीं रुक सका, तो इस काल में इसका एक-दम रुक सकना असम्भव है। इन भाइयों की सेवा में मैंने समय-समय पर कुछ तर्क पेश किये हैं।

शराब मिट क्यों नहीं सकी ?

(प्राचीन काल के उदाहरण पर मेरे तर्क)

गीता-आदि ग्रन्थों के कुछ टीकाकारों ने यह सिद्ध कर दिया है कि वर्तमान-कालीन भौतिकवादी दृष्टिकोण संसार के इतिहास में कोई नई घटना नहीं है। भौतिकवाद और अध्यात्मवाद का विकास सदा से एक-के-बाद एक क्रम से इस संसार में चला आता रहा है और मेरी राय में यद्यपि प्रत्येक क्रम में आत्म-तत्व का कुछ-न-कुछ ह्रास होता रहा है, किन्तु अध्यात्मवादी भावनाओं की प्रबलता के प्रत्येक काल में भौतिक वस्तुओं को निस्सार और निकृष्ट समझने की प्रवृत्ति मानव की रही है। मेरी धारणा है कि समस्त सृष्टि में सविवेक मानव एक युग में केवल एक ही लोक में रहना सम्भव है और जब उस लोक की आयु समाप्त होकर उसका विनाश हो जाता है तो विवेक-सहित प्राणी का उद्‌भव किसी दूसरे लोक में हो जाता है। इसके अतिरिक्त यह सविवेक प्राणी उसी लोक में जन्म ले सकता है, जहाँ समस्त सृष्टि के अनन्त लोकों के अवयवों के नमूने मौजूद हों। मेरी तुच्छ सम्मति में जो पाश्चात्य देश-वासी भौतिक उपायों-द्वारा अपने से अन्य लोकों में पहुँचने का उद्योग कर रहे हैं, उन्हें प्रथम तो इसमें सफलता नहीं मिलेगी और यदि कल्पना कर ले कि मिल भी जाये तो वहाँ उन्हें अपने से श्रेष्ठ परिस्थिति नहीं मिलेगी। निस्सन्देह, स्वर्ग ऐसा लोक है, जहाँ

प्राणी को दिव्य शरीर की प्राप्ति होती है और समस्त प्रकार के सुख भी प्राप्त होते हैं। किन्तु उन लोगो की दशा लगभग वैसी ही है, जैसे समस्त पार्थिव सुखों से भरपूर कोई राजा नज़रबंदी का जीवन काटता हो। ऐसी दशा मे उचित है कि मानव इस बात पर श्रद्धापूर्वक विश्वास करले कि सृष्टि में उसका सब से उत्कृष्ट स्थान है और उसे अन्य लोकों का हाल जानने में फँसकर अपने जीवन के अमूल्य क्षण नष्ट नहीं चाहियें। जब-जब, जिस-जिस लोक की मानव-जाति में भौतिकवाद का दौर-दौरा हुआ, मानव-जाति अन्त में इसी परिणाम पर पहुँची कि जिन बातों में वे उलझे रहे, वह ग़लत और व्यर्थ थी। जैसे ही उन्हें इस सत्य का श्रद्धान हुआ, उन्होंने उन तमाम साधनों को बर्बाद करके देखा, जिनके कारण दुनियाँ के साथ उनका मोह-बन्धन गहरा हो गया था। हाल ही में महाभारत-काल के बाद, वे तमाम दैवी अस्त्र-शस्त्र मिट गये, वे समस्त रिद्धि-सिद्धियाँ नष्ट हो गईं, उन सारी शक्ति-समृद्धियों का भी नाश कर दिया गया, जिनके कारण मानव का अहङ्कार वृद्धिगत हुआ था और इन कालों के सर्वोत्तम महापुरुष ने इस ध्वंस के ऊपर नव-युग का निर्माण करने का संकेत किया।

लेकिन शराब न मिटाई जा सकी। सम्भवतः सृष्टि का यह सब से विचित्र आविष्कार है। राक्षस-वंश के नाश का कारण शराब हुई, यादवों को इसी शराब ने बर्बाद किया और संसार की वर्तमान महान् जातियाँ भी शराब के कारण ही सम्भवतः रसातल को चली जायेंगी। अन्य पार्थिव निकृष्टताओं के साथ-ही-साथ शराब को नष्ट करने के क्या-क्या उपाय किये गये थे, इसका अन्वेषण मेरा अभी अधूरा है, किन्तु मेरा ख़याल है कि शायद संसार के सभी धर्मों ने शराब को सब से बड़ा पाप बताया है। प्राचीन काल का उदाहरण देकर मेरे जो आदरणीय

मित्र शराब की उपयोगिता की वकालत करते हैं, उनसे मैंने नम्रतापूर्वक यह निवेदन किया कि निस्सन्देह प्राचीन काल में शराब थी, लेकिन प्राचीन काल में शराब के प्रति भीषण घृणा भी थी और प्राचीन-से-प्राचीन धर्म ने भी उसे उपयोगी नहीं बनाया। जब इन आदरणीय मित्रों ने यह तर्क किया कि आख़िर प्राचीन काल के विद्वान् और महात्मा लोग भी शराब का अस्तित्व क्यों नहीं मिटा सके, तो मैंने अपनी साधारण बुद्धि के आधार पर उन्हें निम्न उत्तर दिये है.—

(१) किसी पदार्थ का—चाहे वह भौतिक हो या अभौतिक—सर्वथा अस्तित्व कभी भी लोप नहीं किया जा सकता। महात्माओं और ऋषियों ने केवल मानव की विवेक-बुद्धि को सबल बनाये रखने-मात्र के उद्योग किये हैं और जब-जब, जिन-जिन मनुष्यों की विवेक-बुद्धि यथेष्ट सबलता प्राप्त कर सकी, तब-तब, उन-उन मनुष्यो ने शराब न पी।

(२) कलियुग की सब से बडी देन है—सङ्गठित राज्य-शासन। कठिनाई यह है कि कलियुगी राज्य-शासन सभी देशों में इस समय ऐसे व्यक्तियो के हाथो मे है, जिन्हे बुद्धि-वार्धक्य की बीमारी हो गई है, जिनकी आत्मा मैली हो चुकी है और जो शराब की माया से इस कदर ग्रसित हो गते हैं कि ख़ुद तो उसका पीना छोड ही नही सकते, अपने लोभ, दौर्बल्य और अभिमान के कारण अपने शासितो को उसके त्याग के लिए विवश भी नही कर सकते। यदि हमारा शासित-समुदाय श्रद्धापूर्वक यह भी स्वीकार कर ले कि मानसिक दौर्बल्य के कारण यद्यपि वे स्वयं शराब का प्रयोग नही छोड सकते, लेकिन उसे वे मानव-जाति का सब से बडा दुश्मन मानते हैं और इस कठोर निश्चय पर पहुँचकर वे अपने शासितों से इस

हद तक बल-प्रयोग करके शराब का प्रयोग छुड़वा दें, जिससे कुछ ही काल में इस बला से मानव-जाति को छुटकारा मिल जाय तो इस कलियुगी देन का वास्तविक लाभ हम उठा सकते हैं और सम्भवतः फिर नवयुग का आगमन हो सकता है।

(३) शराब एक सर्वथा वैयक्तिक व्यसन है और मांस-भक्षण और व्यभिचार-आदि से अधिक सुगम, सुलभ और साध्य है। जब तक राजकीय बल-प्रयोग के साथ-साथ अखिल मानव जाति की आत्मा में शराब की भयानकता का प्रभाव ठूँस-ठूँसकर न भर दिया जायेगा, तब तक उक्त बल प्रयोग का कोई लाभ न होगा। कलियुग की दूसरी देन है—प्रचार के प्रचुर साधन उपलब्ध होना। यदि संसार की समस्त सरकारें अपने अधीनस्थ सारी रेल-गाड़ियों, सारे हवाई जहाज़ो, सारे समाचार-पत्रों, सारी फ़िल्म-कम्पनियो और सारे रेडियो-स्टेशनों का समस्त उपयोग शराबबन्दी की सफलता के लिए करें, तो यह मायावि ी सम्भवतः मानवता के चरम-अन्त के अनेक हज़ार वर्षों को सुख-शान्ति-मय बनाने के लिए अपना लोप कर लेगी। इसके लिए किसी एक देश का अकेला प्रयोग सम्भवतः आरम्भ में असफल हो जाय; जैसे कि अमेरिका और भारत में हुआ। इसलिए इस योजना पर बल-प्रयोग का इस्तेमाल शुरू करने से पहले अव्वल तो घनघोर प्रचार करना होगा और इस प्रचार में संसार-भर की महाशक्तियों को साथ लेने के यत्न की भी 'आइटेम' रखनी पड़ेगी।

'सङ्घ' का दूसरा उद्देश्य

('मानव-धर्म' की स्थापना)

पिछले लेखों में मैंने यह सिद्ध करने का उद्योग किया था कि नवयुग का निर्माण करने की जो चेष्टाएँ संसार के भिन्न-भिन्न क्षेत्रों में हो रही हैं, उन सब का एक-मात्र अभिप्राय यही है कि विश्व की

सब से अनोखी जाति—मानव-जाति—के भिन्न-भिन्न समुदायों और दलों के बीच स्थायी सुख-शान्ति की स्थापना हो। मैंने इस स्थिति के अमल में आने का उपाय मानव-जाति के दृष्टिकोणों का एकीकरण और मानव-मस्तिष्क की परस्पर-विरोधी धाराओं (Inconsistencies) का नियमित रूप में ला दिया जाना ही बताया था। पिछले लेखों में मैंने यह सिद्ध करने का उद्योग किया था कि आत्मा, मन और मस्तिष्क की तमाम टेढ़ों का सब-से-बड़ा कारण शराब है और जब तक मानव-जाति इस पदार्थ का सेवन क़तई बन्द न कर देगी, तब तक हमारी आत्मा के रोग ज्यों-के-त्यों बने रहेंगे। मैं इस पदार्थ को इस हद तक मानव-जाति की सुख-शान्ति और विकास के लिये ख़तरनाक मानता हूँ कि मैं इस बात की सिफारिश करता हूँ कि दुनियाँ की तमाम सरकारें अपने राज्य की समस्त शक्तियाँ लगाकर भी मानव-जाति के सर से इस बला को हटा दें। और जब तक वह समय नहीं आता जब कि इस बला के दूरीकरण के लिये दुनियाँ-भर की सरकारों को तैयार किया जा सके, तब तक ग़ैर-सरकारी साधनों-द्वारा इसके विरोध में प्रचार किया जाय।

दूसरा उद्देश्य है—अखिल-विश्व में मानव-धर्म की स्थापना का उद्योग करना। यह तो बताया ही जा चुका है कि सारे संसार के अनेक कोनों से दुनियाँ में किसी नये युग का निर्माण करने का उद्योग किया जा रहा है। और इन तमाम प्रयत्नों के ज़ाहिरा रास्ते मानव-जाति के भाग-विशेष को कितने भी अरुचिकर क्यों न लगते हों, हमें स्वयं उन व्यक्तियों की सद्भावनाओं में सन्देह करने का कोई अधिकार नहीं है, जिन्होंने अपने लक्ष्य की पूर्ति में न केवल प्राणों की बाज़ी लगा दी है, बल्कि जिन्होंने अपने पीछे संसार के लाखों-करोड़ों मस्तिष्कों को लगा लिया है। नव-युग

का निर्माण करने के उम्मेदवार इन महान् पुरुषों की कार्य-पद्धति में मुझे एक तत्व सामान्य (Common) दिखाई दिया और वह यह है कि उन्होंने अपने कार्य-क्षेत्र में आनेवाले व्यक्तियों के लिये किसी ऐसे धार्मिक बन्धन की अनिवार्यता नहीं रक्खी, जिनके वे अपने पूर्व-पुरुषों के कथानुसार अनुयायी थे। अधिक स्पष्टतापूर्वक यह बात यों समझी जा सकती है कि अगर नव-युग के निर्माता हिटलर, स्टालिन और गाँधी को समझ लिया जाय तो हमें दिखलाई देता है कि इन तीनो ही व्यक्तियो ने अपने पैरोकारों के लिए ऐसे सिद्धान्त निश्चित् किये हैं, जिनका अवलम्बन संसार के किसी भी धर्म का अनुयायी कर सकता है। उदाहरण के लिए, स्टालिन का कम्युनिष्ट अनुयायी ईसाई, मुसलमान, हिन्दू और बौद्ध कोई भी हो सकता है, और इसी प्रकार हिटलर का नेशनलिस्ट-सोशलिस्ट अनुयायी यहूदीको छोड़कर किसी भी सम्प्रदाय का व्यक्ति बन सकता है तथा गाँधीजी का अनुयायी हिन्दू, मुसलमान, ईसाई और कोई भी अन्य धर्मावलम्बी रह सकता है। लेकिन तीनों ही व्यक्तियों ने अपने पैरोकारों के लिए कुछ नये सिद्धान्त स्थिर किये हैं और आज इन महापुरुषों के करोड़ों पैरोकारों का धर्म यही नये सिद्धान्त बन गये हैं। दूसरे शब्दों में यह कहा जा सकता है कि प्राचीन धर्मों का स्थान नये धर्मों ने ले लिया है और यदि कुछ काल पहले बुद्ध, महावीर, शंकराचार्य, नानक और दयानन्द ने मानव-जाति के सामने अपने दृष्टिकोण को विशुद्ध सामाजिक और धार्मिक आन्दोलनों के रूप में पेश किए तो आज के युग में उक्त तीनों पुरुषों ने अपने सिद्धान्त विशुद्ध राजनैतिक ढङ्ग पर हमारे सामने पेश किये हैं। इन तीन विचार-धाराओं के अतिरिक्त कुछ अन्य विचार-धारायें भी संसार में अपना प्रभाव धीरे-धीरे जमा रही हैं, लेकिन अरविन्द को छोड़कर

किसी के अनुयाइयों की संख्या उल्लेखनीय ढङ्ग पर ठोस नहीं है।

लेकिन, मैं ऐसा समझता हूँ कि मानव-जाति के लिये जिस स्थायी सुख-शान्ति की तलाश में उपरोक्त नेताओं ने अपने-अपने मन्तव्यों का घनघोर प्रचार संसार के भिन्न भिन्न कोनों में कर दिया है, उसमें उन्हें सम्पूर्ण सफलता नहीं मिल सकती। भले ही अपने-अपने क्षेत्र में उन्हें अस्थायी और आंशिक सफलता मिल जाये; लेकिन मानव-जाति की समस्याओं का हल कोई छोटी-मोटी चीज़ नहीं है। इसके लिये तो बहुत गहरे सोच-विचार और अत्यन्त उत्कृष्ट कार्य-पद्धति की आवश्यकता है और ज़रूरत है कि संसार की कुछ प्रबल शक्तियाँ संसार के समस्त सिद्धान्त-रत्नों को एक लड़ी में पिरो दें। हम देख रहे हैं कि उपरोक्त तीन युग-निर्माताओं के जीवन-काल में ही, सम्भवतः मानव-जाति के बुद्धि-वार्धक्य के कारण, उनका घोर विरोध हो रहा है। हम यह भी देख रहे हैं कि तीनों युग-निर्माताओं के निजी विचार चाहे कुछ भी हों, उनके अनुयाइयों की मनोवृत्ति का विकास संसार के अन्य व्यक्तियों के प्रति शुद्धतापूर्ण नहीं है। जब इन युग-निर्माताओं के जीवन-काल में ही उनके प्रोग्राम पर इस प्रकार की प्रतिक्रिया हो रही है, तो उनके बाद उनके शिष्य उनके आदर्शों का किस हद तक दुरुपयोग करेंगे, इसे कौन जानता है? इसलिये मेरी तुच्छ सम्मति में, वास्तविक ज़रूरत यह नहीं कि प्राचीन धर्मों के स्थान पर नवीन धर्मों की स्थापना की जाय, बल्कि आवश्यकता है कि संसार-भर के प्रत्येक धर्म के निर्मल और सत्य सिद्धान्तों को सामने रखकर ऐसी डोर में उन्हें पिरो लिया जाय, जो बारीक-से-बारीक दाने के छेद से भी सुगमता-पूर्वक गुज़र सके।

मानव-धर्म के सिद्धान्त

१—मैं मनुष्य हूँ।

२—मैं स्वतन्त्र हूँ।

३—मैं एक महान् जाति का सदस्य हूँ।

४—मेरे संकल्प सदा महान् होते हैं।

५—मैं किसी से अनुचित लाभ नहीं उठाता।

६—मुझसे कोई अनुचित लाभ नहीं उठाता।

७—मैं अपने प्रति अपना कर्तव्य पालन करता हूँ।

८—मैं मन, वचन कर्म से मनुष्य-जाति की सेवा करना चाहता हूँ।

९—मैं मद्य को अपेय मानता हूँ।

१०—मैं मनुष्य हूँ।

यह वह दस वाक्य हैं, जो मैंने एक लम्बी मुद्दत के सोच-विचार के संसार के मनुष्य-मात्र के लिए ग्राह्य समझे हैं। अभी तो मेरा आन्दोलन आरम्भ भी तो नहीं हुआ है, लेकिन उसके बाका-यदा आरम्भ होने से पहले इन दसो सिद्धान्तों का विवेचनात्मक विस्तार तथा प्रत्येक सिद्धान्त का गूढ अभिप्राय पृथक्-पृथक् पुस्तिकाओं के रूप में लिपिबद्ध करने का विचार है। मैं इन पुस्तिकाओं में यह सिद्ध कर सकूँगा कि इन दस मूल-सिद्धान्तो में संसार के समस्त धर्मों की शिक्षा का तमाम सार आ जाता है। फ़िलहाल मैं इन तत्वों का संक्षिप्त सार यहाँ बयान करने की चेष्टा करूँगा और किस प्रकार उनका प्रचार संसार-भर में कराने की मेरी योजना है तथा किस प्रकार इस योजना में हमारे सिनेमा-व्यवसायी सहायक हो सकते हैं, उसका वर्णन् करूँगा।

यह सत्य भली प्रकार सिद्ध हो चुका है कि संसार के प्रत्येक पदार्थ के कम-से-कम दो भाग हैं;—एक जड़ और दूसरा चेतन।

इस चेतन को जीव या प्राण का नाम भी दिया जा सकता है। जो आधुनिक विज्ञान-वेत्ता परमाणु को 'इलेक्ट्रॉन' में परिवर्तित कर, शुद्धि शक्ति का रूप दे चुके हैं, उन्हें इस बात का गर्व है कि उन्हें यह सिद्ध करने में सफलता मिली है कि विशुद्ध शक्ति ही परिमाणु का रूप धारण करती है और परमाणुओं से बनकर ही सृष्टि की रचना हुई है। लेकिन जो व्यक्ति या जो सिद्धान्त विशुद्ध शक्ति को को भी जड़ मनता है, उसका प्रश्न यह है कि साधारण बिजली की शक्ति और मनुष्य, पशु, पत्ती, कीट, पतङ्ग, पेड-पौदे-आदि में व्यक्त शक्ति में कुछ भेद पैदा करनेवाला प्राण कहाँ से आया? किस अज्ञात शक्ति और विभूति के बल पर प्राण की सहायता से हम जीते हैं, बढ़ते हैं और समय आने पर मर जाते हैं? मेरी बुद्धि तो बहुत क्षुद्र है और मेरा अध्ययन भी बहुत सीमित, लेकिन मैं उन हठ-धर्मी विज्ञान-वेत्ताओं की समझ पर हैरान हूँ, जो शक्ति के साथ प्राण के मेल को एक आकस्मिक घटना मानते हैं। क्या आकस्मिक घटना इस प्रकार के नियम और क़ायदे के अनुकूल अनन्त काल से आरम्भ होकर अनन्तकाल तक जारी रहने की क्षमता रखती है? वृक्षों की हरियाली में, केंचुएँ के रेंगने में, चीटी के पुरुषार्थ में, पशु-पक्षियों की कर्तव्य-शक्ति में, और मानव के विवेक-अविवेक में क्या हमें किसी अद्‌भुत और विचित्र महाशक्ति के दर्शन नहीं होते? और जिस मानव-बुद्धि के विकास पर हम आज इस क़द्र इतरा रहे हैं, क्या वह बुद्धि केवल प्रकृति की भोंडी और निर्जीव नक़ल-मात्र ही नहीं है? जितनी विचित्र मैशीनें बनी हैं, क्या उनका सिद्धान्त मनुष्य-शरीर की मैशीनरी के आधार पर ही स्थिर नहीं किया गया है? इञ्जीनियरिङ्ग के बड़े-से-बड़े क़ायदे क्या प्रकृति के अनन्त काल पहले बनाये गये कायदों से ही सीख-कर नही बनाये गये हैं? पम्प-द्वारा बड़े-बड़े नगरों में पानी पहुँ- -

चाने की प्रणाली यद्यपि कुछ शताब्दियों पूर्व ही अमल में आई है, लेकिन क्या हम यह नहीं देखते कि उच्च पर्वत-शृङ्गों पर जमे हुए हिम के भण्डारों (Reserve's) के फल-स्वरूप जो नदियाँ संसार-भर के मैदानों को सींचती हैं, वह इस सिद्धान्त का श्रीगणेश सृष्टि के आरम्भ के साथ-ही-साथ कर चुकी हैं ? गैसों और भाप के जितने सिद्धान्त आज की साइंस में हमें देखने को मिलते हैं, उन सब के प्रयोग हर घड़ी, हर क्षण हमारे नित्य-नैमित्तिक जीवन में अनन्त विस्तार और परिमाण में सदा होते रहते हैं। रेडियो, टेलिविज़न और टेलीपैथी की कल्पना क्या स्वयं हमारे मन और मस्तिष्क की दौड़ के आधार पर ही नहीं की गई है ? आज हम हवाई जहाज़ और सामुद्रिक जहाज़ों के निर्माण पर इतराते हैं, लेकिन प्रकृति की उस लीला के प्रति नत-मस्तक नहीं होते, जिसने परों के दो पङ्ख लगाकर निरीह पक्षी को स्वतन्त्रतापूर्वक आकाश विचरण की सिद्धि प्रदान करदी, जिसने फेफड़े का रूप बदलकर मगर-मछलियों को जीवन-भर पानी में रहने और तैरने की सुविधा प्रदान कर दी और इन पक्षियों और जलचरों को न कोयले की ज़रूरत है, न पेट्रोल की, न चालकों की और न लोहे-फ़ौलाद के ज़रह-बख्तरों की !

अतएव, मेरा ऐसा विश्वास हो गया है, मनुष्य अपनी जिस बुद्धि पर जिस क़दर अहङ्कार करता है, प्रकृति के लीलामयी साम्राज्य में उसका कोई महत्व नहीं है। यह तो प्रकृति हमें एक तरह की रिआयत देती है कि हम अपने समक्ष फैले हुए अनन्त ब्रह्माण्ड का आँख खोलकर निरीक्षण करें और अपने उचित कर्तव्याकर्तव्य का निश्चय करके इस माया से मुक्त होकर अक्षय सुख की प्राप्ति का उद्योग करें। केवल मनुष्य की योनि में ही प्राणी इस भव-सागर से पार होने का उद्योग कर सकता है और जब संसार के प्राणी शराब

पीना छोड़ देंगे तो वह समझ लेंगे कि उनकी योनि में बुद्धि-नाम की वस्तु का अर्थ विवेक है; अविवेक नहीं। बुद्धि केवल सत्य और असत्य की जाँच करने की कसौटी है। ज़रूरत है कि इस कसौटी को पवित्र रखकर हम अपने जीवन के सिद्धान्त स्थिर करें और तभी इस यत्न के फल-स्वरूप हम इस निश्चय पर पहुँच सकेंगे कि मानव-जीवन भी प्रकृति के अनन्त चक्र में एक स्थल-विशेष (Stage) ही है। अलबत, इस स्थल से प्राण ऊपर भी उठ सकता है और नीचे भी जा सकता है। बुद्धि तो हमारे पास एक थाती के रूप में है, जिसका हमें सदुपयोग ही करना चाहिए; दुरुपयोग नहीं। अधिक स्पष्टतापूर्वक यह बात इस प्रकार कही जा सकती है कि यदि कोई आदमी तार-घर में इस 'ड्यूटी' पर लगा हुआ है कि वह स्थान-स्थान से आये हुए तारो का शुद्ध अनुवाद करके अभीष्ट पतों पर रवाना करता जाय तो उसका कर्तव्य केवल यही है कि वह उन समस्त तारों को उसके पानेवालों के पास तुरन्त भेजता चला जाय, जो उसकी गवर्नमेंण्ट के क़ानून के विरुद्ध न हों। लेकिन यदि वह आदमी उन तारों के आधार पर, उनके पानेवालो के भेद जानकर अपने निजी स्वार्थ में रत हो जाय तो भेद खुलने पर वह दण्ड का भागी होगा। इसी प्रकार बुद्धि-नामक अपने अधिकार का दुरुपयोग करके मनुष्य ने अपने को माया के निकृष्ट जाल में फँसाना आरम्भ कर दिया है और हज़ारों वर्ष से ऐसा करते-करते उसकी आत्मा इस क़दर दूषित हो चुकी है कि इस आदत का सोलह-आने छोड़ सकना उसके लिए असम्भव है।

हो क्या सकता है ?

मेरा ऐसा विश्वास होता जाता है कि बुद्धि-नामक अलभ्य पदार्थ का दुरुपयोग करने का जो चस्का मनुष्य को लग गया है, उसका सर्वथा त्याग कर सकना मनुष्य के लिए तब तक असम्भव

है, जब तक महाप्रलय होकर मानव का नये सिरे से विकास न हो जाय। निस्सन्देह, यदि मानव-जाति के बीच से शराब का अस्तित्व लुप्त हो जाय, तो इतना लाभ अवश्य हो सकता है कि जीवन की वास्तविकता और उसके साथ उसके सम्बन्ध का ठीक-ठीक ज्ञान हो जाएगा। यद्यपि, इस ज्ञान के बावजूद भी मानव-जाति की दुर्बलतायें उसे एक प्राचीन आदर्श-आर्य का जीवन बिताने लायक़ बल प्रदान न होने देंगी, लेकिन कम-से-कम मनुष्य के प्रत्येक कार्य में विवेक-भाव अग्रणी रहेगा। उदाहरण के लिए मैं अब और तब के शिक्षित मनुष्य-समाज के स्वभाव की रूप-रेखा यहाँ देता हूँ। चूँकि सदा-सर्वदा से शिक्षित और चतुर मनुष्यों ने ही अपने-अपने क्षेत्रों के मनुष्य-समूहों का नेतृत्व किया है, और अधिकांश में आज-कल शिक्षित समाज ही शराब पीकर शेष मानव-जाति को गुमराह कर रहा है, इसलिए शिक्षित समाज की विचार-धारा का ही वर्णन करना उचित है।

आज का शिक्षित मनुष्य (जो शराब पीता है)

१—ईश्वर-नामक कोई तत्व कहीं नहीं है। अगर है भी, तो मुझे इसकी चिन्ता नहीं; क्योंकि वह मुझे प्रत्यक्ष दिखाई नहीं देता।

२—मनुष्य दुनियाँ के अन्य समस्त जीवों का राजा है। वह जीते-जी सुखी होने और दूसरे जीवों पर राज्य करने के लिए बना है।

३—प्रत्येक मनुष्य अपने लिए ख़ुद ज़िम्मेदार है, वह अपाहिज लोगों पर दया कर सकता है, लेकिन ग़रीबों और ग़ुलामों पर तब तक राज्य करने का अधिकारी है, जब तक वे ग़रीब और ग़ुलाम ख़ुद योग्य बनकर अपना राज्य-शासन स्वयं सँभाल लें।

४—काम-वासना स्वयं प्रकृति की देन है और मैं उसे नफ़रत

की चीज़ नहीं समझता। विवाह-बन्धन केवल सामाजिक सुविधा की चीज़ है। वास्तव में प्रत्येक ऐसे पुरुष को, प्रत्येक ऐसी स्त्री से विषय-भोग करने का अधिकार है, जो पारस्परिक आसक्ति से आकृष्ट हुए हों। चूँकि समाज में प्राचीन विचार-धारा का अभी तक अनेक अंशों में बोल-बाला है, इसलिए यह सम्बन्ध जहाँ तक बनें, गुप्त रूप से होने चाहियें।

५—मनुष्य का अधिकार है कि पार्थिव वस्तुओं का अधिक-से-अधिक उपयोग अपने सुखोपभोग में करे और इन पार्थिव वस्तुओं की प्राप्ति के लिए अधिक-से-अधिक यत्न करे।

६—प्रकृति का नियम है कि अधिक बलवान् प्राणी न्यून बलवान् प्राणी का हनन करता है। इसी प्रकार बलवान् मनुष्य दुर्बल मनुष्य का शोषण करने का अधिकारी है। नाबालिग़ और डॉक्टरी जाँच के अनुसार पागल व्यक्ति का व्यावसायिक शोषण ग़ैरकानूनी है और इसलिए पाप है।

७—बुद्धिमान् और शक्तिशाली व्यक्ति का कर्तव्य है कि वह बुद्धिहीन और शक्तिविहीन व्यक्तियों पर शासन करे, उन्हें बन्धन में बाँधकर रखे, उनकी 'जायज़' शिकायतों को दूर करे, उन्हें अपनी सीमितता से बाहर न जाने दे। उन्हे कानून-भङ्ग करने पर दण्डित करे और उन्हें धार्मिक स्वतन्त्रता उस हद तक दे, जिस हद तक उसकी धार्मिकता के सिद्धान्त राज्य-शासन में गड़बड़ डालनेवाले सिद्ध न हो। इत्यादि-इत्यादि।

भविष्य का शिक्षित मनुष्य (जो शराब नहीं पियेगा)

१—ईश्वर है। उसी की न समझी जानेवाली लीला के कारण सृष्टि अस्तित्व में आई। इस सृष्टि में सुख भी है, दुःख भी है। जिसे यह सृष्टि सुखमयी जान पडे, वह इससे मुक्त होने का उद्योग

करे। स्थायी सुख की प्राप्ति के लिये कुछ धार्मिक सिद्धान्तो का पालन करना आवश्यक है।

२—मनुष्य, सृष्टि की सब से उत्कृष्ट विभूति है। सृष्टि के अन्य सभी प्राणियो से वह सब से अधिक स्वतन्त्र है। लेकिन उसकी कुछ सीमितताएँ भी हैं। उसके शारीरिक अवयव इन सीमितताओ के प्रतीक हैं। केवल उसकी आत्मिक शक्ति असीम है। उसे प्रकृति का संकेत समझकर शारीरिक सीमितताओं को कृत्रिम उपायों-द्वारा असीमता की ओर न ले जाकर आत्मिक असीमता - प्राप्ति का ही उद्योग करते रहना चाहिये।

३—मनुष्य इस अनन्त ब्रह्माण्ड का एक नगण्य परमाणु-मात्र है और उसका उत्तरदायित्व अखिल-ब्रह्माण्ड के प्रति है, परन्तु कलियुग मे मनुष्य को सब से प्रथम अपने प्रति अपना कर्तव्य तो अवश्य ही पालन करना चाहिये। इस कर्तव्य-पालन के लिये संसार के दूसरे व्यक्तियो को सदा उचित लाभ पहुँचाने तथा उनसे उचित लाभ उठाने की प्रवृत्ति रखनी चाहिये। 'अपने' से मतलब स्वयं अपना शरीर तथा अपने कुटुम्बी तथा आश्रित - जन हैं और 'उचित' से अभिप्राय ऐसे लाभ से है, जिसमें दोनो पक्षों में से किसी को खेद न हो।*

४—निस्सन्देह काम-वासना प्राणि-मात्र की एक कभी पृथक् न होनेवाली वासना (Impulse) है. किन्तु जहाँ योगीजन इस ओर ऐसी अन्य वासनाओं पर सर्वथा विजय प्राप्त करते हैं, वहाँ साधारण व्यक्ति उस सीमा में बंधे रखना ही अपने भविष्य के लिये आवश्यक मानते हैं। पशुओं की बात तो छोड़ ही दें, मनुष्यों में

* 'दस महानियम'-नामक ग्रन्थ में मै इन समस्त सिद्धान्तों की व्याख्या करूँगा। —लेखक

भी काम-वासना उस समय तक अनिवार्य रूप से बनी रहेगी, जब तक कि यह योग की बहुत ऊँची अवस्था तक न पहुँच जायेगा, इसलिये उसे बन्धन में रखने का एक-मात्र यही उपाय है कि मनुष्य एकपत्नी-व्रती रहे। पर-स्त्री के प्रति मनुष्य को उदासीन-वृत्ति धारण रखनी चाहिए और सदा यही उद्योग करना चाहिये कि उसका गार्हस्थ्य-जीवन अधिक-से-अधिक सुखी रहे, जिससे उसकी इस वासना को अधिक-से-अधिक तृप्ति मिलती रहे। ऐसे समस्त कार्यों से बचना चाहिये, जिससे उसकी काम-वृत्ति में विकार उत्पन्न हो सकता है।

५—मनुष्य के सामने उचित और अनुचित, खाद्य और अखाद्य—सभी तरह के पदार्थों का ढेर मौजूद है। उसका कर्तव्य है कि वह विवेक-बुद्धि से काम ले और अनुचित का त्याग करके उचित को ग्रहण करे। जो मनुष्य मद्य का सर्वथा त्यागी है, उसे उचित पदार्थों को अनुचित से पृथक् करने में दिक्कत नहीं होगी। वास्तविक और स्थायी सुखोपयोग उचित पदार्थों के सेवन से ही प्राप्त होता है। स्थायी सुख वह है, जिसकी प्रतिक्रिया दुःख और दिक्कत का कारण न हो।

६—यदि मनुष्य जन्म से ही शराब से पृथक् रहेगा और उसे बचपन से ही उचित शिक्षा मिलेगी* तो उसकी औचित्य और अनौचित्य की व्याख्या परिमार्जित हो जावेगी और वह अपने लिए कानून भी नये तरह के निर्मित करेगा। उन क़ानूनो के अनुसार वह न केवल किसी भी प्राणी से कोई अनुचित लाभ न उठायेगा, बल्कि निरीह, निर्बल, सरल-चित्त या दुखी व्यक्तियों को सहायता देकर उचित व्यवहार करने के योग्य बनाएगा।

---

* 'मानव-धर्म की शिक्षा' नामक ग्रन्थ में इस शिक्षण-पद्धति का विस्तृत विवेचन किया जायेगा।—लेखक।

७—अधिक बुद्धिमान् और शक्तिशाली व्यक्ति को यदि शासन का अवसर मिलेगा, तो वह शासितों के दुःखों को अपने दुःख समझेगा, वह ग़रीब-अमीर को एक निगाह से देखेगा, वह मनुष्य-मात्र को मानव-धर्म का सन्देश देकर प्रेम और महानता का पाठ पढायेगा। यदि कोई बुद्धिमान् और शक्तिशाली पुरुष शासन-शक्ति का अधिकारी न होकर समाज के किसी अन्य क्षेत्र में प्रवेश करेगा, तो वहाँ भी उसके समस्त कार्य-क्रम में विवेक-बुद्धि ही सर्वोपरि कार्य करेगी।*

(मैंने जान-बूझकर वर्तमान काल के मनुष्य के प्रकरण में वर्तमान काल का प्रयोग किया है और भविष्य-काल के मनुष्य के लिए भविष्य-काल का।—लेखक)

इत्यादि-इत्यादि।

मानव-धर्म के दस मूल मन्त्र

उनके प्रचार और प्रभाव का विवरण

'अखिल विश्व की सुख-शान्ति के उपाय'-नामक ट्रैक्ट में मैं लिख चुका हूँ कि आगे चलकर मैं 'मानव-धर्म' के दस महा-नियमों का संक्षिप्त सार दूँगा तथा किस प्रकार ये सुगम नियम मानव-जाति को एक-सूत्र में आवद्ध करने में सहायक होंगे, इसका विवरण देते हुए उन तरीक़ों पर प्रकाश डालूँगा, जिनसे इन मन्त्रों का संसार-भर में प्रचार किया जा सकेगा। इस प्रकार वास्तव में इस विवरण को भी पहली पुस्तिका ('सुख-शान्ति के उपाय') का ही एक भाग समझना चाहिए; क्योंकि दसों महा-नियमों का

---

* 'मानव-धर्म' की योजना सफल होने पर संसार की जो अवस्था होगी, उसका वर्णन 'भविष्य'-नामक ग्रन्थ में किया जायेगा।

—लेखक।

विस्तारपूर्वक स्पष्टीकरण तो पृथक्-पृथक् ग्रन्थों में ही होगा। इन ग्रन्थों में, प्रत्येक नियम की परिभाषा के विस्तृत विवरण के पुष्टिकरण में संसार के समस्त धर्मों के मान्य ग्रन्थो के उद्धरण दिये जाएँगे तथा उनमें यह सिद्ध कर दिया जायेगा कि इन सीधे-साधे मन्त्रो में समस्त धर्मों के समस्त मूल सिद्धान्तों का समस्त सार निहित है। अपनी बुद्धि की सीमितता का मुझे भली प्रकार ज्ञान है कि उक्त ग्रन्थों के प्रणयन का कार्य आरम्भ करने के लिए मुझे इतना अधिक अध्ययन करना पड़े कि उनका प्रकाशन दीर्घ काल तक न हो सके। इसके अतिरिक्त नीति-उपदेश के अनुसार मनुष्य को यह समझना चाहिए कि मृत्यु सदा उसके सर के बाल पकडे हुए खडी है। ऐसी दशा में यह भी हो सकता है कि उन ग्रन्थो के सम्पूर्ण होने के पूर्व या मध्य में ही यह शरीर धराशायी होजाए, इसलिए मैंने उचित समझा कि अपन आन्दोलन का संक्षिप्त सार पूर्णतया प्रकाश में लाकर कम-से-कम मानव-जाति की भावनाओ के तार इस दिशा में छेड़ने का उद्योग तो करूँ, जिससे यदि मेरे अभाव में, कोई महा-पुरुष इस अल्पज्ञ की कल्पना का आभास पा लें, तो उसे आगे बढ़ाने की प्रेरणा पा सकें। यों मेरा यह परम विश्वास है कि इसी जीवन-काल में मैं न-केवल अपने आन्दोलन को किताबी सूरत दे दूँगा, बल्कि उसे सफलता के मार्ग पर अग्रसर भी कर सकूँगा और यदि इस जीवन में यह कार्य सम्पूर्ण न होगा, तो आगामी जीवन में फिर अपने अधूरे काम को पूरा करने में प्रवृत्त हो जाऊँ, यही मेरी अभिलाषा रहेगी।

× × ×

सब से पहले तो मैं यह स्पष्ट कर देना चाहता हूँ कि मानव-धर्म के सिद्धान्त किसी भी धर्म या सम्प्रदाय-विशेष की बपौती नहीं है। दूसरी बात यह है कि यद्यपि इस आन्दोलन का जन्म-

दाता मैं हूँ, तथापि मेरा श्रेय केवल उसकी योजना और रूप-रेखा तैयार करने तक ही सीमित है। न तो मैं कोई ऋषि-महात्मा हूँ और न कोई अवतार। मैं केवल एक अत्यन्त साधारण मनुष्य हूँ और मेरे साथ किसी भी साधारण मनुष्य की सारी दुर्बलताएँ लगी हुई हैं। कोई अधिक-से-अधिक प्रतिष्ठाजनक (Compliment-ary) विशेषण यदि मेरे लिए प्रयुक्त किया जा सकता है तो यह कि मैं एक 'विचारक' हूँ; यद्यपि यह विशेषण भी मैंने संकोच के साथ ही प्रयुक्त किया है; क्योंकि मैं तो क़रीब-क़रीब इस निश्चय पर पहुँच चुका हूँ कि दुनियाँ-भर के किसी भी ज्ञात महापुरुष, नेता, महा-पण्डित या विद्वान् को मैंने भीतर बैठकर केवल एक मनुष्य' ही पाया। उनका जो रूप हमारे सामने आता है, वह केवल प्रचार है। मुझे तो आज तक कोई भी ऐसा आदमी नहीं मिला, जो अपने अन्तर में वही सारी दुर्बलताएँ दबाये नहीं बैठा है, जो हमें एक बदनाम-से-बदनाम आदमी में मिलती हैं। काम, क्रोध और स्वार्थ, मेरी सम्मति में, कलयुगी आत्मा के कभी जुदा न हो सकने-वाले अंश हैं और जब मुझे यह पता चलता है कि अमुक नेता या पण्डित में तत्सम्बन्धी अमुक-अमुक दुर्बलताएँ हैं, तो मुझे न-केवल आश्चर्य नहीं होता बल्कि मैं उन दुर्बलताओं का आदर करता हूँ और कभी किसी मनुष्य के प्रति अपनी न्याय-बुद्धि को उसकी उक्त दुर्बलताओं के कारण विचलित नहीं होने देता। उदाहरण के लिए, जब कुछ मराठी पत्रों ने सुश्री प्रेमा कण्टक को लिखे गये गाँधीजी के पत्रों की आलोचना की तो मुझे उन समाचार-पत्रों के इस रवैये पर दुःख हुआ। इसी प्रकार जब किसी नेता के बारे में मैंने यह चर्चा निन्दा के रूप में सुनी कि उसका दैहिक सम्बन्ध अमुक स्त्री के साथ गुप्त रूप से चलता है तो मैंने इस समाचार में कोई अस्वाभाविकता नहीं देखी और नीचे जाकर जब किसी ने यह कहा

कि अमुक नेता बाज़ार की साधारण स्त्रियों को बुलाकर अपनी काम-लिप्सा की तृप्ति करते हैं, तब भी मुझे यह बात अनहोनी नहीं लगी। इसी प्रकार यदि कुछ नेता क्रोधावेश में कोई कुकर्म कर बैठते हैं या कोई नेता अपनी सेवा-भाव में कोई स्वार्थ रखते हैं, तो यह सारी बातें मेरे निकट कुछ महत्व नहीं रखतीं, जब तक कि नेताओं के उपरोक्त दोष केवल उनके व्यक्तिगत जीवन तक सीमित हों तथा जब तक इन दोषों के कारण उन्हें अपने साथियों के तथा अपने सिद्धान्तों के प्रति विश्वासघात नहीं करना पड़ता। यह हुई राजनैतिक क्षेत्र की बात।

आध्यात्मिक क्षेत्र मे मानव का सर्व-प्रथम लक्ष्य तीनो महा-दोषों पर विजय प्राप्त करना ही है। पिछली पुस्तिका में मैं लिख चुका हूँ कि कलियुग में इन तीनो दोषों पर सर्वथा विजय प्राप्त कर सकना असम्भव है; क्योंकि सर्वथा विजय का अर्थ मोक्ष है। लेकिन यत्न करने पर कुछ विरले व्यक्ति योग की अत्युच्च अवस्था में पहुँचकर इन दोषों पर बहुत हद तक क़ाबू अवश्य पा लेते हैं। इससे उन्हें मानव-जाति के नये विकास के समय मोक्ष प्राप्त होने में सहायता मिलेगी और इस बीच में स्वर्गों के अनुपम सुख मिलेंगे। लेकिन इस स्थिति को पहुँचनेवाले व्यक्ति भी उँगलियों पर गिने जाने लायक़ ही होगे और इसीलिए इन पूज्य पुरुषो की बात छोड़कर मैं उन दो अरब आदमियों की समस्या पर आता हूँ, जो पृथ्वी में और पृथ्वी के आकर्षणो में आसक्त हो गये हैं और जिनकी यह आसक्ति प्रलय काल तक मिट नहीं सकती है।

× ×

इस सिल्सिले मे एक और बात है, जिसे कह देना आवश्यक है। वह यह कि मानव-धर्म के सिद्धान्तो को भली प्रकार हृदयङ्गम कर लेना तथा उनके अनुकूल आचरण करने का उद्योग-मात्र ही

कलियुग में साधारण जन कर सकता है। जो व्यक्ति इन सिद्धान्तों को जितना अधिक आचरण में सफल बनाता जायेगा, उसके जीवन में उतना ही दिव्य-भाव प्रकट होता जायेगा और इन सिद्धान्तों का पालन करनेवाला आर्य, शैव, जैन, सिख, ईसाई, मुसलमान, बौद्ध, शाक्त, पारसी-आदि कोई भी धर्मावलम्बी अपने-अपने साम्प्रदायिक सिद्धान्तों को मानता हुआ अपने मार्ग से आगे बढ सकता है।

पहला मन्त्र

मैं मनुष्य हूँ

'मानव-धर्म' के मूल मन्त्रों की रचना-व्यवस्था से पाठकों ने यह तो समझ ही लिया होगा कि उनमें भावनाओं को प्रधान स्थान दिया गया है। मेरी राय में संकल्प मानव-जाति के उत्थान और पतन में बड़ा गम्भीर स्थान रखता है। प्रत्येक युग में संकल्प की इस महत्ता को स्वीकार किया गया है और जितने प्रकार की प्रार्थनाएँ, भिन्न-भिन्न मत-धर्मों में देखने को मिलती हैं, उन सब की आधार-शिला संकल्प ही है। मानव-धर्म के संकल्प प्राचीन प्रार्थनाओं और संकल्पों से कुछ भिन्न हैं। वह भिन्नता यह है कि प्राचीन धर्मों की प्रार्थनाएँ किसी अज्ञात शक्ति को लक्ष्य करके उद्गार के रूप में दिखाई देती हैं, लेकिन मानव-धर्म के संकल्प केवल अपने प्रति ही लक्षित हैं। मानव-धर्म के सिद्धान्तों में मनुष्य को देवत्व की ओर बढ़ने की व्यवस्था तो है, लेकिन प्रेरणा नहीं है। प्रेरणा इसलिये नहीं है कि दुनियाँ के दो अरब आदमियों में से शायद दस या बीस आदमी ही एक आयु (Generation) में वास्तविक देवत्व प्राप्त कर सकेंगे तथा उनकी तत्सम्बन्धी प्रगति के लिये मानव-धर्म के सिद्धान्तों में पर्याप्त धड़कन है। वास्तव में मानव-धर्म, मनुष्य की पशु-भाव से रक्षा करके, वर्त्तमानकालीन परिस्थितियों में भी, उसके

मनुष्यत्व को जागरूक रखकर जीवित रहने के का सन्देश देता है। यदि संसार के दो अरब मनुष्य अपने कार्यक्रम को देवत्व और पशुत्व की दो परस्पर-विरोधी धाराओं में दौड़ाने की जगह मनुष्यत्व के केन्द्र पर मिल सकें, तो भले ही हमें मृत्यु के पाश्चात् मोक्ष ही नहीं, स्वर्ग भी न मिल सके, लेकिन मनुष्यत्व का विकास होने पर हमें कम-से कम प्रति बार मनुष्य-योनि तो अवश्य ही मिलती रह सकती है।

मानव-धर्म कहता है कि मनुष्य को अपने मनुष्य होने का गौरव होना चाहिये। जिस संसार को बुद्ध, महावीर, चैतन्य या अन्य महा-पुरुषो ने दुख-ही-दुखों से भरा हुआ बताया है, मानव-धर्म उसे वैसा नही मानता है। यह संसार, जहाँ मानव का विकास हुआ और जहाँ मानव अरबों बरस से रहता आया है, सृष्टि का सब से महत्वपूर्ण खण्ड है। इस संसार में समस्त सृष्टि के समस्त लोकों के समस्त पदार्थों के नमूने मौजूद हैं और ऐसी ही पृथ्वी पर मानव की सृष्टि होती है। मानव, ब्रह्म और सृष्टि का उसी तरह प्रतिनिधित्व करता है, जिस तरह स्वयं वह पृथ्वी, जिस पर उनका निवास-स्थान है। मानव-प्राणी के अणु-अणु में समस्त ब्रह्माण्ड की प्रतिच्छाया दीख पड़ती है और मानव इस सृष्टि की सब से विचित्र विभूति है। 'सुख-शान्ति के उपाय' में मैंने एक स्थान पर लिखा है कि स्वर्ग हैं और स्वर्गों में इस लोक की अपेक्षा वातावरण अधिक सुखद, दिव्य और सौम्य है। मैंने यह भी लिखा है कि अधिक पुण्य करनेवाले प्राणी स्वर्गों में सुखों का उपभोग करने के लिए जाते हैं, लेकिन यह सुख कैदखाने में नज़रबन्द नवाब वाजिदअली शाह के आनन्द-जैसा ही है और अक्सर देवता लोग इस दीर्घकालीन सुख से ऊब-कर पुनः रंग-विरंगे विचित्र मानव-लोक में आने की इच्छा करने लगते हैं। इसलिए, शास्त्रों के अनुसार देवताओ की अपनी आयु-

समाप्ति के पश्चात् न तो मोक्ष ही मिल सकती है और न पशु-योनि; देवत्व से च्युत होकर उन्हें लाज़िमी तौर पर एक बार मनुष्य-योनि में आना पड़ता है। मेरा ऐसा भी विश्वास है कि इन देवताओं को अपने सूक्ष्म रूप में सदा मानव-लोक में आने की स्वाधीनता थी और स्वाधीनता है, लेकिन कलियुग में मानव-लोक और मानव-शरीर इस क़दर पतित अवस्था में पहुँच गये हैं कि देवताओं को या तो यहाँ आने की इच्छा नहीं होती और इच्छा होती भी होगी तो इस तरफ़ उनकी दिलचस्पी कुछ अधिक नहीं।

मैंने मानव-लोक और देव-लोक के जो वर्णन् ऊपर किये हैं, उन पर जो लोग श्रद्धापूर्वक विश्वास न कर सकेंगे, उनके सन्तोष के लिए मैं तर्कों-द्वारा अपने कथन की सत्यता प्रकट करूँगा; क्योंकि मानव-जाति का वर्तमान युग बुद्धि-युग है और बिना तर्क-द्वारा सिद्ध हुए कोई सिद्धान्त या कोई बात संसार के बुद्धिमान् लोग स्वीकार नहीं करते और चूँकि संसार के दो अरब प्राणियों का शासन कुछ सौ बुद्धिमान लोगों के हाथों में है, इसलिये जब तक इन बुद्धिमान् लोगों को इस कथन की सत्यता से प्रभावित न किया जा सकेगा, वे मानव-धर्म के सिद्धान्तों के प्रचार में सहायक न होंगे। अतएव, ऐसे समस्त व्यक्तियों को उस समय की प्रतीक्षा करनी होगी, जबकि मानव-धर्म के जिन मूल सिद्धान्तों की संक्षिप्त व्याख्या मैं यहाँ एक-एक परिच्छेद में कर रहा हूँ, उनके लिये पृथक्-पृथक् महाग्रन्थों का निर्माण करूँगा।

अस्तु, मानव-धर्म का पहला सिद्धान्त मनुष्य-मात्र को यह सिखाता है कि वह अपने-आपको मनुष्य समझे और मनुष्य होना महान् गौरव का कारण समझे, ब्रह्माण्ड में मनुष्य का कितना गौरव-पूर्ण स्थान है, इसका रहस्य जाने और मानव-जीवन को अधिक-से-अधिक मधुर और सुखी और दीर्घ बनाने की ओर प्रवृत्त हो, अखिल

मानव-जाति को एक जाति माने और प्रत्येक मनुष्य की दुर्बलताओं को अपनी दुर्बलताएँ समझकर उनका सम्मान करना सीखे, मानव-धर्म की भित्ति भ्रातृ-भाव का उच्च सिद्धान्त है और दुनियाँ-भर के मनुष्यों को एक मानना इस सिद्धान्त का वास्तविक लक्ष्य है।

लेकिन, भ्रातृ-भाव, एकता, संगठन-आदि की दुहाई देकर संसार की जो राजनैतिक, सामाजिक और धार्मिक संस्थाएँ इस दिशा में प्रयत्न कर रही हैं, उनकी भावनाएँ चाहे जितनी शुद्ध हों, उनकी कार्य-पद्धति का आधार ग़लत है। मेरा इन प्रयत्नों से यही मत-भेद रहा है और है कि उनमें मानव को मानव मानकर एकता का यत्न किया गया है, बल्कि मानव को या तो देवता मानकर अथवा देवता बनाने का यत्न करते हुए उपरोक्त उद्देश्य की पूर्ति का यत्न नहीं किया जा रहा है। यह ऐसा प्रयत्न है, जो अस्वाभाविक है और जिसे कभी सफलता मिल नहीं सकती है।

काम, क्रोध और स्वार्थ मानव-आत्मा के कभी पृथक् न हो सकनेवाले अंश बन गये हैं और हमें जो भी नई व्यवस्था संसार-भर के लिये रचनी चाहिये, उसमें आत्मा के इन तीन महादोषों पर से दृष्टि-विपर्यय नहीं करना होगा। यह सत्य तो निर्विवाद ही है कि संसार की समस्याओं के हल और मानव-जाति को एक सूत्र में आबद्ध करने के यत्न तभी सफल हो सकते हैं, जबकि इन यत्नों और इन हलों का आधार आत्मा हो, लेकिन इस आधार पर खड़ी की गई सिद्धान्तों की इमारत का निर्माण करने से पहले हमें यह देखना तो आवश्यक है ही कि यह आधार किस हद तक मज़बूत है तथा इस आधार में किन-किन तत्वों का किस-किस परिमाण में में प्रयोग हुआ है!

अतएव, मानव-धर्म के प्रथम सिद्धान्त से जिस संकल्प की ध्वनि का आभास मिलता है, उसका संक्षिप्त स्पष्टीकरण यह है—

१—मानव को अपनी जाति का गौरव है। वह सृष्टि का सब से उत्तम विकास है। बुरी और भली, दुःख और सुख, शीत और उष्ण—सभी प्रकार की परस्पर-विरोधी वस्तुओं और भावनाओं से उसका सम्बन्ध है और उसकी शक्तियाँ असीम हैं।

२—मानव-जाति को वह एक परिवार मानता है और समानता इस परिवार का सिद्धान्त है। समानता प्राप्त करने के लिये उसे उन्हीं दिशाओं में अपना विकास कराना तथा मानव-जाति के परिवार के अन्य सदस्यों के बराबर खड़े होना है, जिन दिशाओं में विकास करके अन्य लोग आगे बढ़ गये हैं और बढ़ रहे हैं।

३—उसका यह विश्वास है कि काम, क्रोध और स्वार्थ उसकी आत्मा के सदा साथ रहनेवाले अंग हैं, इसलिये इन तीनों विकारों को दबाये रखने के लिये उसे अपनी विचार-धारा में वीरत्व, देश-भक्ति, और अन्य उच्च भावनाओं (Impulses) की तेज़ बिजली दौड़ानी होगी, तथा अपनी कार्य-पद्धति को आत्मा के उपरोक्त दोषों को अनिवार्य-रूपेण सामने रखकर ही निर्मित करना होगा।

४—चूँकि कलियुग में मानव मोक्ष प्राप्त नहीं कर सकता और चूँकि देवत्व की निस्बत मनुष्यत्व को अधिक श्रेष्ठ समझता है, इसलिये प्रत्येक योनि में मनुष्य-शरीर प्राप्त करने तक ही मानव का लक्ष्य रहे, यही 'मानव-धर्म' की शिक्षाओं का सार है। 'मानव-धर्म' के दसों सिद्धान्त मनुष्य को इसी दिशा में प्रेरित करते हैं।

दूसरा मन्त्र

'मैं स्वतन्त्र हूँ'

मैंने बार-बार कहा है कि काम, क्रोध और स्वार्थ कलियुगी आत्मा के कभी जुदा न होनेवाले अंग बन गये हैं। बेशक, यह बात कहने में बड़ी निष्ठुर लगती है, लेकिन मनोविज्ञान-शास्त्री

डॉ० मुन्जे

जेल में एक पत्रकार को भेंट दे रहे हैं।
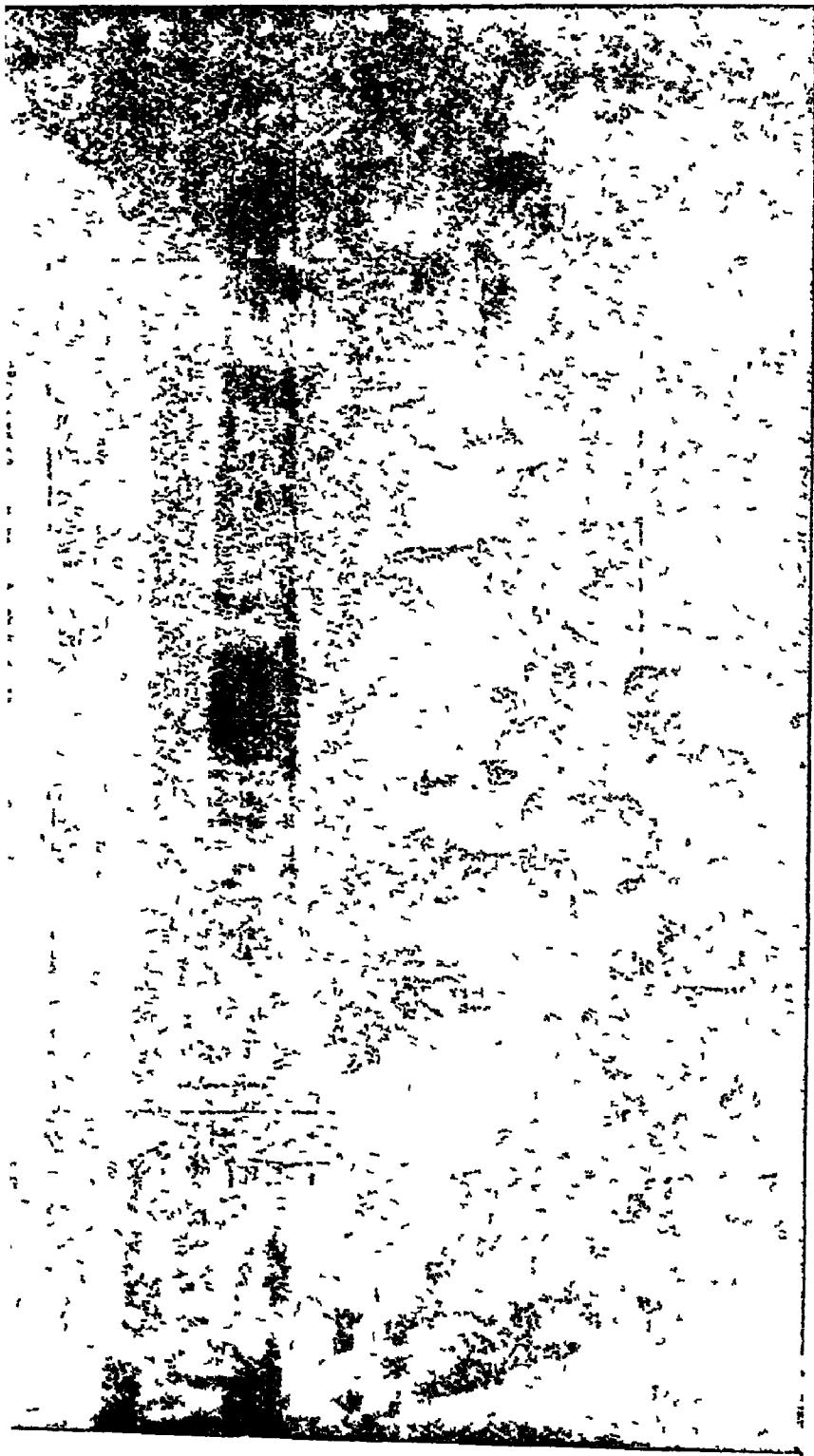
घुड़सवारों का प्रदर्शन (सत्याग्रहियों को घोड़ो की टाप से भयभीत करने का निष्फल प्रयत्न)

भागलपुर का मोर्चा
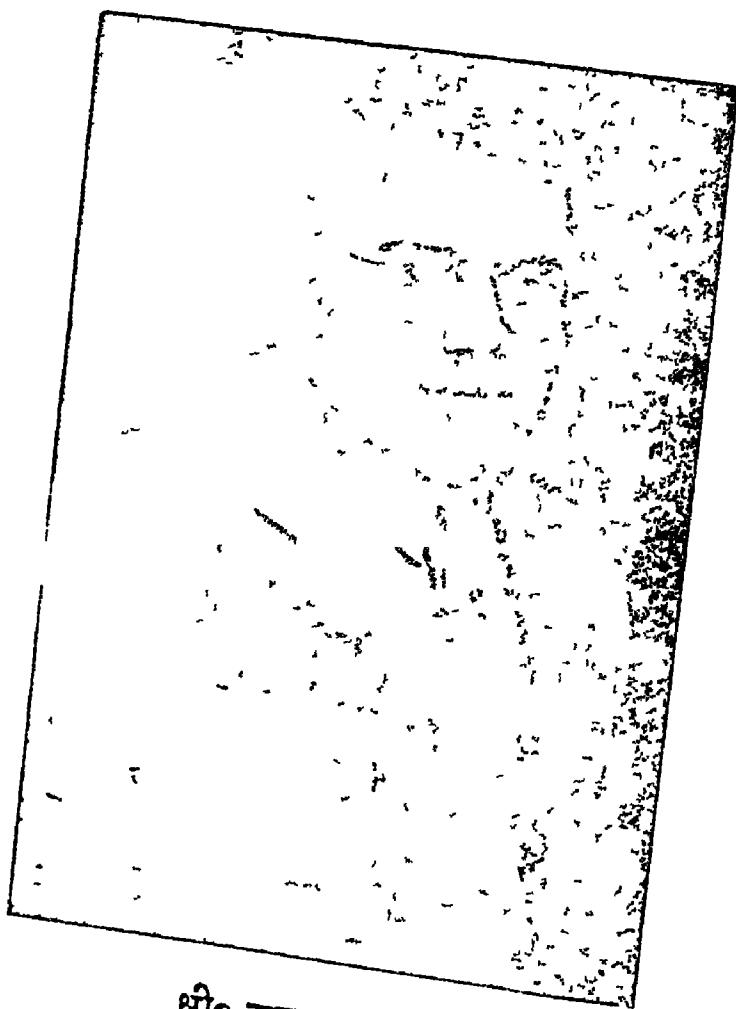
श्री० जयराम वर्मा
'बिहार के एक उत्साही कार्यकर्ता'

वास्तविकताओं का प्रकाश करने में उसी प्रकार निष्ठुरता से काम लेता है, जिस प्रकार कोई डॉक्टर या हकीम बीमारी का निदान करने में करता है। अलबत, डॉक्टर या सुधारक या क्रान्तिकारी का कर्तव्य है कि किसी भी प्रकार इस बीमारी का इलाज करे। मुझ अल्पज्ञ ने इसी भाव को लक्ष्य में रखकर और बरसो के अध्ययन और अन्वेषण और विचार के पश्चात् इस सत्य का पता लगाया है कि उक्त तीनों गन्दे तत्व कलियुगी आत्मा के साथ इस प्रकार घुल-मिल गये हैं कि प्रलय-काल तक आत्व तत्व से उनका पृथक्करण असम्भव है। यदि हम उनके पृथक्करण का उद्योग करें भी तो अव्वल तो हमें सफलता मिल नही सकती और यदि मिलेगी भी तो बहुत ही नगण्य और यह नगण्य सफलता भी ज़ाहिरा ही होगी, क्योकि वास्तव में यह गर्हित तत्व एक ओर से दबकर दूसरी ओर नासूर की तरह फूट पड़ेंगे तथा इस नगण्य सफलता के यत्न और उसकी आशा में हमारे अन्य मतावलम्बी तरह-तरह की यातनाओं के शिकार होते रहेंगे। अतएव, आवश्यकता है कि इन तत्वो की मौजूदगी में भी आत्मा में किसी ऐसे नए तत्व का प्रवेश कर दिया जाय, जिसके बल पर उपरोक्त तीनो विकारों का सदुपयोग किया जा सके।

'विकारों के सदुपयोग' की बात सुनकर बहुत-से पाठको को आश्चर्य हो सकता है। लेकिन मानव-धर्म का यह सिद्धान्त है कि मानव जिन दो पदार्थों (Substances) से मिलकर बना है, उनमें यद्यपि एक सूक्ष्म है और दूसरा स्थूल—एक दृश्यमान् (Visible) है और दूसरा अदृश्य (Invisible)—एक साकार है और दूसरा निराकार या अनन्ताकार—परन्तु इन दोनो के गुण (Qualities) एक ही है। 'सुख-शान्ति के उपाय' मे मैं लिख चुका हूँ कि जिस प्रकार इलायची के दाने, छिलके और पत्तों की

एक ही तासीर होती है, उसी प्रकार मनुष्य के शरीर, आत्मा और मन का स्वभाव भी एक-सा ही है। इसी प्रकार जो स्वभाव मनुष्य का है, वही सृष्टि के अन्य प्राणियों या पदार्थों—जैसे पशु-पक्षी, कीट-पतङ्ग और शाक-शब्जियों आदि का है; क्योंकि समस्त सृष्टि कुछ समान मूल तत्वों से ही निर्मित होकर बनी है। सम्भवतः पाठकों को यह ज्ञात होगा कि आधुनिक मानव-जाति में, प्रत्येक देश में ऐसे आदमी बहुत बडी संख्या में उत्पन्न होते हैं, जिनमें बुद्धिहीनता का विकार होता है। ऐसे लोगों को अध पगला (Cracks) कहा जाता है। सभी देशों में ऐसे आदमियों की सेनाओं के लिये बहुत माँग रहती है। बुद्धि-हीनता के दुर्गुण के साथ इन लोगों में उच्छृङ्खलता भी उत्पन्न हो जाती है; ठीक उसी तरह जिस तरह आज के शिक्षित मानव में काम, क्रोध और स्वार्थ के साथ भावुकता की प्रचुरता भी मिलती है। जिस प्रकार सैन्य-शास्त्री उक्त अधपगलों की उच्छृङ्खलता का उपयोग सेनाओं में करते हैं, उसी प्रकार आज के मानव की भावुकता का उपयोग उनमें 'स्वाधीनता' की भावना भरकर किया जा सकता है और जिस प्रकार अधपगले लोगों (Cracks) को धन का लोभ प्राणों का बलिदान करने की ओर अकृष्ट कर देता है, उसी प्रकार आज के अधिकांश मनुष्य—जो काम-क्रोध और स्वार्थमयी आत्मा के कारण प्रायः आत्मिक अधपगले (Spiritual cracks) ही हैं—'स्वाधीनता' के आकर्षण में पड़कर अपने आत्मिक विकारों और तज्जनित भावुकता का सदुपयोग कर सकते हैं। जो योगी हैं और यह दावा करते हैं कि उनकी आत्मा काम, क्रोध और स्वार्थ से रहित है—यद्यपि मैं ऐसा नहीं मानता और 'निष्कामता' के पाठ को आधुनिक मानव-जाति के लिये अग्राह्य और असम्भव समझता हूँ—उनके लिये तो हमारे आचार्यों ने पिछले हज़ारों बरस में

ग्रन्थ रचकर रख ही दिये हैं; तथा उन्हें 'मानव-धर्म' के सिद्धान्तो में भी अपना मार्ग स्पष्ट नज़र आजायेगा।

संसार के इतिहास में जितनी क्रान्तियों, जितने आन्दोलनों, जितने सङ्घर्षों और जितने सफल प्रयोगों का वर्णन् मिलता है, उनकी आधार-शिला या तो आध्यात्मिकता थी, अथवा स्वाधीनता-प्रेम। स्वाधीनता अन्याय के प्रतिकार की भावना का प्रतीक है और 'महाभारत-युद्ध' से इसका आरम्भ होकर, सिकन्दर, महमूद, नैपोलियन, क़ैसर, हिटलर के आक्रमणों और प्रतिकार की कथा तक हम पहुँच सके हैं। मुग़ल बादशाहो के साथ महाराणा प्रताप के युद्ध भी इसी भावना के प्रतीक हैं। इससे पहले के कालों के युद्ध आध्यात्मिकता के आधार पर हुए। राक्षश-वंश का नाश रामचन्द्र ने आध्यात्मिकता के आधार पर ही किया। इससे भी पहले मानव-जाति की अवस्था स्वस्थतम थी और युद्धों की आवश्यकता या तो अनुभव न हुई थी और हुई थी तो धर्म-युद्ध होते थे।

अतएव, मेरा यह परम विश्वास है कि कलियुग के प्राणी जिस अवस्था को पहुँच गये हैं, इस युग की समाप्ति तक उनका इसी अवस्था में बने रहना अनिवार्य है। कोई महात्मा, कोई धर्म-शास्त्र, कोई सिद्धान्त और कोई यत्न हमारी आत्मा को काम, क्रोध और स्वार्थ से रहित नहीं बना सकता। जो आचार्य, जो धर्मोपदेशक, जो पण्डित, जो विद्वान्, जो पण्डे-पुजारी या नेता यह कहते है कि वे ऐसा करने में सफल हो जाएँगे, मेरा उनसे नम्रतापूर्वक विरोध है। मेरी सम्मति में उनके उद्योगों का फल यह हो रहा है कि जहाँ-जहाँ उनके उपदेशों का प्रभाव हैं, वहाँ के मानव काहिल, सुस्त, नामर्द, बेवक़ूफ़ और कमीने बनते जा रहे हैं, उनके आत्मिक विकार उन्हें दुःख की ओर घसीटते जा रहे हैं, उनकी दशा दिन-पर-दिन गिरती जा रही है और न तो वे मोक्ष या स्वर्ग-प्राप्ति का कोई

उद्योग कर पा सकते हैं और न उन्हें इस लोक मे सुख-शान्ति नसीब हो रही है ।

इसीलिए, 'मानव-धर्म' कहता है कि मोक्ष और स्वर्ग को भूलकर इसी लोक में सुखी, समृद्ध, बलवान् और स्वस्थ बनो, दीर्घ-से-दीर्घ आयु प्राप्त करो, दीर्घायु प्राप्त करने के प्रत्येक साधन का उपयोग करो, सदाचार के उचित नियमों का पालन करो, स्वाभिमानी और स्वतन्त्र रहकर जीवन-यापन करो और प्रत्येक समय अपनी आत्मा में स्वतन्त्र रहकर ही जीने का सङ्कल्प दृढ़ करो । मानव-धर्म संसार के मनुष्य-मात्र को एक-ही जाति के सदस्य मानता है और प्रत्येक मनुष्य के स्वतन्त्र रह सकने का यही मार्ग समझता है कि वह अधिक-से-अधिक सदाचारी, बलवान् , मृत्यु से भय न खानेवाला, संयमी, अन्याय से न झुकनेवाला और सत्य-वादी बने, उसकी रग-रग में सदा स्वतन्त्रता की झनकार बहती रहे तथा प्रत्येक क्षण उसका यही सङ्कल्प रहे कि उसकी स्वतन्त्रता को अपहरण करनेवाली किसी भी ताकत से टकराने के लिये वह सदा तैयार है ।

अतएव, 'मानव-धर्म' के द्वितीय सिद्धान्त से जिस सङ्कल्प की ध्वनि का आभास मिलता है, उसका संक्षिप्त स्पष्टीकरण यह है:—

(१) प्रत्येक मानव अपने अस्तित्व की चरम सफलता दीर्घायु और स्वच्छ स्वास्थ्य में मानता है । इन दोनों विभूतियों की प्राप्ति के लिए चरम स्वतन्त्रता की आवश्यकता है । 'मानव-धर्म' मनुष्य को प्रेरित करता है कि वह अपने भीतर सदा परम स्वतन्त्रता का अनुभव करता रहे और इस स्वतन्त्रता मे बाधा देनेवाले वातावरण को या तो दूर कर दे या ख़ुद उस वातावरण हट जाय ।

(२) 'मानव-धर्म' की स्वतन्त्रता न तो 'अनार्किज़्म' है, न उच्छृङ्खलता । जब मानव मद्य का सर्वथा त्याग कर देगा और

'मानव-धर्म' की शिक्षाओं के अनुसार अपनी सीमितताओं के प्रति जागरूक रहेगा तो उसे न तो 'अनार्किस्ट' बनने की प्रेरणा होगी और न उच्छृङ्खल होने की।

(३) 'मानव-धर्म' पुकार-पुकारकर यह कहता है कि कलियुग का मानव आत्मिक दृष्टि से अधपगला है। बुद्धि के विकास की जिस गति-विधि पर पदार्थवादी इतराते हैं, उसे 'मानव-धर्म' विकास नहीं, ह्रास मानता है और विश्वास करता है कि जितना ह्रास हो गया, वह वापस नहीं आ सकता, इसलिए उचित है कि रहा-सहा सात्विक तत्व भी नष्ट न हो जाये।

(४) मानत-धर्म' कहता है कि दैवी सीमितताओं में रहकर प्रत्येक मनुष्य अपने-अपने भीतर स्वतन्त्र है। इन सीमितताओं का विकार उन देशों या जातियों में मिलता है, जिन पर अन्य जातियों का शासन है और इस दृष्टि से 'मानव-धर्म' किसी भी जाति या देश पर अन्य जाति या देश का अस्तित्व रहने की दशा में किसी प्राणी का उस देश या जाति में जन्म लेकर जीवित रहना अधर्म मानता है।

तीसरा मन्त्र

मैं एक महान् जाति का सदस्य हूँ

प्रायः सभी मुख्य धर्मों का ऐसा विश्वास है कि मानव कम-से-कम दो प्रधान तत्वों से मिलकर बना है। इनमें एक सत् है, दूसरा असत्; एक जीव है, दूसरा अजीव; एक सूक्ष्म है, दूसरा स्थूल। कोई इन दो तत्वों में से पहले को ईश्वर कहते हैं और उनके कथनानुसार यही ईश्वर समस्त ब्रह्माण्ड के समस्त कार्यों का सञ्चालन और पर्यवेक्षण करता है। 'मानव-धर्म' का कथन इस सम्बन्ध में क्या है, इसका सविस्तार वर्णन् मैं इसी विषय के ग्रंथ

में करूँगा और युक्तियों-द्वारा 'मानव-धर्म' के तत्सम्बन्धी मन्तव्यों को अकाट्य रूप से सिद्ध कर दूँगा। फिलहाल तो मुझे केवल यही कहना है कि इन दो प्रधान तत्वों के मिश्रण से ही ब्रह्माण्ड की रचना 'मानव-धर्म' भी मानता है। 'प्राण' या 'चेतना' या 'leife' को 'मानव-धर्म' जड़ पदार्थों के संयोग की आकस्मिक घटना नहीं मानता। बल्कि उसका मत यह है कि पुरुष या प्रकृति, जीव या अजीव, जड़ या चेतन वास्तव में एक ही तत्व के दो रूप हैं। 'मानव-धर्म' इस एक ही तत्व को अनादि मानता है, लेकिन दोनों ही तत्वों को अन्त-हीन स्वीकार करता है। 'मानव-धर्म' का सिद्धान्त है कि असत् का निष्कासन सत् से ही हुआ है अथवा जड़ का निष्कासन चेतन से ही हुआ है। चेतन-तत्व—जिसके लिये किसी नये शब्द की रचना इस समय जान-बूझकर नहीं की गई है, लेकिन जिसके लिये मेरी राय में, किसी भी धर्म-शास्त्र में व्यवहृत कोई भी शब्द उपयुक्त नहीं है—एक प्रकार का चैतन्य Ether है—यद्यपि Ether शब्द से जड़ता का बोध होता है और पाठक को इस विषय में भ्रम न हो, इसलिये कह देना उचित होगा कि यह चैतन्य Ether ज्ञानमयी, सुखमयी और अनन्त शक्तिमयी पदार्थ है। इस चैतन्य Ether में समस्त कल्पना-सम्मत सात्विक गुणों (Positve Qualities) का एकत्रीकरण है और तामसिक या राजसिक गुणों (Negative elments) का नाम-निशान भी नहीं है। इस तत्व के उपरोक्त समस्त गुण अपनी-अपनी चरमता में प्रत्येक अणु में प्रत्येक क्षण विद्यमान रहते हैं। अनुभव इस तत्व का प्राण है और इस अनन्ताकार-आच्छादित तत्व के अणु-अणु में पृथक्-पृथक् अनन्त सुख और आनन्द का अनुभव करने की शक्ति है। यह समस्त सात्विक गुण (Positive Qualities) अनन्त काल तक परस्पर सङ्घर्ष में आती रहीं और इस तत्व के कुछ

भाग में अहङ्कार-मिश्रित तत्व असंख्यों वर्षों के बाद हमारी सृष्टि अपने वर्तमान रूप को प्राप्त हुई।

जो सिद्धान्त मैंने ऊपर वर्णन् किया, उसके विस्तार और तर्क वितर्क में जाने का यह स्थान नहीं। इसलिये विस्तार को तत्सम्बन्धी ग्रन्थ के लिये छोड़कर मैं अब यह बताऊँगा कि मानव जो उपरोक्त महा-दुर्घटना के फल-स्वरूप विराट् सृष्टि के एक कण-सदृश स्थानो में उत्पन्न हो गया और सृष्टि के समस्त प्रकार के जीवों में जिसका सब से अधिक महत्वपूर्ण स्थान है—'मानव-धर्म' के तीसरे महा-मन्त्र-द्वारा किस सङ्कल्प का आभास दे।

निस्सन्देह, 'मानव-धर्म' का तीसरा मन्त्र अहङ्कार का प्रतीक है। जब अहङ्कार आत्मा का सब से महत्वपूर्ण साथी है, तो उसका प्रकटीकरण न होना अस्वाभाविक है और आध्यात्मिक अपथ्य भी। स्वाभिमान, गर्व, दर्प और गौरव, सभी अहङ्कार के भिन्न-भिन्न रूप हैं। मैं ऊपर कह चुका हूँ कि चैतन्य Ether की समस्त सात्विक प्रवृत्तियों (Qualities) के संघर्ष से ही अहङ्कार की उत्पत्ति हुई है और विशुद्ध अहङ्कार कलियुगी मानव के लिये एक आत्मिक शक्ति प्रदान करनेवाली औषधि (Tonic) है। हम लोग 'अहङ्कार' का ग़लत अर्थ लगाते हैं, अगर 'दम्भ' को अहङ्कार के अर्थों का प्रतीक मानते हैं। 'दम्भ' में तो अहङ्कार बहुत विकृत रूप में मिलता है। यों अहङ्कार का कुछ-न-कुछ मिश्रण हमारे मन की प्रत्येक भावना और तदनुकूल हमारे समस्त कार्यों में ही मिलता है। यहाँ तक कि लज्जा, भय, शोक, मोह, काम-आदि में ही अहङ्कार की परत साथ-साथ रहती है। क्रोध विकृत अहङ्कार का सब से पहला रूप है। विशुद्ध अहङ्कार एक प्रचण्ड धारा (Impulse) है; जिसकी दुर्धर्ष शक्ति के द्वारा आत्मा चैतन्य Ether से पृथक् होती है और मानव की स्थायी

सुख-शान्ति के लिये यह आवश्यक है कि जिस प्रकार लँगड़ा प्राणी ऊँची दीवार फाँदने के यत्न में अपना समय और अपनी शक्ति बर्बाद न करके चुपचाप अपनी जगह पर खड़ा होकर अपना कार्य-क्रम स्थिर करे तो उत्तम है, उसी प्रकार कलियुगी प्राणी श्रद्धापूर्वक, मानव-धर्म के इस सिद्धान्त में विश्वास करके कि मोक्ष-प्राप्ति की दीवार फाँदने की शक्ति उसकी काम, क्रोध और स्वार्थमयी लँगड़ी आत्मा में चूँकि नहीं है, इसलिये उसे अपनी वर्तमान स्थिति में गौरव का अनुभव करके प्रत्येक समय अपने मन, मस्तिष्क और शरीर की शक्ति को स्थिर, तेजोमयी और उत्फुल्ल रखकर जीवन-यापन करना चाहिये। इससे मानव की आत्मा का स्वास्थ्य ठीक रहेगा और स्वस्थ आत्मा सदा सुख का कारण होती है।

अतएव, 'मानव-धर्म' के तृतीय सिद्धान्त से जिस सङ्कल्प की ध्वनि निकलती है, उसका स्पष्टीकरण यह है—

(१) ब्रह्माण्ड में स्वर्ग के देवताओं से लेकर घिनौने नर्कों के कीड़ों तक प्राणियों की लाखों-करोड़ों जातियाँ हैं। इनमें देवताओं, मनुष्यों, गन्धर्वों, किन्नरों, यक्षों और राक्षसों की जातियाँ उन्नत और महान् हैं। इन उन्नत जातियों में से कौन-सी जाति सब से महान् है, यह प्रश्न विवादास्पद हो सकता है। इसलिये मनुष्य का यह निष्कलुष विश्वास है कि वह 'एक' महान् जाति का सदस्य है।

(२) इस मनुष्य-जाति के सदस्यों ने, जिनकी वर्तमान संख्या प्रायः दो अरब है—मद्य-पान की बुरी लत और धर्म के सत्य अर्थों के अज्ञान के कारण जो अनेक उप-जातियाँ बना ली हैं, उन्हें 'मानव-धर्म' व्यर्थ और अप्राकृतिक मानता है।

(३) अहङ्कार (क्रोध) मानव-आत्मा के साथ सदा-सर्वदा रहेगा, इसलिये मानव अपने अन्तरात्मा के इस अभिन्न साथी का

शुद्ध-से-शुद्ध रूप यही समझता है कि वह तीसरे मन्त्र को अधिक-से-अधिक बल के साथ अपने मन में सदा जागरूक रखे।

(४) मानव-धर्म कहता है कि किसी महान् जाति के सदस्य की पहचान यही है कि वह अपने निकट दिखाई देनेवाले अन्य प्राणियों से सदा ऊँचा उठकर रहे। जो मानव आज एक तरफ़ तो पशुओं, पक्षियों और जलचरों की नकल उतारने में ही अपनी जाति की महानता का ढोल पीटना चाहता है तथा दूसरी ओर उन्हीं पशु, पक्षियों और जलचरों के संयम, नियम, सन्तोष, एकता, सहनशीलता, परोपकार-आदि गुणों में नीचे गिर रहा है, उसे आत्मा की आँख खोलकर अपनी महानता का वास्तविक परिचय देना चाहिये।

चौथा मन्त्र

मेरे सङ्कल्प सदा महान् होते हैं

'मानव-धर्म'-सम्बन्धी लेखों से पाठकों को यह आभास तो मिल ही गया होगा कि तत्सम्बन्धी आन्दोलन का अभिप्राय किसी नये धर्म की स्थापना नहीं, बल्कि समस्त धर्मों के सिद्धान्तों के वास्तविक निचोड़ का यथार्थ एकीकरण ही है। यह बार-बार कहा ही जाचुका है कि धार्मिक एकीकरण के विना मानव-जाति केवल बौद्धिक, कथित राष्ट्रीय या शारीरिक एकीकरण के द्वारा कदापि एकता के सूत्र में आबद्ध नहीं की जा सकती। यह काम केवल अधिक एकीकरण के द्वारा ही हो सकता है। और धार्मिक एकीकरण के लिये यह आवश्यक है कि धार्मिक विभिन्नता की ज़ाहिरदारी के आधार पर जो तरह-तरह की विषमताएँ दुनियाँ के एक छोर से दूसरे छोर तक फैलकर घृणित द्वेष और क्रोध के करिश्मे दिखा रही हैं, वे दूर हो जायँ। लेखक का यह विश्वास

है कि प्राचीन हिन्दुत्व की आधार-शिला मनुष्यत्व को देवत्व में परिवर्तित करने की भावना थी और जो धार्मिक सिद्धान्त स्थिर किये गये, वे इसी आधार-शिला के अनुसार थे। इस यत्न में त्वरित सफलता भले ही मिली हो, लेकिन स्थायी सफलता न मिल सकती थी, न मिली; क्योंकि लेखक की राय में मानव का मोह एक प्राकृतिक नियम है और स्वाभाविक गति में बहते-बहते जिस प्रकार नदी-नालों का पानी समुद्र में जा पहुँचता है, उसी प्रकार स्वाभाविक गति में बहते-बहते आत्म भी किसी-न-किसी दिन ब्रह्म में मिल जाता है। अतएव, मानव की सीमितता केवल अपने प्रवाह की गति को स्वाभाविक रखना ही है और इसी में उसका चरम कल्याण है।

कहा जा सकता है कि 'मानव-धर्म' भिन्न-भिन्न धार्मिक सिद्धान्तों की प्रचलित व्याख्या को सैद्धान्तिक दृष्टि से भ्रामक, मानता है और इसी भ्रम के कारण उक्त विषमताओं का सृजन भी स्वीकार करता है। किस प्रकार यह भ्रम उत्पन्न हो गये और किस प्रकार उनसे उक्त विषमताओं की उत्पत्ति हुई, उनका सविस्तर वर्णन् तत्सम्बन्धी ग्रन्थ के लिये स्थगित करके मैं इस समय यह सिद्ध करने का प्रयत्न करता हूँ कि प्राचीन सिद्धान्तों को क्या नया रूप 'मानव-धर्म' देना चाहता है और क्यों ?

सभी धार्मिक सिद्धान्त 'सत्य' को सब से अधिक महत्व देते रहे हैं। 'सत्य' की व्याख्या भी सभी धर्मों की प्रायः समान है। मन, वचन, कर्म की अनुभूतियों का तदनुकूल स्पष्टीकरण ही 'सत्य' की प्रचलित व्याख्या है। लेकिन मानव-धर्म कहता है कि सिद्धान्त-रूपेण ऐसा कर सकना मानव की अहङ्कारमयी आत्मा के लिए असम्भव है। मनुष्य ही नहीं, देवता तक इस व्याख्या के अनुसार सत्य का आचरण नहीं कर सकते। निस्सन्देह शुद्ध ब्रह्म में

सत्य अपनी इसी व्याख्या के अनुसार विद्यमान है, लेकिन मानव-आत्मा से इस सत्य का पालन न तो कभी हुआ है, न हो सकता है और न कभी होगा। सभी मुख्य धर्मों के ग्रन्थ इस प्रकार के उदाहरणों से भरे पड़े हैं, जहाँ बड़े-से-बड़े महापुरुष इस व्याख्या के अनुसार सत्य का आचरण करने में असफल रहे। और चौथे मन्त्र पर लिखे जानेवाले ग्रन्थ में मैं यथासाध्य ऐसे समस्त अथवा अधिकांश उदाहरणों को पाठकों के ज्ञानार्थ उद्धृत करूँगा।

वास्तविक स्थिति यह है कि मानव ने सत्य का केवल उसी सीमा तक आचरण किया है, जिस सीमा तक उसका आत्म-गौरव अक्षुण्ण रह सका है। आत्म-गौरव के समक्ष सत्य को सदा गौण स्थान मिलता आया है, और मिलता रहेगा; क्योंकि मानव-जीवन के सफल सञ्चालन के लिये सत्य की निस्बत आत्म-गौरव अधिक अनिवार्य है। उदाहरण के लिये यदि सत्यवादी महाराज युधिष्ठिर 'अश्वत्थामा हतो नरोवा कुञ्जरोवा' न कहते तो निस्सन्देह द्रोणाचार्य के पराक्रम के समक्ष उनका आत्म-गौरव नष्ट होकर रहता।

अर्वाचीन विद्वानों के तत्सम्बन्धी मतों का उल्लेख करना भी विषय की सत्यता सिद्ध करने के लिये अप्रासङ्गिक न होगा। विस्तार-भय से मैं केवल कुछ उदाहरण देकर ही आगे बढ़ूँगा। ईसा मसीह का शिष्य पॉल कहता है—"यदि मेरे झूठ बोलने से प्रभु के सत्य की महिमा बढ़ती है तो मुझे इसका पाप नहीं लग सकता।" प्रकाण्ड नीति-शास्त्र-पण्डित मि० सिज़विक कहता है—"यद्यपि सच बोलना अच्छी बात है, लेकिन प्रत्येक अवस्था में सच बोलना असम्भव है। राजनीति और व्यापार में तो सत्य का आश्रय लेना असम्भव ही है; क्योंकि इन क्षेत्रों में सारी बातें गुप्त रखनी पड़ती हैं।" हमारे धर्म-शास्त्रों में भी ऐसे विचारों का प्राबल्य मिलता है। मनु का कथन है :—

न नर्मयुक्तं बचनं हिनस्ति न स्त्रीषु राजन्न विवाह काले
प्राणात्यये सर्वधनापहारे पञ्चानृत्यान्या हुर पातकानि ॥

अर्थात् परिहास में, स्त्रियों के साथ, विवाह के समय, प्राणों पर आ बनने के समय तथा धन-सम्पत्ति की रक्षा के लिये झूठ बोलना पाप नहीं है।

मेरा कहना यह है कि 'सिद्धान्त' शब्द का अर्थ है—किसी भी दशा में निर्णीत निष्कर्ष में अन्तर न होना। जैसे 'दो' और 'दो' मिलकर हमेशा 'चार' होते हैं और किसी भी काल में और किसी भी परिस्थिति में 'पाँच' या 'तीन' नही होते, इसी प्रकार सत्य के विषय में भी जो सिद्धान्त स्थिर कर दिया गया, यदि उसमें किसी प्रकार की लचक की गुञ्जायश है तो या तो वह सिद्धान्त ग़लत होना चाहिये और या उसकी व्याख्या ग़लत है। 'मानव-धर्म' कहता है कि 'सत्य' का न सिद्धान्त ही ग़लत है और न उसकी व्याख्या ही। उदाहरण के लिए, यद्यपि शुद्ध गेहूँ का आटा समस्त मानव-जाति के उपयोग में आता है, किन्तु संसार में शायद ही कोई ऐसा व्यक्ति होगा, जो गेहूँ के दानों को चबाकर नित्य अपनी क्षुधा शान्त करता हो। प्रत्येक देश व जाति की जल-वायु और परिपाटी के अनुसार मनुष्य इस गेहूँ को भिन्न-भिन्न रूपों में बदलकर प्रयुक्त करता है। इसीलिये मेरा कहना है कि कलियुगी मानव को 'सत्य' की प्राचीन प्रचलित व्याख्या के अनुसार आचरण करने की आवश्यता नहीं; बल्कि एक नई ही परिभाषा पर अपना चरित्र-निर्माण और जीवन-क्रम स्थिर करना चाहिए। और एक शब्द में इस नई व्याख्या को 'आत्म-गौरव' का नाम दिया जा सकता है तथा मानव-धर्म का चौथा मन्त्र इसी 'आत्म-गौरव' का बोध कराता है।

अतएव, 'मानव-धर्म' के चौथे मन्त्र से जिस ध्वनि का आभास मिलता है, उसका स्पष्टीकरण यह है:—

(१) निस्सन्देह 'सत्य' की जो व्याख्या भिन्न-भिन्न धर्मों ने की है, वही उचित और सही है, लेकिन उसी व्याख्या के सत्य का शुद्ध रूप केवल ब्रह्म में ही मिल सकता है; अहङ्कार-मिश्रत मानव-आत्मा में सत्य का केवल आंशिक और आनुपातिक रूप ही प्राप्त हो सकता है।

(२) जो चीज़ मानव-जीवन में साध्य नहीं है और जिसके प्राप्त होने की आशा में मानव-जीवन भटक सा गया है, उसके भ्रम जाल से मानव-जाति का तुरन्त उद्धार करने की आवश्यकता है और जिस चीज़ के अभाव में मानव-जाति का उत्थान कुण्ठित है, उसका प्रवेश आत्मा में, अपने अर्थों में किया जाना आवश्यकीय है। आत्म-गौरव ही वह तत्त्व है, जिसकी ज़रूरत हमारी आत्मा को है और 'मानव-धर्म' का चौथा मंत्र आत्मा को इसी गौरव का बोध कराता है।

(३) 'मानव-धर्म' का यह सिद्धान्त न तो नास्तिकता का प्रतीक है और मानव को गुमराह करनेवाला है। उसका अभिप्राय तो मानव-आत्मा को कड़वी दवाई की भाँति वास्तविकता से परिचित कराकर बलवान्, वीर्यवान् और प्रचण्ड बनना है।

पाँचवाँ मन्त्र

'मैं किसी से अनुचित लाभ नहीं उठाता।'

'सत्य' के अतिरिक्त 'अहिंसा' 'अस्तेय' 'ब्रह्मचर्य' और 'सन्तोष'-नामक चार महा-सिद्धान्त और हैं, जिन पर प्रायः सभी मुख्य धर्मों ने कम-अधिक ज़ोर दिया है। हिन्दुत्व तथा जैन-धर्म और बुद्ध-धर्म ने चारों को लगभग समान महत्व दिया है। यद्यपि प्रचार यह है कि जैन-धर्म और बौद्ध-धर्म केवल 'अहिंसा'-सिद्धान्त की नींव पर

ही खड़े हुए हैं, लेकिन मैं बौद्ध-धर्म और जैन-धर्म को हिन्दुत्व से पृथक् वस्तु नहीं मानता; न मैं ऐसा मानना बौद्धों और जैनियों के लिये कोई अपमान की बात मानता हूँ। मेरी राय में बौद्ध-धर्म और जैन-धर्म हिन्दुत्व के संन्यास-भाग हैं और एक बौद्ध अथवा जैन-धर्मावलम्बी की समस्त जीवन-चर्य संन्यास की तैयारी-मात्र है।*

विषयान्तर के भय से मैं असल विषय की ओर आता हूँ। मेरा अभिप्राय यह है कि कई हज़ार वर्ष पहले; जब भारतवर्ष में बौद्ध-धर्म और जैन-धर्म का प्रभुत्व बढ़ा, उससे पहले इस देश में यज्ञो-आदि के नाम पर घोर हिंसा को प्रश्रय मिला हुआ था, बकरे, घोड़े, मेंढ़े, भैंसे-आदि से लगाकर नर मेध तक की प्रथा हमारे देश में प्रचलित थी। उस समय जैन-धर्म के आचार्यों ने अपने 'अहिंसा'-सिद्धान्त का देश-भर में प्रचार किया, तथा उपरोक्त नाशकारी हिंसा से आर्यों को रोका। चूँकि उस समय देश में बौद्ध-धर्म और जैन-धर्म का प्रचार पाने का कारण 'अहिंसा'-तत्व ही था, इसलिये आज उपरोक्त अन्य मत दोनो धर्मावलम्बियो में अपने 'अहिंसा'-तत्व के कारण ही विशेषत. विख्यात हैं। लेकिन वास्तव में 'अहिसा' की भाँति 'सत्य', 'अस्तेय', 'सन्तोष' और 'ब्रह्मचर्य' को भी उपरोक्त धर्मों में एक-जैसा महत्व प्रदान किया गया है।

इस्लाम भी हिंसा का विरोधी है। वास्तव में जितनी हिसा मुसल्मान करते हैं, वह केवल 'अल्लाह' के नाम पर करते हैं और उनका विश्वास है कि इस हिंसा का पाप उन्हें नही लगता। ईसाइयत में हिंसा की कोई स्पष्ट आज्ञा नहीं है, लेकिन अपने

* मेरे तत्सम्बन्धी विस्तृत विचार 'कल्चरल फ़ेलोशिप सोसायटी' कानपुर में दिये गये 'जैन-धर्म पर मेरे विचार'-नामक भाषण में दिये गये हैं, जो अलग छपे हुए मेरे पास से मुफ़्त मिल सकते हैं।

प्राचीन धर्म-ग्रन्थों में वर्णित किंवदन्तियों और कथा-कहानियों के आधार पर ईसाइयों ने यह समझ लिया है कि पशुओं का मांस खाना पाप नहीं है। 'मानव-धर्म के मूल-मन्त्रों' के बारे में लिखे जानेवाले ग्रन्थो में मैं उन समस्त धर्म-शास्त्रो के उद्धरण देकर, जिनके अनुयायी हिंसा को धर्म-सम्मत मानते हैं, सिद्ध करूँगा कि उनका ऐसा समझना भूल है और जिन किंवदन्तियों और आयतों के आधार पर वे लोग एक लम्बी मुद्दत से धर्म की आड़ में निरपराध जीवो की हत्या करते रहे, वह अलङ्कारिक होने के कारण ही यह अनर्थ कराती रही।

'मानव-धर्म' कहता है कि जिस प्रकार ब्रह्माण्ड सत् और असत् केवल दो भागों में बँटा हुआ है, उसी प्रकार धर्म के भी केवल 'सत्य' और 'असत्य' केवल दो ही तत्व हैं। 'सत्य' का अर्थ 'आत्म-हनन' या 'आत्म-प्रवञ्चना' से युद्ध ठानने का यत्न-मात्र है और इन पंक्तियों के लेखक का ऐसा विश्वास है कि जिस प्रकार सत् में असत् सम्मिलित है, उसी प्रकार 'मानव-धर्म' के चौथे सिद्धान्त में पाँचवें का मिश्रण है। जिस प्रकार 'असत्य' के विरोध में अहिंसा, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और नियम-बद्धता सम्मिलित है, उसी प्रकार 'मानव-धर्म' का पाँचवाँ मन्त्र इन चारों महा-सिद्धान्तों का उस हद तक आभास देता है, जिस हद तक कलियुगी प्राणी को अपनी स्थायी सुख-शान्ति के लिये उनका ग्रहण करना आवश्यक है।

कलियुग में, मानव-आत्मा में जो प्रवृत्ति सब से विषैली, तीखी और कटु है, वह है—स्वार्थ। यह वृत्ति हम में इतनी गहरी घर कर गई है कि कालान्तर तक भी हम अपने-आपको स्वार्थ-रहित बना नहीं सकते हैं। इसी सिलसिले के लेखो में मैंने बार-बार यह कहा कि योग की अत्यन्त उच्च अवस्था में पहुँचकर मनुष्य

निस्स्वार्थता के बहुत निकट तक तो ज़रूर पहुँच जाता है, लेकिन स्वार्थ से सर्वथा रहित तो शायद मोक्ष के निकट पहुँचनेवाले सर्वज्ञ ही हो पाते हों। ऐसे पूज्य पुरुष कलियुग में उत्पन्न नहीं हो सकते और इसीलिये 'मानव-धर्म का यह सिद्धान्त है कि कलियुगी मानव अधिक-से-अधिक अपनी बुद्धि को इतना ही बन्धन में रख सकता है कि वह किसी भी प्राणी से, किसी भी दशा में, कैसा भी अनुचित लाभ न उठाके। 'मानव-धर्म' यह भी कहता है कि सृष्टि का प्रत्येक कण एक विराट् अनन्त का कभी जुदा न होनेवाला अंश है और प्रत्येक कण एक-दूसरे से पृथक् होते हुए एक समान तत्व की सहायता से एक-दूसरे के साथ जुड़ा हुआ है। अतएव, प्रत्येक कण एक-दूसरे के सहयोग पर निर्भर और अवि-लम्बित है और एक-दूसरे को उचित लाभ पहुँचाता है। प्रकृति के इसी सिद्धान्त के आधार पर 'मानव-धर्म' कहता है कि प्रत्येक मनुष्य का कर्तव्य है कि वह प्रत्येक मनुष्य को सदा उचित सह-योग और लाभ पहुँचाने के लिए तैयार रहे और ऐसा करने में अपना गौरव माने तथा मनुष्य के अन्तरात्मा मे सदा यह भाव झंकृत रहे कि किसी व्यक्ति से अनुचित लाभ उठाना अधर्म है, हिंसा है, चोरी है, नियम-विरुद्धता है।

संक्षेप में मानव-धर्म के पाँचवें मूल-मन्त्र से जिस अभिप्राय की ध्वनि निकलती है, उसका स्पष्टीकरण यह है:—

(१) धर्म का अर्थ सत्य और अधर्म का असत्य है, सत्य का अर्थ औचित्य और असत्य का अनौचित्य है।

(२) समस्त ब्रह्माण्ड की रचना सत् और असत् दो ही तत्वों से हुई है। सत् को प्राप्त करने के लिये प्राण को अनौचित्य से बचकर औचित्य का आश्रय ग्रहण करना चाहिए।

(३) ब्रह्माण्ड का प्रत्येक परमाणु एक-दूसरे के सहयोग पर

अविलम्बित है, इसलिये मानव का धर्म है कि वह सदा अन्य प्राणियों को उचित सीमा तक लाभ पहुँचाने के लिए तैयार रहे।

(४) चौथा मूल-मन्त्र यदि मानव-बुद्धि में आत्म-गौरव की चिनगारी सुलगाता है तो पाँचवाँ सिद्धान्त इस चिनगारी को सदा जाज्वल्यमान् रखता है।

छठा मन्त्र

'मुझसे कोई अनुचित लाभ नहीं उठाता।'

यह कई बार कहा जा चुका है कि 'मानव-धर्म' का चरम-लक्ष्य मानव-जाति की भावनाओं को पवित्र, महान्, निष्कलुष, स्वच्छ, गौरव-शाली और प्रचण्ड बनाना है। अब तक के समस्त मन्त्रों में जिस दृष्टिकोण को सामने रखा गया है, उसका अभिप्राय मनुष्य की विचार-धारा को इसी ओर प्रवाहित करता है। छठा मन्त्र मानव-भावनाओं में औदार्य का प्रवेश कराता है। इस मन्त्र को आंशिक रूप में ग्रहण कर सकनेवाला व्यक्ति भी स्वयं अपने लिये तथा सम्पर्क में आनेवाले अन्य व्यक्तियों के लिये परम सुख और शान्ति का कारण बन सकता है।

जीवन में जितनी घटनायें होती हैं, जितने भाव प्रकट किये जाते हैं और जितने शब्दों का उच्चरण किया जाता है, उन सभी के कई प्रकार, कई दृष्टिकोण और कई पहलू होते हैं। आम तौर पर भिन्न-भिन्न मनोवृत्तियों और विचार-धाराओं के लोग अपने-अपने विचारों के अनुकूल इन कार्यों, वचनों और विचारों का अर्थ लगा लेते हैं। उदाहरण के लिये, यदि वॉयसरॉय ने ,भारतवर्ष की गायों की नस्ल सुधारने को अपना तत्सम्बन्धी आन्दोलन जारी किया तो निम्न-लिखित प्रकार के जन-समुदायों ने इस क़दम के भिन्न-भिन्न अर्थ लगाये:—

(१) भारतीय योरोपियनों ने समझा कि वास्तव में इस देश की गायों के स्वास्थ्य ख़राब रहने के कारण दूध-दही उतना पौष्टिक नहीं रहा, जितना रहना चाहिये और परिणाम-स्वरूप इस देश के जन-साधारण का स्वास्थ्य भी गिरता जाता है। अतएव, उनकी राय में वॉयसरॉय ने इस देश के निवासियों के लिये एक लाभदायक योजना हाथ में ली।

(२) जो लोग भारत-सरकार के प्रति अच्छे भाव नहीं रखते, उन्होंने यह समझा कि वॉयसरॉय सुधार का एक नया फ़ैशन जनता के सामने लाकर हमारा ध्यान देश की वास्तविक समस्याओं से हटा देना चाहते हैं।

(३) जो हिन्दुस्तानी अँग्रेज़ों के गुणों से प्रसन्न हैं या जिनका कोई स्वार्थ-साधन भारत-सरकार-द्वारा होता है, उन्होंने वॉयसरॉय के इस क़दम में कुछ-न-कुछ अच्छाई और उदारता तलाश करने की कोशिश की।

(४) हिन्दुओ के उस दल ने, जो अँग्रेज़ों का भक्त है, उक्त घटना को वॉयसरॉय की गौ-भक्ति का प्रमाण बताया और प्रसन्नता प्रकट की।

इत्यादि-इत्यादि।

'मानव-धर्म' का उद्देश्य है कि मनुष्य प्रत्येक घटना का ठीक और सही अन्दाज़ा कर सकने की आदत डाले। 'मानव-धर्म' का विश्वास है कि जिस प्रकार कोई रँग अपने ठीक और सही तरीक़े पर तभी किसी कपड़े पर उतर सकता है, जबकि वह कपड़ा बिल्कुल साफ़, स्वच्छ और किसी अन्य प्रकार के रँग से रहित हो, इसी प्रकार मानव की अन्तरात्मा पर किसी बात का सही अक्स तभी आ सकता है, जबकि यह अन्तरात्मा किसी भी प्रकार के विकार (Prejudices) से सर्वथा रहित हो।

'मानव-धर्म' का छुठा मन्त्र मनुष्य की आत्मा को स्वच्छ वस्त्र की तरह विकार-रहित और शुद्ध बना देने का उद्योग करता है। यह शुद्धता तभी आ सकती है, जबकि अन्तरात्मा का कार्य केवल एक आतिशी शीशे का-सा रह जाय और इन पंक्तियों के लेखक ने लगभग १९ वर्ष तक व्यक्तिगत रूप से सैकड़ों प्रकार के प्राणियों के स्वभावों का अनुभव करके यह नतीजा निकाला है कि मानव-धर्म के छुठे मन्त्र में व्यक्त भावना का निरन्तर जप और संकल्प ही कलियुगी आत्मा को उस हद तक शुद्ध रख सकता है, जिस हद तक मानव प्रत्येक घटना, प्रत्येक विचार या प्रत्येक भावना का सही अर्थ लगा सके।

अधिक स्पष्टतापूर्वक यह बात यों कही जा ससती है कि मानव धर्म मनुष्य को यह सिखाता है कि वह मनुष्य है, स्वतन्त्र है, एक महान् जाति का सदस्य है, उसके सङ्कल्प सदा महान् होते हैं और वह कभी किसी प्राणी से किसी प्रकार का अनुचित लाभ उठाने का उद्योग नहीं करता। साथ ही वह संसार के अन्य प्राणियों को भी मनुष्य होने की हैसियत से स्वतन्त्र मानता है, एक महान् जाति के सदस्य मानता है, . उनके समस्त सङ्कल्पों में महानता देखना चाहता है और वह यह समझना चाहता है कि मानव-जाति का कोई भी सदस्य उससे कोई अनुचित लाभ नही उठाता।

'मानव-धर्म' किसी प्राणी से किसी प्राणी के द्वारा अनुचित लाभ उठाने की प्रवृत्ति को सब से बड़ा पाप मानता है और इस भावना को मानव-जाति के हृदय से जड-मूल से निकाल फेंकना चाहता है। जैसा कि पिछले लेखो में स्पष्ट किया जा चुका है, 'मानव-धर्म' प्रत्येक प्राणी को इस विराट् अनन्त का एक सूक्ष्म कणमात्र मानकर प्रत्येक कण का अस्तित्व अन्य कणों के सहयोग

पर निर्भर मानता है। इसलिये प्रत्येक प्राणी का धर्म है कि वह दूसरे प्राणी को अपने सहयोग का उचित लाभ प्रदान करे। लेकिन इस भावना में सीमा का तनिक भी अतिक्रमण हो जाना मानव-धर्म की सम्मति में पाप है। और फलस्वरूप अशान्ति और दुःख का कारण है।

यह सच है कि करोड़ों व्यक्तियों की अपनी-अपनी अलग-अलग परिस्थितियाँ होती हैं और ऐसी दशा में किस व्यक्ति का किस व्यक्ति के प्रति, किस अवस्था में, क्या लाभ उचित है और क्या अनुचित, इसका निर्णय किसी एक सिद्धान्त या नियम के आधार पर नहीं किया जा सकता। वास्तव में तो इसका निर्णय स्वयं मनुष्य का अन्तरात्मा ही बेहतर कर सकता है। चूँकि 'मानव-धर्म' 'औचित्य' और 'अनौचित्य' में ही धर्म-अधर्म का, समस्त सार मानता है, इसलिए उसका कथन है कि प्रत्येक मनुष्य की पाप और पुण्य की व्याख्या सर्वथा पृथक्-पृथक् है तथा इसका अन्तिम निर्णायक वास्तव में प्रत्येक मनुष्य का पृथक्-पृथक् अन्त-रात्मा ही है। अतएव, अन्तःकरण की पवित्रता मानव-जीवन में सुख-शान्ति लाने के लिए सब से उचित उपकरण है और यह पवित्रता प्रत्येक उस आदमी के मन में, जो मद्य का सेवन नहीं करता, तथा 'मानव-धर्म' के मन्त्रों को उनके सही अर्थों में सदा अपने हृदय में जागरूक रखता है, एक वैज्ञानिक तरीक़े पर उत्पन्न हो सकती है और की जा सकती है। मनुष्य के बुरे संस्कारों की आनुपातिक प्रबलता और निर्बलता के अनुसार यह पवित्रता विलम्ब या शीघ्रता से प्राप्त की जा सकती है।

अतएव, 'मानव-धर्म' के छठे सिद्धान्त से जिस सङ्कल्प की ध्वनि का आभास मिलता है, उसका स्पष्टीकरण यह है:—

(१) मद्य-पान के सर्वथा त्याग की प्रेरणा और 'मानव-धर्म' के

दसों सिद्धान्तों का प्रचार मनुष्य के वचनों और कर्मों की पवित्रता-अपवित्रता पर दृष्टि-विपर्यय करके केवल मानव के अन्तःकरण की पवित्रता पर ही ध्यान रखता है।

(२) 'मानव-धर्म' के दसों सिद्धान्त मनुष्य के अन्तःकरण को क्रमशः ज्ञान और गरिमा की लहर से पार करके औदार्य की भावना तक लाते हैं और प्रत्येक मन्त्र के उच्चारण के साथ मानव-हृदय में उच्चता, महानता, श्रद्धा और उदारता की भावनाओं का सञ्चार करते हैं।

(३) 'मानव-धर्म' का छुठा सिद्धान्त मनुष्य को सिखाता है कि उसे अपने मनुष्य होने का गौरव है और उसे परम स्वतन्त्र रहने का जन्म-सिद्ध अधिकार है, वह सृष्टि की एक महान् विभूति है और एक महान् जाति का अङ्ग होने के कारण उसका प्रत्येक सङ्कल्प महान् होता है। वह न स्वयं किसी से कोई अनुचित लाभ उठाता है और वह प्राणी-मात्र का परम विश्वास करता है; क्योंकि उसे निश्चय है कि उससे अन्य कोई प्राणी भी कभी कोई अनुचित लाभ नहीं उठाता।

(४) 'मानव-धर्म' कहता है कि जब तक प्रत्येक मानव एक-दूसरे पर परम विश्वास करना न सीखेगा, 'मानव-धर्म' की समस्याओं का हल नहीं हो सकता। इस विश्वास में मनुष्य को भले ही यह ख़तरा लेना पड़े कि कोई उसके साथ विश्वासघात कर जाये, लेकिन 'मानव-धर्म' के सिद्धान्तों का एक बार प्रचार हो जाने के बाद प्रथम तो ऐसी घटनाएँ होंगी नहीं और यदि होंगी भी तो बहुत कम। उचित होगा कि मानव-जाति में पारस्परिक अविश्वास का अंकुर बोने की जगह इन थोड़ी-बहुत घटनाओं के फल-स्वरूप उत्पन्न होनेवाली हानि को सहन कर लिया जाय।

सातवाँ मन्त्र

मैं अपने प्रति अपना कर्तव्य-पालन करता हूँ।

प्राचीन हिन्दुत्व की परिभाषा का सत्य जिस प्रकार कलियुगी मानव की अन्तरात्मा में प्राप्त हो सकना असम्भव है, उसी प्रकार प्राचीन आचार्यों की परिभाषा का परोपकार-भाव भी देखने के लिये मुझे आज तक नहीं मिल सका। जिस प्रकार का परोपकार आज के युग में मिलता है, उसका आधार कर्तव्य नहीं, दया है और दया-भाव का मनोवैज्ञानिक विश्लेषण करने पर इन पंक्तियों का लेखक इस परिणाम पर पहुँचा है कि दया का उद्भव मानव-हृदय की पवित्रता और दृढ़ता से नहीं, अपवित्रता और दुर्बलता से होता है।

प्राचीन हिन्दू-ऋषियों ने परोपकार और सेवा की महानताओं का बहुत-बहुत बखान किया है। परोपकार आर्य्यों का धर्म था और परोपकार और सेवा का कोई भी इहलौकिक और पारलौकिक पुरस्कार प्राप्त करने की इच्छा आर्य्य लोग नहीं रखते थे। यही वह परोपकार-मनोवृत्ति थी, जिसका आधार कर्त्तव्यशीलता और दृढ़ता थी। शुद्ध ब्रह्म में परोपकार और औदार्य का यह तत्व (Impulse) अपने सर्वथा शुद्ध रूप में मिलता है, लेकिन मानव-आत्मा में इस प्रकार की वृत्ति उत्पन्न करने में सफलता न मिल सकी। सतयुग में मानव ने इस परिभाषा की वृत्ति की ओर बढ़ने का उद्योग भले ही किया हो, लेकिन वह उद्योग भी अल्पकालीन ही था और मानवता आज इस मामले मे किस क़दर गिरी हुई है, इसका परिचय सभी समझदार आदमियों को होगा।

आज तो अवस्था यह है कि परोपकार एक हथकण्डा होगया है। या तो परोपकार की आड में दुनियाँ के लोग तरह-तरह के व्यवसाय करते हैं और या जीवन-भर पाप करने के बाद समाज की

नज़रों में अपने कारनामों का बैलेन्स-सीट ठीक करने के लिये परोपकार के पाखण्ड रचे जाते हैं। कलियुगी मानव के परोपकार-भाव के बारे में मैंने उपरोक्त कठोर शब्द इसलिये प्रयुक्त किये हैं कि इससे कम कठोर शब्दों के द्वारा मानव-जाति की इस आत्म-प्रवञ्चना की उचित भर्त्सना हो नहीं सकती थी। इस आत्म-प्रवञ्चना के कारण मानव-जाति भटकती-भटकती कहाँ पहुँच गई है और समाज में इसके कारण क्या-क्या अनर्थ किस-किस दिशा में पैदा हो गये हैं, इसका उल्लेख इसी मन्त्र पर लिखे जानेवाले विषयों में विस्तारपूर्वक करूँगा।

इसीलिये 'मानव-धर्म' का सातवाँ मन्त्र मानव-जाति को स्पष्टतापूर्वक समझाना चाहता है कि मनुष्य एक महान् जाति से सम्बन्ध रखता है और उसके समस्त सङ्कल्प भी महान् होते हैं तथा संसार के समस्त प्राणियों के प्रति उचित लाभ उठाने और उठाने देने की उसकी प्रवृत्ति रहती है, लेकिन इन सभी भावनाओं मे उसका अपना स्वार्थ सर्वोपरि है और इन सभी सङ्कल्पों की सार्थकता वह तभी तक मानता हैं, जब तक कि वह अपने प्रति अपना कर्तव्य ठीक-ठीक तरीक़े पर पालन करता है।

'मानव-धर्म' कहता है कि सत्य को प्रकाश में लाना किसी अवस्था में भी पाप नही है और यह सच है कि मनुष्य की कुछ सीमितताओ में से एक सीमितता यह भी है कि वह अपना प्रथम कर्तव्य अपने प्रति समझे। 'अपने' की परिभाषा का प्रश्न विवादास्पद हो सकता है और स्वयं अपने शरीर से लेकर अपने परिजनो, निकट-सम्बन्धियो, निकट मित्रो और आश्रितों तक यह परिभाषा लागू की जा सकती है। 'मानव-धर्म' का यह कथन है कि प्राणी सत् और असत् के खिलवाड़ का खिलौना बनकर तरह-तरह के रूप धारण करके जन्म-मरण के चक्र में घूमता रहता है और एक

जीवन की समस्त घटनावलियों की छाप एक विचित्र प्रकार से दूसरे जन्म की परिस्थितियाँ तैयार करती रहती है। इसी विषय के विस्तृत ग्रन्थ में मैं अपनी निजी खोजों के आधार पर वे समस्त उदाहरण दूँगा, जिनसे यह ज्ञात हो सकेगा कि किस प्रकार की घटनायें इस जीवन में घटने पर आगामी जीवन में वे क्या रूप धारण करती हैं। मेरा ऐसा अनुमान है कि भृगु अथवा अन्य ऋषियों का ज्योतिष इसी प्रकार की प्रणालियों के आधार पर विश्व के आधारभूत नियमों का ठीक-ठीक ज्ञान प्राप्त करके तैयार किया गया था और यदि उक्त ग्रन्थ लिखते समय तक मेरी तत्सम्बन्धी खोज मुकम्मिल हो सकी तो सम्भव है कि मैं ज्योतिष की एक सर्वथा नवीन और आधुनिक प्रणाली का अन्वेषण करने में सफलता प्राप्त कर सकूँ।

अस्तु, 'मानव-धर्म' का सातवाँ मन्त्र सिखाता है कि जन्म-मरण के चक्र में फँसा हुआ प्राणी एक ख़ास तरह की परिस्थितियों और एक ख़ास तरह के वातावरण के मध्य जन्म लेता है। यही परिस्थितियाँ और वातावरण मिलकर एक प्राणी को एक अदद (Unit) बनाते हैं। अर्थात् 'अपने' से अभिप्राय मनुष्य का केवल अपना शरीर, मन, आत्मा या व्यक्तित्व ही नहीं, बल्कि इस शरीर, मन, आत्मा या व्यक्तित्व के चारों ओर का समस्त वातावरण है और 'अपने प्रति अपना कर्त्तव्य पालन करने' का अर्थ है—इस समस्त वातावरण से आच्छादित अपने प्रति अपना कर्तव्य पालन करना।

अधिक स्पष्टतापूर्वक इस मन्तव्य को इस प्रकार पेश किया जा सकता है कि प्राणी और उसका निकटतम वातावरण गत जीवन के कर्मों के अनुसार उसके जन्म से पहले ही निश्चित कर दिये जाते हैं और इस वातावरण को अधिक-से-अधिक आनन्दप्रद

और सुखपूर्ण बनाना तो बुरा नहीं, लेकिन अपने अभिमान के कारण इस वातावरण में परिवर्तन डालना अनुचित है और प्रकृति की इच्छा के प्रति विद्रोह है। पशु-पत्ती तो चूंकि बुद्धिहीन प्रकृति के विधान से विरोध करने की भावना से ही शून्य रहते हैं और अपनी परिस्थितियों के दुःख-सुख को मूकभाव से सहन करके अपना जीवन समाप्त कर देते है, लेकिन मनुष्य अपनी बुद्धि के अहङ्कार में पडकर प्रकृति के नियम में काफी बाधा देने का दुस्साहस कर बैठता है और यही दुस्साहस मनुष्य की सारी आपत्तियो की जड़ है। उदाहरण के लिए तलाक़, विधवा-विवाह, सती की सामाजिक प्रथाएँ, सोना, चाँदी, कोयला, पेट्रोल-आदि पदार्थों के पृथ्वी से निष्कासन की औद्योगिक प्रथा पर न होते हुए आकाश में उडने की प्रथा-आदि कार्य मनुष्य ने ऐसे किये हैं, जो प्रकृति की इच्छा के सर्वथा विपरीत हैं और यदि मानव-जाति में मद्य-पान की प्रथा का श्रीगणेश न हुआ होता तो सम्भवतः इस तरह के शैतानियत के भाव 'मानव-जाति' के मन में उत्पन्न भी न होते। 'सुख-शान्ति के उपाय' की भूमिका में मैं लिख चुका हूँ कि संसार में एक बार जो वस्तु, जो विचार या जो वचन अस्तित्व में आ जाता हे, वह अमिट है, इसलिए उपरोक्त समस्त प्रथाओं, पदार्थों या पद्धतियों के एक बार अस्तित्व में आ जाने पर उनका नष्ट किया जाना असम्भव है। इसीलिए 'मानव-धर्म' कहता है कि हमारी स्थायी सुख-शान्ति के लिए आवश्यक होगा कि हम इन पदार्थों का उचित उपयोग करना सीख जायें तथा यदि मनुष्य श्रद्धापूर्वक इस सत्य पर विश्वास करले कि उसकी सीमितता केवल 'अपने' प्रति अपना कर्तव्य पालन करने-भर तक ही है, तो न केवल इस सिद्धान्त के आधार पर धारण की गई जीवन-चर्या मनुष्य को स्वयं भी सुख-शान्ति प्रदान करेगी, बल्कि समस्त

आधुनिक आविष्कारों का उपयोग मानव-जाति की सुख-शान्ति नष्ट करने की जगह उसकी वृद्धि में व्यय हो सकेगा।

अतएव, 'मानव-धर्म' के सातवें मूल मन्त्र से जिस संकल्प की ध्वनि का आभास मिलता है, उसका अभिप्राय यह है :—

(१) मानव-जीवन सत् और असत् के खिलवाड़ का खिलौना बनकर जन्म-मरण के एक लम्बे सिल्सिले का स्टेशन-मात्र है। इस स्टेशन की परिस्थितियों और वातावरण के अनुसार उसे अपने और अपने निकटस्थ समस्त प्राणियों के प्रति अपना उचित कर्तव्य पालन करना पड़ता है।

(२) संसार के सभी धर्मों की सामाजिक व्यवस्था को ईश्वरीय या प्राकृतिक प्रेरणा मानकर 'मानव-धर्म' कहता है कि प्रत्येक प्राणी को अपनी-अपनी व्यवस्था के अनुसार, अपनी अन्तरात्मा की सहायता से उपयुक्त आचरण करते रहना चाहिए।

(३) सातवें मन्त्र के अनुसार किसी भी मनुष्य को न तो अपना धर्म-परिवर्तन करने का अधिकार है, न माता, पिता, स्त्री, भाई-आदि सम्बन्धियों में अपनी सहूलियत के ख़ातिर परिवर्तन करने का अधिकार है और न ही किसी आचरण का आश्रय लेना उचित है, जो उसकी धार्मिक, सामाजिक और पारिवारिक परिपाटी के मूलत विरुद्ध हो।

(४) मद्य-पान के सर्वथा त्यागी मनुष्य को 'मानव-धर्म' के सातवें मन्त्र का अर्थ समझने और उसके अनुकूल आचरण करने में कुछ भी दिक़्क़त न होगी।

आठवाँ मन्त्र

'मैं मन, वचन, कर्म से मनुष्य-जाति की सेवा करना चाहता हूँ'

पिछले लेखों में यह बार-बार लिखा जा चुका है कि धर्म

आत्मा का विज्ञान है। जिस प्रकार भौतिक विज्ञान का उद्देश्य भौतिक पदार्थों के सम्बन्ध में समस्त ज्ञातव्य बातो का जान लेना है, उसी प्रकार धर्म या आत्मिक विज्ञान का उद्देश्य भी आत्मा के विषय में समस्त बातों का ज्ञान होना है। परन्तु धर्म का एक तीसरा अङ्ग भी है; और वह 'चरित्र' है।

प्राचीन हिन्दू आचार्यों ने जो व्यवस्था मानव-जाति के लिये स्थिर की, उसका उद्देश्य इसी आत्मिक विज्ञान के रहस्य को पूर्ण-तया समझकर जीवन का परम-लक्ष्य संसार-चक्र से मुक्त होकर ब्रह्म में लय हो जाना समझा था। हो सकता है कि उन परम पूज्य आचार्यों का यह निष्कर्ष सही हो। यह भी हो सकता है कि इन प्राचीन आचार्यों ने यह समझा हो कि उनकी पद्धति का अनुकरण करने से एक दिन समस्त सृष्टि में सर्वत्र-व्याप्त अहङ्कार-मिश्रित आत्म-तत्व मुक्त होकर ब्रह्म में लय हो जाये।

'मानव-धर्म' इन समस्त आचार्यों के इन समस्त उद्योगों की प्रशंसा और पूजा करता हुआ भी बल-पूर्वक इस निश्चय को अस्वा-भाविक मानता है। इस सम्बन्ध में उसका कथन यह है कि अनन्त गुण और शक्ति-सम्पन्न ब्रह्म का कुछ भाग कालान्तर में उसी प्रकार अहङ्कार से मिश्रित होकर सृष्टि बन गया, जिस प्रकार पृथ्वी पर सड़ने-गलनेवाली चीज़ें बदबूदार होकर वातावरण में मिल जाती हैं। लेकिन जिस प्रकार एक प्राकृतिक पद्धति से यह तमाम बदबू अपने-आप गन्धक और स्वाभाविक-रूपेण पृथ्वी के चारों ओर छाये हुए वातावरण को शुद्ध करती रहती है, उसी प्रकार ब्रह्म की अज्ञात महाशक्तियाँ अपने उस अपवित्र अंश को, जिसके कारण सृष्टि अमल में आई है, शुद्ध करके अपने अन्दर सम्मिलित करता रहता है। न तो मनुष्य का कोई यत्न इस नियम की गति में कोई वृद्धि कर सकता है और न मनुष्य का कोई कर्म इस नियम या

इस गति में किसी प्रकार की क्षीणता ला सकता है। 'मानव-धर्म' कहता है कि हमारे ऋषियों और आचार्यों ने जिन कडे नियमों में मानव-जाति को बाँधकर उक्त गति को वृद्धिगत करने का यत्न किया, उसमें उन्हें सफलता नहीं मिली और अनुभव ने बता दिया कि उनका तत्सम्बन्धी प्रयोग फेल हो गया है।

इसीलिये धर्म की सीमितता 'मानव-धर्म' केवल ज्ञान तक मानता है। ज्ञान का सम्बन्ध बुद्धि से है और बुद्धिमान् लोग सदा से संसार की मानव-जाति पर शासन या नेतृत्व करते आये है। इन बुद्धिमान् लोगों की संख्या प्रत्येक आयु (Generation) में उँगलियों पर गिने जाने लायक होती है और इन व्यक्तियों का काम सदा से यह रहता आया है कि वे द्रव्य, काल, क्षेत्र के अनुसार धर्म की रूप-रेखा और परिभाषा को अखिल मानव-जाति के कल्याणार्थ पवित्र और शुद्ध बनाये रखें। वर्तमान युग के बुद्धिमान् भी अपने-अपने ढङ्ग पर इसी यत्न में लगे हुए हैं, लेकिन मुझ अकिंचन को कहने दिया जाय कि मद्य-पान की लत ने हमारे वर्तमान युग के बुद्धिमान् लोगों की बुद्धि को तिरछा बना दिया है और इसीलिए उनके द्वारा अज्ञात् भाव से 'मानव-जाति' पिछले प्रायः दो हज़ार बरस से गुमराह की जाती रही है। इन बुद्धिमान् पुरुषों में कुछ लोगों ने तो नये पन्थ निकाल दिये और कुछ ने पुरानी लकीर को नए ढङ्ग पर पीटना आरम्भ कर दिया।

अतएव, 'मानव-धर्म' के पहले सात मन्त्रों में धर्म का सच्चा स्वरूप मानव-जाति के कल्याणार्थ यथा-साध्य संक्षिप्त पर स्पष्ट रूप से वर्णन् किया गया है। इन्हीं मन्त्रों पर लिखे जानेवाले विशाल ग्रन्थों में इस स्वरूप को इस कदर विस्तृत ढङ्ग पर वर्णन् किये जाने का निश्चय है कि दुनियाँ के किसी भी धर्म और किसी भी दृष्टिकोण के आदमी को किसी प्रकार की कोई शङ्का करने के

लिए स्थान न रह जाय। आठवाँ मन्त्र धर्म के तीसरे अङ्ग—चरित्र—की व्याख्या करता है।

'मानव-धर्म' कहता है कि मनुष्य-जीवन में ज्ञान और चरित्र दो पृथक् अंग हैं। श्रद्धा एक तीसरा अंग है। पहले दो अंगो का सम्बन्ध बुद्धिमानों के जीवन से है और तीसरे का सम्बन्ध अल्पज्ञों से। श्रद्धा का अर्थ वास्तव में अनुगमन है। संसार के दो अरब प्राणी आज भी किसी-न-किसी महापुरुष के मत को मानकर उसका अनुकरण-भर ही करते हैं। इसलिए 'मानव-धर्म' संसार के महापुरुषों और नेताओं को सही रास्ता दिखाने के उद्देश्य से केवल ज्ञान और चरित्र दो ही अंगों पर विशेष ज़ोर देता है और उसके प्रथम सात मन्त्र ज्ञान-मार्ग का स्पष्टीकरण करते हैं और आठवाँ तथा नवाँ चरित्र का।

भिन्न-भिन्न धर्मों के शास्त्रकारों ने धर्माचरण के भिन्न-भिन्न अंग और मार्ग बताये हैं। हिन्दू-धर्म के अनुसार यज्ञ, अध्ययन, दान, तप, सत्य धृति, क्षमा, अलोभ-आदि आठ अंग धर्माचरण के स्वीकार किए गए हैं, ईसाई मत के अनुसार इसी से मिलते-जुलते दस महानियम (Ten Commandments) हैं, बौद्ध-धर्म के अनुसार चार और जैन-धर्म के अनुसार पाँच महाव्रत और पाँच अणुव्रत, इस प्रकार दस, अंग धर्माचरण के रक्खे गये हैं।

'मानव-धर्म' इन समस्त धर्मों के समस्त अंगों का सर्व-सुलभ और सर्व-सुगम सार सेवा-मार्ग में मानता है और उसका आठवाँ मन्त्र इसी उद्देश्य को लक्ष्य में रखता है। किस प्रकार की सेवा, किन परिस्थितियों में पवित्र है और कौन-सी सेवा किन परिस्थितियों में अपवित्र, इसका सविस्तर वर्णन् तो तत्सम्बन्धी ग्रन्थ में ही होगा, लेकिन संक्षेप में 'मानव-धर्म' की सेवा का रूप निम्न-लिखित है:—

१—अपनी सेवा।

२—अपने निकटस्थ सम्बन्धियों, मित्रों और आश्रितों की सेवा।

३—अपने सम्पर्क में आनेवाले व्यक्तियों की सेवा।

४—अपने सम्पर्क में न आनेवाले व्यक्तियों की सेवा।

यह तो स्पष्ट किया ही जा चुका है कि सङ्कल्प को 'मानव-धर्म' मानव-जीवन को ऊँचा उठाने का सब से बड़ा साधन मानता है और इसीलिये अन्य मन्त्रो की तरह आठवाँ मन्त्र भी मानव के हृदय में सेवा-भाव की प्रचण्ड धारा प्रवाहित कर देना चाहता है। इसी भाव में धर्म का सार, सुख का आगार और मोक्ष का सन्देश 'मानव-धर्म' मानता है और मानव-कल्याण का सब से सुगम और सुखद मार्ग भी यही है।

कल्पना कीजिये, उस भविष्य की जब अखिल मानव-जाति के प्राणी एक-दूसरे के प्रति सेवा-भाव से ओत-प्रोत होंगे और कल्पना कीजिये उस काल की, जबकि मानव-जाति के सदस्य एक-दूसरे से अनुचित लाभ उठाने की प्रवृत्ति से स्वतन्त्र होंगे। कल्पना कीजिये उस समय की, जब अखिल जगत् के मनुष्य अपने मनुष्यत्व पर अभिमान करेंगे, अपने-अपने भीतर परम स्वाधीनता का अनुभव करेंगे, किसी प्रकार के निम्न कोटि के विचार को मन में न आने देंगे और परस्पर एक-दूसरे पर परम विश्वास का भाव रखकर व्यवहार करेंगे। और जिस दिन 'मानव-धर्म' के सिद्धान्तों की झन्कार संसार-भर के मनुष्यों के हृदयों को झंकृत कर उठेगी तथा जिस दिन संसार-भर के प्राणी मद्य-पान की घृणित आदत का सर्वथा त्याग कर देंगे, उस दिन क्या यह संसार विश्व की सब से मन-मोहिनी विभूति न बन जायगा और तब इस संसार में कहीं भी

घृणा, क्रोध, द्वेष और अहङ्कार का नाम-निशान भी रह जायगा ?

अतएव, आठवें मन्त्र से जिस सङ्कल्प की ध्वनि का आभास मिलता है, उसका स्पष्टीकरण यह है:—

धर्म के दो मुख्य अङ्ग हैं:—(१) ज्ञान (२) चरित्र। आत्मिक विज्ञान का सही ज्ञान पहला अङ्ग है और इस ज्ञान के अनुसार आचरण दूसरा। 'मानव-धर्म' के पहले सात मन्त्र धर्म के पहले अङ्ग हैं और दूसरे अङ्ग का सार सेवा-भाव और मद्य का सर्वथा त्याग है।

'मानव-धर्म' का नवाँ मन्त्र

"मैं मद्य को अपेय मानता हूँ।"

'अखिल विश्व की सुख-शान्ति का उपाय' में मैं मद्य और मानव-जाति के वैयक्तिक, गार्हस्थिक और सामाजिक जीवन पर उसके प्रभाव के सम्बन्ध में मैं कुछ हद तक विस्तार के साथ लिख चुका हूँ। यहाँ उस विस्तार को दोहराने की आवश्यकता नहीं। यहाँ तो मुझे केवल इस मन्त्र के द्वारा मानव-जाति के दृष्टि-कोण में एकबारगी तब्दीली लाने की योजना पर एक प्रकाश-रेखा डालना-मात्र ही अभीष्ट है।

मेरा यह निश्चित् विश्वास है कि सारे मुख्य व्यसनों में मद्य ही एक ऐसी वस्तु है, जिसका प्रभाव आत्मा तक सब से शीघ्र पहुँचता है और यह प्रभाव अत्यन्त विषैला और भयङ्कर होता हैं। मैंने अपने जीवन में मांस-भक्षण और चोरी के अतिरिक्त लगभग सभी व्यसनों का आसक्ति-पूर्वक अनुभव करके देखा और इस अनुभव के आधार पर ही मेरा उपरोक्त निश्चय हुआ है। मैं यह समझता हूँ कि शराब का प्रभाव शरीर, दिमाग़, मन और आत्मा पर कुछ इस रहस्यमयी क्रिया के साथ होता है और मनुष्य की विचार-धारा कुछ

इस तरीक़े पर तिरछी होकर तब्दील हो जाती है कि कोई नहीं कह सकता कि शराब पीनेवाला कब किसके साथ क्या व्यवहार कर डाले। शराब का प्रभाव आत्मा की स्वभाव-सिद्ध पवित्रता में विकार उत्पन्न कर देता है और धीरे-धीरे यह अपवित्रता उसी तरह आत्मा का एक अङ्ग बन जाती है, जिस तरह स्वार्थ, काम और अहङ्कार बन गये हैं। आम तौर पर शराब का प्रयोग आत्मा में कमीनापन पैदा करता है। जो लोग यह कहकर शराब की वकालत करते हैं कि पीने के बाद आदमी की परीक्षा हो जाती है; क्योंकि उसकी प्रकृति की वास्तविकता उससे प्रकट हो जाती है, वे भूल में हैं; क्योंकि जैसे शरीर में आतशक और सूज़ाक से लगाकर यक्ष्मा तक के कीटाणु प्रत्येक काल में अपने-अपने अनुपात में मौजूद रहकर शरीर के स्वास्थ्य की क़ायमी में मदद करते हैं, उसी प्रकार आत्मा में भी कुछ बुरे तत्व अपने-अपने अनुपात में मौजूद रहकर आत्मा को शरीर धारण करने योग्य स्वास्थ्य प्रदान करते हैं। जिस प्रकार उपरोक्त कीटाणुओं का अनुपात शरीर में बढ़ जाने पर ही तरह-तरह के रोगों को जन्म दे-देता है, उसी प्रकार की मदद से आत्मा के हलके तत्वो का अनुपात बढ़-जाकर आत्मा को रोगों से ग्रसित बना देता है।

कोई पूछ सकता है कि जब समस्त धर्मों ने कई-कई व्यसनों को समानरूपेण बुरा कहा है तो केवल शराब को ही बुरा कहने की ज़रूरत 'मानव-धर्म' ने क्यों समझी है? इसी विषय के विस्तृत ग्रन्थ में इस सम्बन्ध में इतने विस्तीर्ण ढँग पर तर्क दिये जावेंगे कि मेरा विश्वास है, कोई भी ऐसा आदमी, जो कम-से-कम छः हफ़्ते तक शराब का त्याग करके और सही दिमाग़ के साथ इस ग्रन्थ को पढ़ेगा तो मेरे विचारो को सोलह-आने मान लेगा, लेकिन यहाँ संक्षेप में इस प्रश्न के उत्तर में उन कारणों का उत्तर देता हूँ,

जिनसे मैंने मद्य-पान के विरोध पर इतना ज़ोर दिया है :—

१—शराब शरीर का कोई जुज़ नहीं बनाती; क्योंकि किसी भी सभ्य देश और जाति की ख़ूराक का वह अनिवार्य हिस्सा नहीं है।

२—चूँकि 'मानव-धर्म' दुनियाँ के चन्द सर्व-त्यागी पूज्य पुरुषो का नहीं, बल्कि दुनियाँ के उन दो अरब आदमियो का धर्म है, जो दुनियाँ के आकर्षणो में आसक्त हो चुके है और जिनकी यह आसक्ति प्रलय-काल तक भी नहीं मिट सकती, इसलिये इन दो अरब पुरुषों से हर्गिज़ यह आशा नही की जा सकती कि वे समस्त व्यसनों को एक-साथ या कभी भी छोड़ सकेंगे।

३—शराब ही एक ऐसा सामान्य पदार्थ है, जिसका विरोध संसार के सभी मुख्य धर्मों ने एक स्वर से किया है, इसलिये ऐसा सिद्धान्त, जिसका उद्देश्य समस्त धर्मों का एकीकरण है, किसी ऐसे ही व्यसन का सर्वाङ्गीण विरोध कर सकता है, जिसके लिये किसी भी धर्म के मूल सिद्धान्तों का विरोध न सहना पड़े।

४—'मानव-धर्म' अनुभव करता है कि मानव-जाति की मानसिक दृढ़ता में काफ़ी कमी आगई है। इसका कारण यह है कि मानव-जाति ने व्यक्तिगत स्वाधीनता के नाम पर अपने कार्यक्रम विकृत ढँग पर फैला लिये हैं और इसका नतीजा यह हुआ है कि उनके जीवन उच्छृङ्खल (Unscrupulous) बन गये है। यह दृढ़ता तभी आ सकती है, जब जीवन में नियम और संयम उत्पन्न किये जाये। नियम और संयम केवल त्याग से ही उत्पन्न होते हैं।

मेरे पिछले मन्तव्यों को पढ़कर एक प्रश्न और पूछा जा सकता है और इसका स्पष्टीकरण भी इस लेख में कर दिया जाना अत्यन्त आवश्यक है। वह यह है कि 'मानव-धर्म' का यह सिद्धान्त है

कि संसार में जो वस्तु एक बार अस्तित्व में आ चुकी वह प्रलय-काल तक मिट नहीं सकती है और मैंने कई स्थानों पर लिखा है कि संसार की किसी भी नई व्यवस्था की तैयारी में हमें उन सभी चीज़ों को ध्यान में रखना पड़ेगा, जो आज तक इस संसार में अस्तित्व में आ चुकी हैं। इस सत्य के अनुसार तो मद्य भी अस्तित्व में आ चुकने के बाद लुप्त नहीं हो सकती तो उसे लुप्त करने के लिये इतना प्रयत्न व्यर्थ है।

इस प्रश्न का उत्तर इसलिये आवश्यक है कि उसके द्वारा मेरे आन्दोलन का तत्सम्बन्धी अभिप्राय और तत्सम्बन्धी नीति स्पष्ट हो जायेंगे और इस आन्दोलन के कार्यकर्ताओं और समर्थकों को उचित निर्देश भी प्राप्त हो जायेगा।

यह बिल्कुल सच है कि शराब मिट नहीं सकती। लेकिन सम्भवतः अखिल मानव-जाति-द्वारा, अगर अखिल 'मानव-जाति' द्वारा नहीं तो 'मानव जाति' के अधिकांश सदस्यों-द्वारा, अगर अधिकांश सदस्यों-द्वारा भी नहीं, तो कम-से-कम संसार के उन व्यक्तियों-द्वारा तो 'मद्य-पान' का सर्वथा त्याग हो सकना सम्भव ही है, जिनके हाथ में सारे संसार के शासन या नेतृत्व की बागडोर है। मैंने यह स्पष्ट कर दिया है कि 'मानव-जाति' के दो भाग सदा से होते रहे हैं और होते रहेंगे। किसी ज़माने में यह दो भाग साधु और गृहस्थ थे, आजकल यह दो भाग शासक और शासित हैं। मेरा निष्कलुष विश्वास है कि आज के शासकों और नेताओं का स्थान 'मानव-समाज' में वही है, जो किसी ज़माने में साधु-सन्तों और प्रचारकों का होता था। जो शासन आज भौतिक साधनों-द्वारा किया जाता है, वही किसी समय आध्यामिक साधनों-द्वारा किया जाता था। जिस प्रकार पिछले समय में साधु और गृहस्थ के धर्म में यही भेद होता था कि गृहस्थ केवल धर्म के ज्ञान

(Knowledge) अंग की सम्पूर्ण प्राप्ति और चरित्र (Conduct) अङ्ग की आंशिक प्राप्ति में ही सफल हो सकता था, उसी प्रकार कलियुग के नेताओं और शासकों के लिये तो 'मानव-धर्म' अपने नौ-के-नौ मन्त्रों का मन, वचन कर्म से स्वीकृति किया जाना अनिवार्य मानता है और गृहस्थों अर्थात् अनुगमनकारियों (Followers) और शाशितों-द्वारा पहले सात मन्त्रों को सम्पूर्ण और दो मन्त्रों को यत्न-रूप में ही प्राप्त कर सकना सम्भव मानता है।

संक्षेप में, 'मानव-धर्म' संसार-भर के शासकों, नेताओं और प्रचारकों के लिये सात मन्त्रों के सम्पूर्ण ज्ञान के साथ ही-साथ सेवा-भाव का व्रत और मद्य-पान के सर्वथा त्याग की शर्त अनिवार्य मानता है। तभी संसार के बाक़ी दो अरब आदमी भी इस महा-नाशकारी बला से छुटकारा पाने की आशा कर सकते हैं, अन्यथा नहीं और तभी कलियुग की यह हाहाकारमयी स्थिति लगभग सतयुग की आनन्दोल्लासमयी स्थिति में परिवर्तित हो सकती है।

दसवाँ मन्त्र

'मैं मनुष्य हूँ'

मेरे अनेक मित्रों ने बार-बार मुझसे यह पूछा है कि 'मानव-धर्म' के दस मन्त्रों में पहले और दसवें मन्त्र की शब्द-रचना एक ही क्यों है? इस मन्त्र के विषय में अपना वक्तव्य देते हुए मैं इस प्रश्न का उत्तर देने का भी उद्योग करूँगा।

प्रथम मन्त्र में जिस सङ्कल्प की प्रधानता रखी गई है, उसका भाव अन्तिम मन्त्र के सङ्कल्प के भाव से भिन्न है। 'मानव-धर्म' के समस्त आन्दोलन का एक-मात्र उद्देश्य केवल संसार-भर के धार्मिक सिद्धान्तों का एकीकरण सिद्ध करना ही नहीं, संसार-भर के मनुष्यों के अन्तरात्मा में वास्तविक भ्रातृ-भाव की भावनाओं का वैज्ञानिक

प्रवेश है। यदि मेरा भाग्य अनुकूल रहा, जिसका कम-से-कम मुझे पूर्ण विश्वास है, तो मैं 'मानव-धर्म'-सम्बन्धी दसों ग्रन्थों के द्वारा उस वैज्ञानिक और सीधे-सादे रास्ते को संसार के मनुष्यों के सामने पेश करूँगा, जिस पर चलकर मानव-जाति सदा-सर्वदा के लिये कड़वाहट का रास्ता छोड़कर परम सुख और शान्ति के मार्ग पर अग्रसर हो सकेगी।

पहले मन्त्र का अभिप्राय यदि यह है कि मनुष्य श्रद्धापूर्वक यह सङ्कल्प करले कि वह केवल एक ही जाति का सदस्य है तथा उसे अपने इस जाति का एक सदस्य होने का गौरव इसलिये है, कि वह इस जाति को विश्व की सब से महान् जाति मानता है तो दसवें मन्त्र का अभिप्राय यह है कि वह मानवता की परिभाषा केवल उसी धर्म के सिद्धान्तो को माने, जिसमें उसका जन्म हुआ है। अन्य मन्त्रों के नियमित अध्ययन, मनन और चिन्तन-द्वारा मानव की वृत्तियों मे परम-सामूहिकता का भाव उत्पन्न हो जाना चाहिये और दसवें मन्त्र में उसे स्पष्ट रूप से यह जान लेना चाहिये कि जिस धर्म में उसका जन्म हुआ है, उसी के सिद्धान्तों पर अन्त काल तक उसे श्रद्धा और कठोरतापूर्वक विश्वास करते रहना चाहिये; क्योकि उसकी राये में प्रकृति की यही इच्छा है कि वह उन्हीं सिद्धान्तों को मनुष्यता की परिभाषा समझता रहे।

स्पष्ट है कि 'मानव-धर्म' किसी भी दशा में धर्म-परिवर्तन को जायज़ नहीं ठहराता। 'मानव-धर्म का विश्वास है कि जो व्यक्ति जिस स्थिति, जिस धर्म, जिस व्यवसाय और जिस वातावरण के मध्य उत्पन्न हुआ, उसे उसी स्थिति, उसी धर्म, उसी व्यवसाय और उसी वातावरण में रहकर अपने जीवन को परम सुख और परम उन्नति की ओर अग्रसर करना चाहिये। 'मानव-धर्म' का यह भी कथन है कि जो व्यक्ति अपनी प्रकृति-दत्त स्थिति में रहकर ही

उन्नति की ओर अग्रसर होगा, उसी को परम और स्थायी सुख की प्राप्ति होगी तथा जो व्यक्ति बुद्धि-वार्धक्य की बीमारी के कारण प्रकृति के विधान के विरुद्ध छलाँग लगाना चाहेगा, उसे सुख की प्राप्ति नहीं हो सकती। कुछ परिस्थितियाँ ऐसी होती हैं, जो मनुष्य को उसके जन्म-जात संस्कारों और परिस्थितियो से अलग ले जाती हैं और इन्हीं परिस्थितियो के कारण मनुष्य के जन्म-जात संस्कार भी बदल जाते हैं। ऐसी दशा में मनुष्य को चाहिये कि वह इस परिवर्तन को ही प्रकृति की इच्छा समझकर अपना जीवन वर्तमान स्थितियों के अनुकूल बिताने का उद्योग करे, इसी मे उस का कल्याण है। उदाहरण के लिये, यदि कोई व्यक्ति अपने शिशु-काल में ही अपने माता-पिताओ से छूटकर किसी ऐसे दम्पति के हाथ में पड़ जाता है, जिसका धर्म उसके माता-पिता के धर्म से भिन्न है तो उसका कर्तव्य है कि आयु प्राप्त होने पर वह अपने रक्षको को ही अपने माता-पिता मानकर उनके प्रति वैसा व्यवहार करे, जैसा उसे अपने वास्तविक माता-पिता के प्रति करना चाहिये था।

उपरोक्त विषय एक ऐसा सत्य है, जिसके सम्बन्ध में 'मानव-धर्म' सम्भवतः संसार के समस्त प्रचलित धर्मों के तत्सम्बन्धी नियम से पृथकत्व रखता है इसका कारण यह है कि 'मानव-धर्म' कोई पृथक् धर्म अपने-आपको नहीं मानता और उसका दावा यह है कि उसके सिद्धान्त सारी मनुष्य-जाति के उन समस्त सदस्यो के सिद्धान्त हैं, जो संसार के किसी भी प्रचलित धार्मिक सिद्धान्त का किसी भी रूप में पालन करते हैं। इसके लिये 'मानव-धर्म' ने एक यह नियम समझ लिया है कि जो व्यक्ति कम-से-कम चैतन्य या जीव या आत्म-तत्व की सत्ता तक में भी विश्वास रखता है, उसे 'मानव-धर्म' किसी-न-किसी रूप में किसी-न-किसी धर्म का

अनुगामी मानता है और तदनुसार उसे 'मानव' स्वीकार करता है। रूस तथा अन्य देशों के जो कम्युनिस्ट 'धार्मिकता' के किसी भी रूप में विश्वास करना नहीं चाहते, उनकी बुद्धि को 'मानव-धर्म' अभी अविकसित और अपूर्ण मानता है और उसका परम विश्वास है कि बहुत शीघ्र संसार के कम्युनिस्टो की बुद्धि का पूर्ण विकास होगा और उन्हें आत्म-तत्व की सत्ता में विश्वास करना ही होगा।

अतएव, दसवें मन्त्र का जप मानव के हृदय में यह सङ्कल्प जगाता है कि वह मनुष्य-नामक एक जाति का सदस्य है, वह वैयक्तिक रूप से परम स्वतन्त्र है, वह मानव-जाति का सदस्य होना एक बहुत बडी बात मानता है, उसके समस्त सङ्कल्प अत्यन्त महान् होते हैं, वह कभी किसी से अनुचित लाभ नहीं उठाता और वह समझता है कि कोई उससे कभी अनुचित लाभ नही उठाता, वह सदा 'अपने' प्रति अपना कर्त्तव्य पालन करता है, वह सदा मन, वचन, कर्म से मनुष्य-जाति की सेवा करना चाहता है, वह मद्य को अपेय मानता है और वह उसी धर्म के नियमों को मनुष्यता की परिभाषा मानता है, जिस धर्म में उसका जन्म हुआ है।

'मानव-धर्म' न तो इस्लाम की तबलीग़ को ग्राह्य समझता है, न हिन्दुत्व की शुद्धि को, न बौद्ध-धर्म की दीक्षा को और न ईसाइयत के 'कन्वर्ज़न' को। जिस धर्म में जो सामाजिक नियम प्रचलित हैं, उनमें से उन सभी नियमों को आधुनिक रूप देने का 'मानव-धर्म' पक्षपाती है, जिनके कारण इस महान् जाति की सुख-शान्ति में बाधा पड़ रही है। सामाजिकता को 'मानव-धर्म' धर्म का एक पृथक् अंग मानता है और इसी प्रकार देश-भक्ति की भावना को उसी प्रकार आध्यात्मिकता का एक पृथक् अंग मानता है। दूसरे शब्दों में, जिस प्रकार मनुष्य अपने-अपने धर्मों का आचरण करता हुआ भी अखिल मानव जाति को 'एक' समझने का

अभ्यास अपने मन को कराये, उसी प्रकार अपने-अपने देश की भक्ति करता हुआ भी मनुष्य अखिल संसार को 'एक' देश समझने की ओर प्रवृत्त हो—यही 'मानव-धर्म' की शिक्षाओं का सार होगा और इस मन्त्र पर लिखे जानेवाले विस्तृत ग्रन्थ में तत्सम्बन्धी क्रियाओं का वैज्ञानिक विवरण दिया जायेगा।

इस लेख को समाप्त करने के पहले दो आवश्यक बातों का उल्लेख करना और आवश्यक है। पहली तो यह है कि मानव-जाति में सभ्यता लाने के लिए 'मानव-धर्म' न तो अर्वाचीन आविष्कारों और आसक्तियों को नष्ट करके प्राचीन ग्राम्य-जीवन की ओर लौटना शक्य ही मानता है और न इसीलिए ऐसा निर्देश देता है। उसका मन्तव्य है कि ऐसा उद्योग करने से मानव-वृत्ति की दुर्बलताएँ नासूर की तरह जीवन के किसी अन्य क्षेत्र में विकृति उत्पन्न करेंगी तथा ऐसा करने के लिए तय्यार भी बहुत थोड़े आदमी बहुत थोड़े समय के लिये होंगे। इसीलिये 'मानव-धर्म' संसार के सबल मनुष्यों को निर्बल मनुष्यों के आदर्शों की ओर न घसीटकर संसार के निर्बल मनुष्यों को सबल मनुष्यों के आदर्शों की ओर जाने की प्रेरणा देता है उसका एक-मात्र उद्देश्य यह है कि सबल मनुष्यो और उनके भाग्य-विधाताओ की जो आत्मायें मद्य-पान की लत के कारण ग़लत रास्ते पर पड़ गई हैं, उन्हें सही रास्ते पर लाकर और कमज़ोर आदमियों को सबल बनाकर अखिल मानव-जाति में वास्तविक साम्यता उत्पन्न की जाय। दूसरे अर्थों में, 'मानव-धर्म' निर्बल मनुष्यों के साम्य-वाद का नहीं, सबल मनुष्य के साम्य-वाद का सन्देश देता है।

अतएव, 'मानव-धर्म' के दसवें मन्त्र से जिस सङ्कल्प की ध्वनि का आभास मिलता है, उसका संक्षिप्त स्पष्टीकरण यह है:—

(१) प्रत्येक मनुष्य 'स्व-धर्म' का आचरण करना ही मनुष्यता का लक्षण माने।

(२) केवल मद्य-पान का त्याग ही मनुष्य-जाति की विचार-धारा को स्वस्थ बनाने के लिये पर्याप्त है। किन्तु कम-से-कम 'आत्म'-तत्व की सत्ता में विश्वास रखना मनुष्य की बुद्धि की परि-पक्वता का प्रमाण है।

(३) मानव-जाति के जो दो अरब सदस्य संसार के आकर्षणों में आसक्त हो गये हैं, वे यदि उन आसक्तियों से मन को हटा सकें तो हटायें, लेकिन इस यत्न में अपने मन पर ज़ोर-ज़बर्दस्ती न करें।

(४) निर्बल मनुष्य सबल बनें और इस उद्देश्य की प्राप्ति के लिये बड़े-से-बड़ा बलिदान करने के लिये प्रस्तुत रहें।

[समाप्त]